ताण्ड्य महाब्राह्मण का समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक

डा० शंकर दयाल द्विवेदी

प्रवक्ता सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्ता

लाल सिंह

एम० ए०
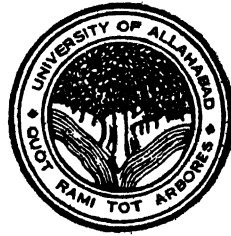
संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९२

विषयानुक्रमणिका

चतुर्थोऽध्यायः | **पृष्ठ संख्या**

पन्चमोऽध्यायः

उपसंहार

पुरोवाक्

बाल्यकाल से मुझे संस्कृत साहित्य के प्रति गहरी अभिरुचि थी, अतः एम०ए० में मैंने विषय के रूप में संस्कृत को प्राथमिकता दी, एवं उत्तरार्ध कक्षा में मैंने वेद ग्रुप का चयन किया, क्योंकि वेद में मेरी रुचि थी। परीक्षा उत्तीर्ण के उपरान्त शोध करने का निश्चय किया।

इसके पश्चात् हमनें ताण्ड्य महाब्राह्मण का समीक्षात्मक अध्ययन पर शोध करने के लिए विषय लिया। मैंने डॉ० शंकर दयाल द्विवेदी जी के निर्देशन में शोध कार्य प्रारम्भ कर दिया।

प्रारम्भ में मुझे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि जिस विषय पर मैं शोधरत हुआ, उस पर मूलग्रन्थ (सायणभाष्य) के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, अथवा अंग्रेजी किसी में भी कोई सहायक ग्रन्थ उपलब्ध न था, किन्तु गुरुजी की प्रेरणा तथा निर्देशन में कार्य में प्रगति होती रही। बुद्धि वैशारद्य एवं परमगुण सहिष्णुता के प्रतीक गुरुवर ने मुझे सर्वदा उचित निर्देशन तथा प्रोत्साहन देकर मार्गदर्शन किया। मेरे शोधप्रबन्ध के पूर्ण होने में उनका तथा उनके परिवार के स्नेहपूर्ण वातावरण का जो अमूल्य योगदान है, उसे मैं शब्दतः अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ हूँ, और एतदर्थ मैं आजीवन ऋणी रहूँगा।

विभागाध्यक्ष प्रो० सुरेश चन्द्रपाण्डेय एवं गुरुवर्य डॉ० हरिशंकर त्रिपाठी के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ, जिन लोगों ने बीच-बीच में मार्गदर्शन करके अप्रतिम सहायता की

मैं विभाग के उन समस्त गुरुजनों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मेरा मार्गदर्शन किया है, साथ में परममित्र चन्द्रशेखर मिश्र, पं० केदार नाथ त्रिपाठी एवं पं० [illegible] द्विवेदी के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता । इन लोगों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ ।

शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरे परिवार का भी बहुत सहयोग रहा है । माता पिता जिनकी स्मृतियाँ एवं आशीर्वाद ही शेष हैं। अग्रज श्री लक्ष्मी नारायण सिंह प्रधानाचार्य के सहयोग को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, जिनके सान्निध्य एवं संरक्षण में प्रार्थी शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने के योग्य बन सका । चाचा श्री शीतला प्रसाद सिंह अग्रज श्री लालता प्रसाद सिंह का भी सहयोग रहा । इसके अतिरिक्त राकेश सिंह, राजेश सिंह, ज्ञानमाला सिंह, कुमुदलता सिंह का भी सहयोग मिला जिसके लिए ये लोग बधाई के पात्र हैं । परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा भी हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहा, इन लोगों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

पुस्तकालय में पुस्तकों को ढूँढ कर ले आने के लिए श्री जगदीश साहू, स्वच्छ एवं सुन्दर टंकण हेतु श्री जय सिंह एवं श्री राम बरन यादव के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, अन्ततः शोधप्रबन्ध में टंकण विषयक प्रमादवश हुई परिहार्य एवं अपरिहार्य त्रुटियों के लिए मैं सुधी परीक्षकों से क्षमाप्रार्थी हूँ ।

लालसिंह

(लाल सिंह)

प्रथम अध्याय

वेद का सामान्य परिचय

सम्पूर्ण विश्व के प्राचीनतम वाड्•मय में वेद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । वेद की प्राचीन रचनाएं न केवल भारत की अपितु इण्डोयोरोपियन नाम से उल्लिखित भाषा परिवार की भी प्राचीनतम साहित्यिक निधि हैं । प्राचीन समय से लेकर आज तक हिन्दू जाति का वेदों पर एक जैसा विश्वास है कि हिन्दुओं का सबसे पुराना और सबसे पवित्र ग्रन्थ वेद माना जाता है । भारतीय धर्म में वेद की इतनी प्रतिष्ठा है कि विपक्षियों की युक्तियों को आचार्य लोग प्रबल तर्क देकर छिन्न-भिन्न कर देते हैं । हम ईश्वर विरोध को सह सकते हैं, लेकिन वेद का विरोध हम सहन नहीं कर सकते । आस्तिक और नास्तिक लोगों का निर्धारण भी वेद की प्रामाणिकता पर किया जाता है जो दर्शन वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं । उन्हें ही आस्तिक कहा जाता है और नास्तिक वही माना जाता है जो वेद की निन्दा करें ।[1] ईश्वर की सत्ता न मानने वाले भी आस्तिक माने जाते हैं ।

वैदिक वाड्•मय की सम्यक् जानकारी के लिए "वेद" शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है । संस्कृत साहित्य का एक-एक शब्द अपना कुछ निजी अर्थ रखता है । पिता को जनक क्यों कहा जाता है -क्योंकि वह जन्म देने वाला होता है । "जनक" की निष्पत्ति उत्पत्त्यर्थक "जनि" धातु से हुई है ।

1- नास्तिको वेद निन्दक: (मनु0) ।

जनक को पिता भी कहा जाता है क्योंकि वह रक्षक होता है। पिता शब्द की व्युत्पत्ति रक्षणार्थक "पा" धातु से मानी गयी है। कहने का तात्पर्य है कि जितने भी शब्द हैं, उनकी व्युत्पत्ति करके हम उनका शास्त्रीय अर्थ जान सकते हैं। "वेद" शब्द की व्युत्पत्ति पर वैदिक एवं संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में प्रकाश डाला गया है। वेद शब्द चार धातुओं से उत्पन्न माना गया है। विद् धातु से घञ् ﴾अ﴿ प्रत्यय करने पर वेद शब्द बनता है, जिसका अर्थ "ज्ञान" होता है।[1] "ज्ञान" शब्द व्यापक अर्थ का प्रतिपादक है। "वेद" कहने से हमें ईश्वरीय ज्ञान का बोध होता है। हिन्दू धर्म परम्परा के अनुसार जिसको सबसे पहले ऋषियों ने खोजा अथवा जिससे उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया था, वही ऋषि महर्षियों द्वारा दृष्ट ज्ञान ही "वेद" का ज्ञान है। सायण ने "वेद" की दूसरी व्याख्या भी की है।

'जो ग्रन्थ इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ इस तरह लगाया जा सकता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है, इसकी जानकारी "वेद" द्वारा ही मिलती है।[2]

1- विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् लृ लाभे और विद् विचारणे।

2- इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थोवेदयति स वेदः
﴾तैत्तिरीय संहिता- भाष्य की भूमिका﴿

वेदों को "श्रुति" भी कहा गया है । प्राचीन काल में गुरू लोग वेद के मन्त्रों को पढ़ाते थे और शिष्य उनको सुनकर ही स्मरण कर लेते थे । स्मरण में स्वर और उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता था ।

वेद धर्म के मूल-तत्त्वों के जानने का साधन है ।[1]

सभी धार्मिक कार्यों में वेदों की प्रामाणिकता अकाट्य मानी गयी है । महाभाष्यकार पतन्जलि ने निष्काम भाव से षड् ङ्ग वेदों का अध्ययन ब्राह्मण के लिए अनिवार्य बताया है ।[2]

प्राचीन काल में वस्तुओं के नामादि मनुष्यों के कर्मों का निर्धारण वेदों से ही होता था । वेद मानव को कर्तव्य का बोध कराता है । वेदों को सभी विद्याओं का आधार माना गया है । दार्शनिक विवेचन, राजनीति, मनोविज्ञान, गणित, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा विभिन्न कलाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन है । वेदों से प्राचीन काल के भारतीय समाज की समस्त जानकारी मिलती है ।

वेदों के गौरव एवं महत्त्व के सम्बन्ध में एक मत होने पर भी उसके आविर्भाव के सम्बन्ध में विद्वानों में अत्यन्त गम्भीर मतभेद हैं । वैदिक

1- वेदोऽखिलो धर्ममूलम् (मनु 2-6) ।

2- ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।

(महाभाष्य आह्निक ।)

ग्रन्थों की उपयोगिता सभ्यता के पुराने रूप को जानने में सहायक है । इस कथन से सभी सहमत हो सकते हैं लेकिन यह वैदिक सभ्यता हमारी पवित्र भारत भूमि पर कब और किस काल में प्रकाश में आयी ? किस समय ऋषियों के मन में ज्ञान रूपी दिव्य सन्देश देने की प्रबल इच्छा हुई जिसके लिए उन लोगों ने इन मन्त्रों की रचना की ? -ऐसे कई प्रश्न मस्तिष्क में सदा उठते रहते हैं । लेकिन इनको हल करना उतना आसान नहीं । इस समस्या पर कुछ विद्वानों ने विचार किया है और कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को भी प्रस्तुत किया है। उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

भारतीय दृष्टिकोण में श्रद्धा रखने वाले विद्वानों के सामने तो वेदों के काल निर्णय का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उनके अनुसार वेद अपौरुषेय है, अनादि हैं, अनित्य है । इसीलिए ऋषि लोग मंत्रद्रष्टा कहे गये हैं, मन्त्रों के रचयिता नहीं । लेकिन पाश्चात्य विद्वानों ने और उनके पक्षधर भारतीय विद्वानों ने इस विषय पर बहुत प्रयत्न किया और कुछ प्रमाण इकट्ठा भी किया । लेकिन इन विद्वानों के कालक्रम में शताब्दियों का अन्तर हो गया जिससे इनकी प्रामाणिकता पर सन्देह होने लगा ।

प्रो० मैक्समूलर का मत -

वेदों के काल निर्णय पर प्रथम प्रयास प्रो० मैक्समूलर ने किया। जिन्होंने 1859 ई० में अपने "प्राचीन संस्कृत साहित्य ग्रन्थ में वेदों में प्राचीन

ऋग्वेद की रचना को 1200 ई0पू0 माना । इन्होंने बुद्ध के जन्म के समय को वैदिक साहित्य का अन्त काल बताया । बुद्ध का जन्म ईसा से लगभग 500 वर्ष पहले हुआ था, तभी बौद्ध धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने वैदिक धर्म की आलोचना शुरू कर दी । डॉ0 मैक्समूलर ने वैदिक युग को 4 भागों में बांटा । छन्दकाल, मन्त्रकाल ब्राह्मणकाल, तथा सूत्रकाल । इन्होंने एक काल को 200 वर्षों का माना और इसी के आधार विभाजन किया । सूत्रकाल का प्रारम्भ इन्होंने 600 ई0पू0 माना । इस काल में श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रों की रचना को स्वीकारा गया । ब्राह्मण काल को इन्होंने 800 ई0पू0 से 600 ई0 पू0 का समय माना और इस समय में ब्राह्मणों की रचना, यागानुष्ठान, उपनिषदों में दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ । मन्त्रकाल को 1000 ई0पू0 से 800 ई0पू0 तक माना, जिसमें मन्त्रों का चार विभिन्न संहिताओं में संकलन किया गया और इससे भी पूर्व छन्दकाल था जिसमें ऋषियों ने मन्त्रों की रचना की । इसका समय 1200 ई0 पू0 से 1000 ई0 पू0 माना गया । इसके आधार पर सर्व प्राचीन ऋग्वेद को 1200 ई0 पू0 की रचना मान सकते हैं । आज से लगभग 3200 वर्ष पहले ऋग्वेद की रचना मानी जा सकती है ।

उस समय डॉ0 मैक्समूलर की बड़ी प्रतिष्ठा थी इसका लाभ उठाकर उन्होंने अपने विचार रखे । उनके अनुयायियों ने उन्हें वैज्ञानिक के रूप में ग्रहण कर लिया । लेकिन भाषा तथा विचारों के विकास के लिए 200 वर्ष का समय अत्यन्त कम और अनुचित है । ज्योतिष के आधार-पर भी

कुछ लोगों ने वेदों का काल निर्धारित किया है । इस कड़ी में भारतीय विद्वान् बाल गंगाधर तिलक तथा जर्मनी के विद्वान् डॉ० याकोबी हैं । इन लोगों ने वेदों का काल 4000 वर्ष ईसा पूर्व माना है ।

ऋतुओं और नक्षत्रों की गति सम्बन्धी गणना के माध्यम से इन लोगों ने 4000 वर्ष ई०पू० वेदों का रचना काल माना । एक वर्ष में 6 ऋतुएं मानी गयी हैं, इन ऋतुओं का सूर्य से सम्बन्ध है । ये ऋतुयें प्राचीन काल से पीछे हटती चली जा रही है, अर्थात् जिस नक्षत्र एवं ऋतु का उदय एक साथ होना चाहिए उससे साथ न होकर उस नक्षत्र के पूर्ववर्ती नक्षत्र के साथ उदित हो जाती है । बसन्त से वर्ष का आरम्भ माना जाता है "ऋतूनां कुसुमाकर:" -गीता । एक वृत्त 360^0 का होता है । 27 नक्षत्र माने गये हैं । इस तरह विभाजन करने पर प्रत्येक नक्षत्र $13\frac{1}{2}$ अंश का पडता है । एक नक्षत्र को हटने में 972 वर्ष जाते हैं।कृतिका नक्षत्र में बसन्त सम्पात का काल आज से साढ़े चार हजार वर्ष पहले था ।

तिलक का मत -

तिलक जी ने ज्यौतिर्षीय गणना के आधार पर ऋग्वेद का रचना काल 6000 ई०पू० से 4000 ई० पू० तक माना है । तिलक ने विभिन्न "नक्षत्रों में वसन्त संपात के आधार पर तिथि का निर्धारण किया है । तिलक[1] जी के अनुस

1- तिलक जी के ओरायन नामक ग्रन्थ से।

वसन्त संपात के मृगशीर्ष से भी आगे पुनर्वसु नक्षत्र में होने के भी यथेष्ट संकेत ऋग्वेद में मिलते हैं । अदिति को देवमाता कहा गया है । पुनर्वसु नक्षत्र की देवता अदिति है । पुनर्वसु नक्षत्र में वसन्त संपात होने से वर्ष तथा देवयान का प्रारम्भ इसी काल से माना जाता है । पुनर्वसु नक्षत्रों में आदि नक्षत्र माना जाता था । अदिति युग सबसे प्राचीन युग माना जाता है । डॉ०याकोबी ने गृह्यसूत्रों में वर्णित ध्रुपदर्शन के आधार पर वेदों का काल ई०पू० चतुर्थ सहस्त्राब्द माना है । तिलक जी ने वैदिक काल को चार भागों में विभाजित किया है ।

काल	ई०पू० समय	दृष्ट या प्रणीत ग्रन्थ
1- अदिति काल	6000-4000	मंत्र(गद्यपद्यात्मक, याज्ञिय विधि-वाक्य युक्त)
2- मृगशिराकाल	4000-2500	ऋग्वेद के अधिकांश सूक्त
3- कृत्तिका काल	2500-1400	चारों वेदों का संकलन और कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ
4- अन्तिमकाल (सूत्रकाल)	1400-500	सूत्र ग्रन्थ और दर्शन ग्रन्थ

अन्त में तिलक जी ने निष्कर्ष दिया कि अगर 4000 ई०पू० वेदों का काल मान लिया जाय तो इससे प्राचीन एवं पाश्चात्य विद्वानों के विचारों में सामंजस्य स्थापित हो सकता है ।

श्री अविनाश चन्द्र दास का मत -

श्री दास जी ने भूगर्भ से मिले तथ्यों के आधार पर वेदों का रचना काल 25000 वर्ष ई0पू0 माना ।[1] सरस्वती नदी समुद्र में मिलती है[2]। सरस्वती प्राचीन साक्ष्यों के आधार पर राजस्थान में बहती थी, लेकिन इस समय राजस्थान के समुद्र का लोप हो गया है । यह 25000 वर्ष ई0पू0 की घटना है । उस समय सरस्वती और समुद्र दोनों का अस्तित्व था ।

पं0 शंकर बाल कृष्ण दीक्षित का मत -

दीक्षित जी ने शतपथ[3] ब्राह्मण से एक वर्णन खोजा, जिसके माध्यम से उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना का समय लगभग 3000 ई0 पू0 माना । इस वाक्य में कृत्तिकाओं के ठीक पूर्वीय बिन्दु पर उदय होने का वर्णन है जहाँ से वे च्युत नहीं होती ।

1- ऋग्वैदिक इण्डिया कलकत्ता 1922 ।

2- एका चेतत् सरस्वती नदीनाम् {ऋग्वेद 7-92-2}

3- अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत । एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते । श0ब्रा0 {2-1-2}

तैत्तिरीय संहिता-जिसमें कृत्तिका तथा अन्य नक्षत्रों का वर्णन है, जो श0 ब्रा0 से प्राचीन है । ऋग्वेद सबसे पुराना है । शतपथ ब्राह्मण का रचनाकाल 3000 ई0 पू0 के लगभग माना गया । मै0सं0 को इससे 250 वर्ष पहले मान लिया जाय और ऋग्वेद को मै0 सं0 से भी 250 वर्ष पूर्व माना जाय तो इससे वेद का काल 3500 वर्ष ई0 पू0 से इधर का नहीं सिद्ध हो पाता। दीक्षित[1] जी के अनुसार ऋग्वेद आज से 5500 वर्ष पुराना सिद्ध होता है ।

शिलालेख से पुष्टि -

1907 ई0 में एशिया माइनर (वर्तमान में टर्की देश) के बोगाज कोई स्थान से एक सन्धि पत्र शिलालेख मिला है । यह सन्धि 1400 ई0पू0 के प्रारम्भ में मितानी एवं हिटाइट लोगों के बीच हुई थी, इन दोनों जातियों में घनघोर युद्ध हुआ था । बाद में मितानी नरेश ने हिटाइट की पुत्री के साथ अपना विवाह किया और सन्धि की, जिसमें दोनों जातियों के निजी देवों के साथ ही साक्षी रूप में मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यौ देवों का उल्लेख है । ये देवता वैदिक देवता है, इससे चारों वेदों की रचना 1400 ई0पू0 से पूर्ववर्ती सिद्ध होती है ।

1- भारतीय ज्योतिशास्त्र पूना 1896 पृ0 136-140)

भूगर्भ सम्बन्धी वैदिक तथ्य -

भूगर्भ सम्बन्धी अनेक घटनाओं से भी वेदों के काल निर्धारण में सहायता मिलती है। उस युग में आर्यों के यज्ञ सम्बन्धी कार्य प्राय: सिन्धु नदी के किनारे ही सम्पन्न हुआ करते थे। ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रसंग आया है जिसमें कहा गया है कि सरस्वती नदी ऊँचे गिरि श्रृंगों से निकल कर समुद्र में गिरती है।[1]

राजस्थान में जहाँ आज थार का मरुस्थल है, वहाँ पहले कभी समुद्र की लहरें हिलोरे ले रहा था और इसी समुद्र में सरस्वती और शुतुद्रि नदियां हिमालय से निकलकर आकर गिरती थीं। लेकिन भयंकर भूकम्प एवं भूभौतिक परिवर्तनों के कारण जहाँ समुद्र और नदियाँ थी वहाँ मरुस्थल बन गया। ताण्ड्य महा ब्राह्मण (25/10/6) से स्पष्ट है कि सरस्वती समुद्र तक पहुचने का पूरा प्रयास करती थी, लेकिन मरुस्थल की लगातार वृद्धि के कारण उसे अपनी जीवन लीला समाप्त करनी पडी। आर्यों के मूल निवास स्थान सप्त सिन्धु प्रदेश के चारों तरफ समुद्र होने का पता चलता है। ऋग्वेद के दो मन्त्रों में चार समुद्रों का निर्देश है।[2]

1- एका चेतत् सरस्वती नदीनाम्
"शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। ऋग्वेद (7/95/2)

2- राय: समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोमविश्वत:।
आपवस्य सहस्त्रिण:।। (ऋग्वेद 9/33/6)

एक दूसरे स्थान पर सोम से प्रार्थना की गयी है कि धन से युक्त चारों समुद्रों को चारों दिशाओं से हमारे पास लावे ।[1]

इन सब भूगर्भ सम्बन्धी घटनाओं के आधार पर वेद का काल ईसा से 25000 वर्ष पूर्व मानना चाहिए ।

विन्टरनित्स का मत -[2]

विन्टरनित्स ने उपर्युक्त सभी मतों की आलोचना के बाद अपना समन्वयात्मक मत दिया है कि वैदिक काल 2500 ई०पू० से 500 ई०पू० है । ऋग्वेद का समय 2500 वर्ष ईसा पूर्व माना है ।

पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट ने अपने "वेदकालनिर्णय" नामक ज्योतिषतत्त्वमीमांसक ग्रन्थ के आधार पर वेदों का काल बहुत ही प्राचीन लगभग तीन लाख वर्ष पूर्व सिद्ध किया है ।

इस प्रकार वेद काल के निर्धारण में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद हैं और इनके विचारों में बहुत अन्तर है । कई शताब्दियों का अन्तर किया गया है । मैक्समूलर का मत बोगाजकोई शिलालेख के समक्ष ध्वस्त हो गया । इस शिलालेख को आधार मानकर विन्टरनित्स ने 25000 ई०पू० का समय उपयुक्त

1- स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् । ऋग्वेद 10/47/2

2- विन्टरनित्स- एच०एल०आई भाग 1 पृष्ठ 290-310

माना जो इसकी अपर सीमा है । लेकिन इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है । वैदिक साहित्य की समाप्ति तो बौद्ध और जैन धर्म के पहले मानी जाती है, लेकिन अपर सीमा की कोई सीमा नहीं । तिलक जी, प्रो० याकोबी, श्री दीक्षित के मत कुछ सीमा तक स्वीकार किये जा सकते हैं । वैसे वैदिक साहित्य इतना विस्तृत है कि इसमें निश्चित रूप से 3000 वर्ष लग सकते हैं । व्यावहारिक दृष्टि से वेदों का काल 4000 वर्ष ई०पू० से 1000 वर्ष ईसा पूर्व सही माना जा सकता है ।

संहिता

मन्त्रों के समूह का नाम है "संहिता" । वेद मन्त्र सहस्त्रों की संख्या में हैं, उनके विषय में भी असमानता है । वेद तो सर्वप्रथम एक ही माना गया है बाद में स्वरूप के भेद के कारण तीन माने गये । ऋक्,यजुः,साम । ये "त्रयी" के नाम से जाने जाते थे । मनुस्मृतिकार मनु ने कहा है कि परमात्मा ने यज्ञ की सिद्धि के लिए क्रमशः तीनों वेदों को अग्नि,वायु और सूर्य के लिए प्रकट किया ।[1]

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अग्नि,वायु और सूर्य ने तपस्या करके स्वयं ही ऋक्,यजुः,साम इन तीनों वेदों को उत्पन्न किया।[2]

कुछ विद्वानों ने और कई ग्रन्थों में 4 वेद माना है । श्रीमद्-भागवत् में कहा गया है, कि वेद चार हैं[3] । भगवद्गीता के एक ही पद्य {3/12/37} द्वारा वेद के चार होने की पुष्टि होती है ।

1- अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुस्सामलक्षणम् ।। मनुस्मृति 1/23

2- तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त । अग्नेः ऋग्वेदो,वायोर्यजुर्वेदः
सूर्यात्सामवेदः । शतपथ ।।/अ05

3- ऋक् यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात् ।।

ऋक् का अर्थ है-जो मन्त्र होता नामक ऋत्विज् द्वारा पढ़ा जाता है, और जिसका गान न किया जाता हो। उसे शस्त्र कहा जाता है। यजुर्वेद का वर्ण्यविषय है यज्ञ कर्म। यजुर्वेद मे यज्ञ के अंगों की उत्पत्ति होती है[1]। साम का विषय है स्तुतिस्तोम। स्तुति के लिए प्रयुक्त ऋक् समुदाय को स्तोम कहा जाता है जो उद्गाता द्वारा गाया जाता है. ये स्तोम् कई प्रकार के होते हैं। अथर्ववेद में प्रायश्चित् कर्मों का वर्णन है।

भाष्यकार महीधर एक नयी बात का सुझाव देते हैं। उनके अनुसार ब्रह्मा के समय से जो व्यवस्था वेद के लिए चली आ रही थी, उसी को ग्रहण कर वेदव्यास जी ने अल्पबुद्धि वालों के लिए वेद का विभाजन किया और ऋक् यजु: साम, अथर्व इन चार भागों में विभक्त कर उनका उपदेश क्रमश: पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमंत को दिया।[2]

अथर्ववेद के एक मन्त्र में वेद के चार होने की पुष्टि होती है। हे विद्वन्, तू उस जगदाधार परमपिता, परमेश्वर का वर्णन कर, जिससे ऋषियों ने ऋक् और यजु को प्राप्त किया, जिसके लोमसदृश सर्वव्यापक साम और मुख सदृश

1- यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः।

2- तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तं वेदं वेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्यं तत्कृपया चतुर्धा व्यस्य ऋग्यजु: सामाथर्वाख्यांश्चतुरो वेदान् पैल-वैशम्पायन-जैमिनि-सुमन्तुभ्य:क्रमादुपादिदेश। यजुर्वेद भाष्य।

ज्ञानोपदेशक अथर्व है-वह कौन सा तत्व है,हमें बता ।[1]

यजुर्वेद में कहा गया है कि वेद चार है । अथर्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है । लिखा गया है कि उस परम पूज्य परमात्मा से ऋक् यजुः साम, और अथर्व उत्पन्न हुए ।[2]

ऋग्वेद और अथर्व वेद का वर्ण्यविषय भले ही यज्ञ का न हो लेकिन यजुर्वेद और सामवेद में प्रायः यज्ञों एवं याज्ञिक क्रियाओं का वर्णन है । यज्ञ कार्य करने के लिए ऋत्विजों की आवश्यकता होती है, ऋत्विज् चार प्रकार के गिनाये गये हैं §1§ होता §2§ उदगाता §3§ अध्वर्यु §4§ ब्रह्मा

§1§ होता - होतृकर्म होता नामक ऋत्विज् कराता है.जो ऋग्वेद की ऋचाओं को पढ़कर देवताओं का यज्ञ के लिए आह्वान करता है ।

§2§ उदगाता -उदगाता का सम्बन्ध सामवेद से है । औदगात्रकर्म करने के लिए उदगाता देवताओं की स्तुति में साम का गायन करता है.जिन ऋचाओं के ऊपर साम का गायन होता है उन्हें "योनि" शब्द से जाना जाता है ।

1- यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखम् ।।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।
अथर्ववेद,का010,प्रपाठक23,अनु04,मं020

2- तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऋचःसामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्माद-जायत । यजुर्वेद अ0 31 । मन्त्र 7 ।

§3§ अध्वर्यु -

अध्वर्यु नामक ऋत्विक् यजुर्वेद से सम्बन्धित होता है । यज्ञ सम्बन्धी कार्यों का यह प्रधान ऋत्विक् है । आध्वर्यव कर्म के लिए ही यजुर्वेद की शाखाओं का संकलन किया गया । अध्वर्यु गद्यात्मक मंत्रों का उच्चारण करता हुआ अपने कार्यों को पूर्ण करता है ।

§4§ ब्रह्मा -

"ब्रह्मा" नामक ऋत्विक का प्रधान वेद अथर्व वेद था । साथ में वेदत्रयी का भी ज्ञाता होता था । "ब्रह्मा" नामक ऋत्विक कार्य यज्ञ की बाहरी विघ्नों से सुरक्षा, स्वरों के उच्चारण में त्रुटियां होने पर उसे सही करना और कोई कठिनाई यज्ञीय कार्यों में हो रही हो तो उसे दूर करना । ब्रह्मा को यज्ञ का अध्यक्ष माना जाता है । ब्रह्मा के गौरव का सर्वत्र वर्णन किया गया है । छान्दोग्य उपनिषद् में "ब्रह्मा" यज्ञ के लिए भिषक् की पदवी से अलंकृत किया गया है ।[1]

इस तरह यह सिद्ध हो चुका कि संहितायें चार हैं । §1§ ऋग्वेद §2§ यजुर्वेद §3§ सामवेद §4§ अथर्ववेद । क्रमशः इनका परिचय यहाँ पर दिया जा रहा है ।

1- भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति- छान्दोग्य 4/17/8 ।

ऋक् संहिता

ऋक् का अर्थ- ऋक् का अर्थ है स्तुतिपरक मंत्र । ऋच्यते स्तूयते-ऽनया इति ऋक् । ऋग्वेद में ऋचाओं द्वारा देवों की स्तुति की जाती है । उन्हीं ऋचाओं से देवताओं का आह्वान किया जाता है । ऋक् इत्यादि शब्दों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलती है । इनमें ब्रह्म, वाणी, प्राण अमृत और पृथ्वी लोक को ऋक् कहा गया है । यजुर्वेद में शब्द ब्रह्म को ऋक्, मनस्तत्त्व को यजुष् और प्राण तत्त्व को सामन् कहा गया है ।[1]

ऋग्वेद वैदिक साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है और इसका बड़ा महत्त्व माना गया है । अन्य वेदों की अपेक्षा ऋग्वेद अत्यधिक पुराना है । तैत्तिरीय संहिता के अनुसार साम तथा यजुः के द्वारा जो कार्य किये जाते हैं वह शिथिल माना जाता है और ऋग्वेद के द्वारा किये गये अनुष्ठान ठोस एवं दृढ़ माने गये हैं ।[2]

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में हजारों मुख वाले परमेश्वर से ऋचाओं का ही आविर्भाव सबसे पहले बतलाया गया है ।[3]

1- ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये (यजु036/1)

2- यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तत् यद् ऋचा तद्दृढमिति।
तैत्तिरीय संहिता 6/5/10/3

3- तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत ।। ऋग्वेद 10/90/9

ऋग्वेद विषय सामग्री और विशालता की दृष्टि से तीनों अन्य वेदों के मिला देने से भी अधिक है । इसका विभाजन दो प्रकार से किया गया है ﴾1﴿ अष्टक क्रम ﴾2﴿ मण्डल क्रम ।

अष्टक क्रम - पूरा ऋग्वेद आठ अष्टकों में विभाजित है । अष्टक अध्यायों में विभाजित किये गये हैं । प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं । इस विभाजन से ऋग्वेद के 64 अध्याय होते हैं । प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या में भिन्नता है । यह संख्या 25 से 49 वर्ग तक है । प्रत्येक वर्ग में मन्त्रों की संख्या सामान्यतया 5 पायी जाती है । ऋग्वेद में समस्त वर्गों की संख्या 2024 है । इस प्रकार ऋग्वेद में 8 अष्टक व 8 अध्याय, 2024 वर्ग 10552 मंत्र हैं ।

मण्डल क्रम -

यह विभाग अधिक महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक और प्रामाणिक है: इसमें देवता के अनुसार विभाजन किया गया है । इस क्रम में पूरे ऋग्वेद को 10 मण्डलों में विभाजित किया गया है । 85 अनुवाक् हैं, 1028 सूक्त और 10552 मन्त्र हैं । मण्डल क्रमवार सूक्तों की संख्या इस प्रकार है ।

181 + 43 + 62 + 58 + 87 + 75 + 104 + 92 + 114 + 191= 1017 सूक्त 11 सूक्त वालखिल्य के नाम से जाने जाते हैं । इन वालखिल्य सूक्तों को अष्टक मण्डल का माना जाता है । "खिल" का शाब्दिक अर्थ है-पीछे से जोड़े गये मन्त्र ।

महिला ऋषिकायें -

ऋषि लोग जिस तरह से मन्त्रों के द्रष्टा कहे गये हैं, उसी प्रकार से महिलाएं भी वैदिक मन्त्रों की द्रष्ट्री थीं । ऋग्वेद में इस तरह की 21 ऋषिकाओं का वर्णन प्राप्त होता है । इन लोगों के द्वारा सैकड़ों मन्त्रों दृष्ट हैं । अधिकांश मन्त्र दशम मंडल के हैं ।

ऋग्वेद की शाखायें

महाभाष्यकार पतन्जलि ने ऋग्वेद की 21 शाखाओं का माना है ।[1]

नियम तो यह है कि जितनी शाखायें होगी,उतने ब्राह्मण होने चाहिए, उतने आरण्यक,उपनिषद,श्रौत और गृह्यसूत्र । लेकिन यह दुःख का विषय है कि किसी शाखा की यदि संहिता है, तो ब्राह्मण नहीं,ब्राह्मण है तो आरण्यक नहीं । इस तरह कोई भी शाखा पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकी ।

चरण व्यूह के अनुसार ऋग्वेद की 5 शाखायें मानी गयी हैं-
(1) शाकल (2) वाष्कल (3) आश्वलायन (4) शांखायन (5)माण्डूकायन

1- एकविंशतिधा वाह्वृच्यम् (महाभाष्य आह्निक) ।

इसमें से केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध है और सभी अनुपलब्ध। वाष्कल शाखा की संहिता नहीं मिलती। आश्वलायन के संहिता और ब्राह्मण का अस्तित्व कभी रहा होगा, लेकिन आज इस शाखा का केवल श्रौत एवं गृह्यसूत्र ही उपलब्ध है। शांखायन शाखा की संहिता तो नहीं ब्राह्मण एवं उपनिषद उपलब्ध हैं। शांखायन को बहुत से लोग कौषीतकि शाखा भी कहते हैं। माण्डूकाय का केवल नाममात्र शेष है।

ऋग्वेद का वर्ण्य विषय

ऋग्वेद का प्रधान विषय देवस्तुति है। लेकिन स्थान-स्थान पर अन्य विषय भी पाये जाते हैं। ऋग्वेद में ऋषियों ने अपने अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुति की है। एक विशिष्ट कुल के ऋषियों की प्रार्थना ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से सप्तम मण्डल तक वर्णित हैं। ऋग्वेद में तीन देवता मुख्य माने गये हैं। सबसे अधिक ऋचायें अग्नि के लिए हैं। इन्द्र एक पराक्रमी देव के रूप में वर्णित है। प्राणियों की भावनाओं को समझने वाला और उसके अनुसार दण्ड और पुरस्कार देने का कार्य वरुण द्वारा होता है। इसलिए वरुण को कर्मफल दाता के रूप में दिखाया गया है।

यास्क ने भी देवताओं को तीन श्रेणी में विभाजित किया है- निरुक्त (अध्याय 7 से 12) दैवत काण्ड में देवताओं के ऊपर पर्याप्त रूप से विचार किया गया है (1) पृथिवी स्थानीय (2) अन्तरिक्ष स्थानीय (3) द्युस्थानीय।

एक स्थान के लिए केवल एक-एक देवता को मुख्य माना है । अग्नि को पृथिवी स्थानीय इन्द्र या वायु अन्तरिक्ष स्थानीय और सूर्य को द्युस्थानीय मुख्य देवता माना है ।[1]

विभिन्न गुणों के कारण इन तीन देवों की अनेक नामों से स्तुति की गयी है ।[2]

इन तीनों देवताओं के अतिरिक्त जिन देवताओं की स्तुति में वैदिक ऋचायें मिलती हैं, उनमें प्रधान देवता हैं -सविता, पूषा, मित्र, विष्णु, रुद्र, मरुत, पर्जन्य आदि ।

ऋग्वेद में एक ओर अनेक देवतावाद का समर्थन मिलता है तो दूसरी ओर एकेश्वर वाद का समर्थन मिलता है । एकेश्वरवाद का समर्थन परकाली अंश मण्डल 1 तथा 10 में ही होकर मण्डल 5 में भी मिलता है । इसमें कहा गया है कि एक मौलिक तत्व के ही ये अनेक देवता वाचक नाम है - इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुत्मान् यम और मातरिश्वा ।[3]

1- तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निःपृथिवी स्थानः। वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः । सूर्योद्युस्थानः । निरुक्त (7-5)

2- तासां माहाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।अपि वा कर्म पृथक्त्वात् । निरुक्त 7-5)

3- इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।(ऋग्वेद 1-164-46

एक दूसरे मन्त्र में अग्नि को वरुण, मित्र विश्वेदेवा और इन्द्र कहा गया है ।[1]

ऋग्वेद के संवाद सूक्त बड़े महत्त्वपूर्ण हैं । तीन संवादसूक्त विशेष महत्त्वपूर्ण हैं §1§ पुरूरवा-उर्वशी संवाद §ऋग्वेद 10/85§ §2§ यमयमी संवाद §ऋग्वेद 10/10§ §3§ सरमापणि-संवाद । §ऋग्वेद 10/130 §

ऋग्वेद के दशम मंडल में पुरुष सूक्त §10/90§ अपनी दार्शनिकता, गम्भीरता के लिए प्रसिद्ध है । पुरुष के आध्यात्मिक कल्पना का भव्य निदर्शन है "पुरुष के असंख्य सिर हैं, सहस्र नेत्र तथा सहस्त्र पाद हैं,[2] अर्थात् उसके सिर, नेत्र, तथा पैरों के संख्या की इयत्ता नहीं है ।

यजुः संहिता

यजुर्वेद के यजुष् शब्द की कई व्याख्यायें की गयी हैं । यजुष के मुख्य अर्थ हैं §1§ यजुर्यजते:-यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों को यजुष् कहते हैं §2§ इज्यतेऽनेनेति यजुः । जिन मंत्रों से यज्ञ इत्यादि किये जाते हैं §3§ अनियताक्षरावसानोयजुः-

---

1- त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।
त्वं विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ।।
§ऋग्वेद 5/3/1§

2- सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।
§ ऋग्वेद 10/90/1 §

जिन मंत्रों में पद्यों की तरह अक्षरों की संख्या निश्चित न हो । §4§ गद्यात्मको यजुः §5§ शेषुयजुः शब्दः।[1] ऋक् तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों को यजुः कहते हैं ।

वेद के दो सम्प्रदाय माने गये हैं §1§ ब्रह्मसम्प्रदाय §2§ आदित्य-सम्प्रदाय । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि आदित्य यजुः शुक्ल यजुः के नाम से प्रसिद्ध है, तथा याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात हैं ।[2] अतः आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व शुक्लयजुर्वेद करता है, तथा ब्रह्मसम्प्रदाय का कृष्ण-यजुर्वेद ।

यजुर्वेद की शाखायें

यजुर्वेद मुख्यतः दो शाखाओं में विभाजित है ।

§1§ शुक्ल यजुर्वेद §2§ कृष्ण यजुर्वेद ।

शुक्ल यजुर्वेद शुद्ध रूप से मन्त्रात्मक है । यही इसका शुक्लत्व है । इसमें व्याख्यात्मक और विनियोगात्मक भाग का वर्णन है । शुक्लयजुर्वेद के मन्त्र नाना प्रकार के यज्ञों में पढ़े जाते हैं । शुक्लयजुर्वेद को माध्यन्दिन और वाज-सनेयि नामों से भी जाना जाता है । कृष्ण यजुर्वेद में गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण है, इसमें मन्त्रों के साथ उसकी व्याख्या और विनियोग का भी वर्णन

1- पूर्व मीमांसा § 2/1/37§

2- आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते

§शतपथ ब्राह्मण 14/9/5/33§

होता है।गद्य और पद्य के मिश्रण के कारण ही इसे कृष्ण यजुर्वेद के नाम से जाना जाता है ।

लेकिन कुछ विद्वान् यजुर्वेद की 100 शाखायें मानते हैं । इस विचार को रखने वालों में महाभाष्यकार पतन्जलि का नाम सबसे पहले आता है उन्होंने लिखा है "एकशतमध्वर्युशाखाः"[1] । कूर्म पुराण[2] औरसर्वानुक्रमणी[3] में 100 शाखाओं का उल्लेख किया गया है । "चरणव्यूह" में 86 शाखाओं का वर्णन है । इन शाखाओं में से कुछ शाखाएं बराबर लुप्त होती गयीं । इनमें से अब 6 शाखायें ही बची हैं । शुक्लयजुर्वेद की 2 शाखायें और कृष्ण यजुर्वेद की 4 शाखाएं ।

इनका क्रमशः संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

1- <u>माध्यन्दिन या वाजसनेयि संहिता</u> -

इसमें 40 अध्याय है और मंत्रों की संख्या 1975 हैं । इसमें विभिन्न प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया गया है ।

2- <u>काण्व संहिता</u> -

वाजसनेयि संहिता की तरह इसमें भी 40 अध्याय हैं, इसमें मन्त्रों की संख्या 2086 है । वाजसनेयि का प्रसार उत्तर भारत में अधिक है, जब कि काण्व संहिता का महाराष्ट्र प्रदेश में । प्राचीन काल में काण्व का विस्तार

1- महाभाष्य आह्निक

2- शाखानां तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत् । {कूर्मपुराण 49/51}

3- यजुरेकशताध्वकम् । {षड्गुरुशिष्य, सर्वानुक्रमणी वृत्ति}

उत्तर भारत में भी था । महाभारत के अनुसार " कण्व मुनि का आश्रम मालिनी नदी के तट पर था, जो उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में मालन नदी नाम से प्रसिद्ध है ।[1] काण्व शाखा का सम्बन्ध पान्चरात्र आगम के साथ विशेष रूप से पान्चरात्र संहिताओं में सर्वत्र माना गया है ।[2]

कृष्ण यजुर्वेद

चरण व्यूह में कृष्णयजुर्वेद की 85 शाखायें बतायी गयी हैं । जिनमें 4 उपलब्ध होती हैं ।

§1§ तैत्तिरीय संहिता -

यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रमुख संहिता है । इसमें 7 काण्ड 44प्रपाठक और 631 अनुवाक हैं । यह सर्वांग पूर्ण शाखा है । क्यों कि इसके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, श्रौत, गृहय, धर्म सूत्र सभी मिलते हैं, इसमें पौरोडाश, वाजपेय, राजसूय आदि नाना प्रकार के यागानुष्ठानों का वर्णन है ।

§2§ मैत्रायणी संहिता -

इसमें 4 काण्ड, 54 प्रपाठक और कुल 2144 मंत्र हैं, इनमें से 1701 मन्त्र ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों से लिये गये हैं ।

1- महाभारत आदि पर्व § 63/18 §

2- सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम् । वृहद्देवता ।

2- भागवत सम्प्रदाय -बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 112-113

3- काठक संहिता -

इसमें 40 स्थानक और 843 अनुवाक् हैं । मन्त्रों की संख्या 3091 तथा मन्त्रब्राह्मणों की संख्या 18 हजार है । पतन्जलि के अनुसार कठ संहिता का प्रचार प्रसार एवं पठन पाठन प्रत्येक गाँव में था[1] । इसमें प्रमुख यागों का वर्णन किया गया है ।

4- कपिष्ठल कठ संहिता -

यह संहिता अधूरी प्राप्त है । कपिष्ठल एक ऋषि विशेष का नाम है, जिनका उल्लेख पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में किया है । "कपिष्ठलो गोत्रे"[2] । दुर्गाचार्य ने भी अपने को कापिष्ठलो वासिष्ठः[3] कहा है । इसमें 6 अष्टकों में 48 अध्याय हैं, जिनमें से 9 से 24, 32, 33 तथा 43 अध्याय खण्डित रूप में ही प्राप्त हैं ।

प्रतिपाद्य विषय -

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद माना गया है । यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाले पुरोहित को अध्वर्यु कहा जाता है । ऋग्वेद में कहा गया है- "यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः"[4] । वह यज्ञ को सम्पन्न कराता है इसलिए

1- ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते । महाभाष्य 4/3/101

2- पाणिनि अष्टाध्यायी (8/3/91)

3- अहं च कापिष्ठलो वासिष्ठः (निरुक्त टीका 4/4)

4- ऋग्वेद 10/71/11

निरुक्त में कहा गया है[1]। जितने भी यज्ञ किये जाते हैं, उनका कुछ उद्देश्य रहता है - राज्य वृद्धि, श्री वृद्धि, पुत्र प्राप्ति इत्यादि ।

सामवेद

सामन् का अर्थ गान के रूप में लिया जाता है । ऋग्वेद के मन्त्र गान पद्धति से गाये जाते हैं तो उनको साम कहा जाता है । पूर्वमीमांसा में गीति को साम कहा गया है ।[2] वृहद्देवता का कहना है कि जो पुरुष साम को जानता है वही वेद के रहस्य को जानता है ।[3] गीता में कृष्ण भगवान् ने स्वयं सामवेद को अपना स्वरूप बताया है ।[4] साम का आधार ऋक् मन्त्र ही होता है । यह निश्चित ही है ।[5]

ऋक् और साम के इस गाढ़े सम्बन्ध को सूचित करने के लिए इनमें पति पत्नी का भाव दर्शाया गया है । पति सन्तान की इच्छा से पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि "मैं सामरूपपति हूँ, तुम ऋकरूपा पत्नी हो, मैं आकाश हूँ, तुम पृथ्वी हो । अतः आवो, हम दोनों मिलकर प्रजा का

1- अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता (निरुक्त अ० । पाद 3)

2- गीतिषु सामाख्या (पूर्व 2/1/36)

3- सामानि यो वेत्ति स वेद तत्वम् । वृहद्देवता ।

4- वेदानां सामवेदोऽस्मि" (भगवद्गीता 10/42)

5- ऋचि अध्यूढं साम । छान्दोग्य उपनिषद 1/6/1

उत्पादन करें ।[1]

गान ही सामवेद का स्वत्व है । गान ही सामवेद की प्रतिष्ठा है ।[2]

सामवेद के दो प्रधान भाग माने गये हैं । आर्चिक तथा गान । आर्चिक का अर्थ होता है, ऋक् समूह जिसके दो भाग हैं-पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक पूर्वार्चिक में 6 प्रपाठक हैं-प्रत्येक प्रपाठक के दो खण्ड हैं, प्रत्येक खण्ड में एक दशति और दशति में अनेक ऋचायें हैं । इनमें मुख्य देवताओं की स्तुति की गयी हैं । पूर्वार्चिक के मन्त्रों की संख्या 650 है ।

उत्तरार्चिक में 9 प्रपाठक हैं । पहले पाँच प्रपाठकों में दो-दो भाग हैं, शेष चार प्रपाठकों में 3-3 भाग किये गये हैं । यह वर्णन राणायनीय शाखा के अनुसार है । उत्तरार्चिक के मन्त्रों की संख्या 1225 है । इस तरह दोनों आर्चिकों को जोड़ने पर 1875 मन्त्र हुए । इतने मन्त्र सामवेद में हैं । इनमें से 1771 मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं - और 104 नवीन हैं ।

1- "अमोऽहमस्मि सा त्वम्, सामाहमस्मि ऋक् त्वम्, द्यौरहं पृथिवी त्वम्-ताविह संभवाव, प्रजामाजनयाव है"- बृहदारण्यक उपनिषद् 6/4/20 ।

अथर्ववेद 14/2/71 ऐतरेय ब्राह्मण 8/27

2- तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद --------------तस्य स्वर एव स्वम् ।

बृहदारण्यक उपनिषद 1/3/25

सामवेद की शाखायें

महाभाष्य में महर्षि पतन्जलि ने सामवेद की एक हजार शाखाओं का उल्लेख किया है ।[1] लेकिन यह विचार पूरी तरह विश्वास न पा सका, क्योंकि "वर्त्मन्" शब्द शाखावाचक नहीं माना गया । श्री सत्यव्रत सामश्रमी एवं श्री सातवलेकर ने एक सहस्त्र शाखा न मानकर सामवेद के गान की एक सहस्त्र पद्धतियों को स्वीकार किया । "सामतर्पणम्" में 13 शाखाकारों का नाम आया है §1§ राणायन §2§ शाट्यमुग्रय, §3§ व्यास §4§ भागुरि §5§ औलुरि §6§ गौल्गुलवि §7§ भानुमानौपमन्यव §8§ काराटि §9§ मशक गार्ग्य §10§ वार्षगण्य §11§ कुथुम §12§ शालिहोत्र §13§ जैमिनि।

इन तेरह आचार्यों में से आजकल केवल तीन आचार्यों की शाखायें मिलती हैं §1§ कौथुमीय §2§ राणायनीय §3§ जैमिनीय ।

इन शाखाओं का दक्षिण तथा पश्चिम भारत में थोड़ा बहुत प्रचार है । उत्तर भारत में इनका प्रचार नहीं है । कौथुम शाखा का प्रचार ज्यादा है । गुजरात के नागर ब्राह्मणों में इस शाखा का प्रचलन है । राणायनीय का महाराष्ट्र में, जैमिनीय का कर्नाटक के सुदूर जिलों में प्रचार है ।

1- सहस्त्रवर्त्मा सामवेद: §आह्निक । §

2- राणायन-शाट्यमुग्रय-व्यास-भागुरि-औलुण्डी-गौल्गुलवि भानु मानौपमन्यव-काराटि-मशक गार्ग्य-वार्षगव्य-कुथुम-शालिहोत्र-जैमिनि-त्रयोदशैते में साम-गाचार्या: स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिता:। §सामतर्पणम्§

1- कौथुमीय शाखा -

यह संहिता सर्वाधिक पसंद की जाती है । ताण्ड्य महाब्राह्मण इसी शाखा का है, जो इस "शोध प्रबन्ध" का विषय है । इसी कौथुमीय शाखा की ताण्ड्य नामक शाखा भी मिलती है । शंकराचार्य ने अपने वेदान्त भाष्य में इसका नाम निर्देशित किया है । जिससे इसके गौरव और महत्त्व का पता चलता है । प्रसिद्ध उपनिषद छान्दोग्य भी इसी शाखा से सम्बन्धित है ।[1]

2- राणायनीय शाखा -

मन्त्र गणना की दृष्टि से राणायनीय और कौथुमीय शाखाओं में कोई भेद नहीं है । उच्चारण मात्र का भेद है । राणायनीयों की एक अवान्तर शाखा सात्यमुग्रि है । आपिशलि[2] तथा महाभाष्य[3] ने निर्देश किया है कि सात्यमुग्रि लोग एकार तथा ओकार का हृस्व उच्चारण करते थे ।

3- जैमिनीय शाखा -

इस शाखा का समग्र विषय उपलब्ध है । कहने का तात्पर्य है कि

1- यथा ताण्डिनामुपनिषदि षष्ठे प्रपाठके स आत्मा" -शांकरभाष्य 3/3/36
= स आत्मा -----------छान्दोग्य उपनिषद का एक प्रमुख अंश है ।

2- "छान्दोगानां सात्यमुग्रि राणायनीया हृस्वानि पठन्ति" आपिशली शिक्षा

3- ननु च भोश्छन्दोगानां सात्यमुग्रि-राणायनीया अर्धमेकारं--अर्धमोकारञ्च अधीयते । सुजाते ए अश्वसूनृते । अध्वर्यो ओ अद्रिभिः सुतम्-सामवेद 1/1/8/3
महाभाष्य 1/1/4, 48

इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, श्रौत तथा गृह्य सूत्र उपलब्ध है । कौथुम शाखा के मन्त्रों की संख्या से इस शाखा में 182 मन्त्र कम हैं । दोनों में नाना प्रकार के पाठ भेद पाये जाते हैं । जैमिनीयों के सामगान कौथुमों की अपेक्षा लगभग एक हजार अधिक हैं । तवलकार शाखा इसकी अवान्तर शाखा है, जिससे केनोपनिषद् सम्बन्धित है ।

प्रतिपाद्य विषय -

सामवेद का प्रमुख विषय है । उपासना । सामवेद में मुख्य रूप से सोमयाग से सम्बंधित मन्त्रों का संकलन है । इन मंत्रों में सामगान की दृष्टि से एक एक मन्त्र की लय को याद करना पड़ता है । पूर्वार्चिक में इन्द्र, अग्नि और सोम से सम्बन्धित मंत्र दिये गये हैं । यज्ञों की कार्यविधि जब सम्पन्न हो रही होती है, उस समय उद्‌गाता नामक ऋत्विज् इन मंत्रों को गाता है । यजुर्वेद और सामवेद में घनिष्ठ सम्बन्ध है । सामवेद में सोम, सोमरस, सोमयाग, सोमपान का विशेष रूप से महत्त्व है । अतः इसे सोमप्रधान वेद कहा जा सकता है, आध्यात्मिक दृष्टि से सोम ब्रह्म तत्त्व है । उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है ।

सामगान ग्रन्थ -

पूर्वार्चिक के मन्त्रों को सामयोनि मन्त्र कहते हैं । इनके आधार पर गान ग्रन्थों की रचना हुई है, इनकी संख्या चार मानी गयी है । 1- वेयगान 2- आरण्यगान 3- ऊह गान 4- ऊह्य गान । इनमें से प्रथम दो योनिगान हैं तथा अन्तिम दो विकृति गान के नाम से जाने जाते हैं ।

1-वेयगान का दूसरा नाम ग्रामे गेय गान । यह गाँव गाँव में या सार्वजनिक स्थानों पर गाया जाता है ।

2- आरण्यक गान - आरण्य गान के स्तोभ इतने विलक्षण एवं विचित्र हैं कि गाँव में इनके गान से अनर्थ हो सकता है । इसलिए येहगान वनों में या पवित्र स्थानों पर ही गाया जाता है ।

3- ऊह गान- ऊह का अर्थ ऊहन किया जाता है, जिसका अर्थ होता है-किसी अवसर पर मन्त्रों का समय से परिवर्तन । यह सोमयाग या विशिष्ट धार्मिक अवसरों पर गाया जाता है ।

4-ऊह्यगान - इनका सम्बन्ध आरण्य गान से माना जाता है । ऊह्य शब्द का उपयोग रहस्य अर्थ में किया जाता है । रहस्यात्मक होने के कारण ही ये आरण्य गान के विकृतिगान माने जाते हैं ।

स्तोभ -

शस्त्र तथा स्तोत्र में अन्तर होता है । शस्त्र का लक्षण है "अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्" अर्थात् बिना गाये गये मन्त्र के द्वारा सम्पन्न स्तुति ।"शस्त्र" ऋग्वेद में होता है और स्तोत्र सामवेद में । स्तोत्र का अर्थ बताया गया है - "प्रगीत-मन्त्र साध्या स्तुतिः स्तोत्रम् । स्तोभ भी स्तोत्र का प्रकारान्तर है । स्तोभों का प्रयोग यज्ञादि कार्यों में भी किया जाता है । इनका विशेष वर्णन ताण्ड्य ब्राह्मण में किया गया है । वहाँ पर स्तोम की संख्या 9 मानी गयी है । 1- त्रिवृत् 2-पन्चदश 3- सप्तदश 4-एकविंश 5-त्रिणव 6- त्रयस्त्रिंश 7- चतुर्विंश 8- चतुश्चत्वारिंश 9- अष्टाचत्वारिंश ।

अथर्ववेद

वेद सर्वप्रथम तीन ही माने गये थे । अथर्ववेद को कुछ विद्वानों ने बाद में वेद के रूप में स्वीकार किया । इस जीवन को सुखमय कैसे बनाया जा सकता है, दुःख से छुटकारा कैसे मिल सकता है - इन सब के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनकी सिद्धि के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठानों एवं मन्त्रों का विधान अथर्ववेद में किया गया है । जो चार ऋत्विक् माने गये हैं । उनका ब्रह्मा नामक ऋत्विक् अथर्ववेद के मन्त्रों का पाठ करता है । ब्रह्मा को यज्ञ का अध्यक्ष माना गया है ।

गोपथ ब्राह्मण और निरुक्त में अथर्वन् शब्द के दो निर्वचन दिये गये हैं ।- अथर्वन् -निरुक्त में थर्व् धातु गत्यर्थक मानी गयी है । इसलिए अथर्वन् गतिहीन या स्थिर के अर्थ में प्रयुक्त होगा । इसका कहने का तात्पर्य है कि जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है ।[1] 2- गोपथ में अथर्वा अथार्वाक् का संक्षिप्त रूप माना गया है, अर्थ अर्वाक् अथार्वाक् । इसका अभिप्राय है-समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या जिस वेद में आत्मा को अपने अन्दर देखने की शिक्षा है ।[2] कुछ विद्वानों ने थर्व धातु को हिंसा या कुटिलता के अर्थ में लिया है । लेकिन वैयाकरण पाणिनि ने ऐसी किसी धातु का उल्लेख नहीं किया है ।

1- अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः । थर्वतिश्चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः {निरुक्त ।।-18}

2- अथ अर्वाग् एन------अन्विच्छेति, तद्यदब्रवीद अथर्वाङेनमेतास्वप्स्वान्विच्छेति तदथर्वाऽभवत् । {गोपथ ।-4}

अथर्ववेद के विभिन्न नाम अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं ।

1- अथर्ववेद -

इस वेद में अथर्वा ऋषि के ही सर्वाधिक मन्त्र है, इसलिए इनके नाम पर इसका नाम अथर्ववेद पड़ा ।[1]

2- अंगिरस -

गोपथ में अंगिरस एवं इनके वंशजो के उल्लेख होने के कारण इसे अंगिरस नाम से जाना जाता है ।[2]

3- अथर्वांगिरसवेद-अथर्वा एवं अंगिरस के वंशजों का वर्णन होने से अथर्वांगिरस वेद कहा गया ।[3]

4- ब्रह्मवेद -

अथर्ववेद में इसे ब्रह्मवेद भी कहा गया है । ब्रह्मा इसमें 967 मन्त्रों के द्रष्टा हैं ।[4]

5- भृग्वाङ्गिरोवेद -

भृग्वंगिरा 670 मन्त्रों के द्रष्टा माने गये हैं गोपथ(3-1) में इसे भृग्वंगिरोवेद कहा गया है ।

1- स अथर्वणो वेदोऽभवत् (गोपथ 1-5)

2- स आंगिरसो वेदोऽभवत् (गोपथ 1-8) शतपथ 13-4-3-8 ।

3- अथर्वाङ्गिरसो मुखम् (अथर्ववेद 10-7-20)

4- तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् (अथर्व 15-5-6)

6- क्षत्रवेद -

इसमें राजाओं एवं क्षत्रियों के कार्यों का वर्णन होने से शतपथ ब्राह्मण में इसे क्षत्रवेद कहा गया है ।[1]

7- भैषज्यवेद -

इसमें चिकित्सा सम्बन्धी वर्णन है, इसलिए इसे भैषज्यवेद कहा गया है । अथर्ववेद में इसे भेषजा कहा गया है ।[2]

8- छन्दोवेद -

यह छन्द प्रधान वेद है इसलिए इसे अथर्ववेद में छन्दोवेद कहा गया है ।[3]

9- महीवेद -

ब्रह्मविद्या सम्बन्धी उपदेश या महत्त्वपूर्ण भूमि-सूक्त के कारण महीवेद कहा जाता है । अथर्व वेद में "मही" शब्द के प्रयोग से महीवेद कहा गया है ।[4]

अथर्ववेद की शाखाएं

महाभाष्यकार पतन्जलि ने अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया है ।[5] कई अन्य ग्रन्थों मे भी अथर्ववेद की 9 शाखा माना है । प्रपंच हृदय

1- उक्थं -------यजुः-------साम------क्षत्रं वेद (शतपथ 14-8-14-2 से
2- ऋचः सामानि भेजजा यजूंषि । (अथर्ववेद 11-6-14) ।
3- ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह । (अथर्ववेद 11-7-24) ।
4- ऋचः साम यजुर्मही (अथर्ववेद 10-7-14)
5- नवधाऽथर्वणो वेदः ।

चरण व्यूह ने 9 शाखा तो माना है लेकिन नामों में अन्तर पाया जाता है ।
1- पैप्पलाद 2- तौद 3- मौद 4- शौनकीय 5- जाजल 6- जलद
7- ब्रह्मवद 8- देवदर्श 9- चारण वैध । इनमें से केवल दो शाखायें ही उपलब्ध हैं । पैप्पलाद और शौनक । अन्य शाखायें नाममात्र के लिये शेष हैं ।

1- पैप्पलाद शाखा -

पैप्पलाद एक बहुत बड़े मुनि थे ये अध्यात्मवेत्ता माने गये हैं- क्योंकि अध्यात्मसम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने के लिए भारद्वाज इत्यादि मुनि इनके पास गये थे । पैप्पलाद ने इनके प्रश्नों का जो उत्तर दिया, वे सब प्रश्नोपनिषद् में वर्णित हैं । इस संहिता की एक प्रति शारदा लिपि में कश्मीर में प्राप्त हुई । पैप्पलाद संहिता का आदि मन्त्र है-"शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्त्रवन्तु नः ।" लेकिन शौनक शाखा में यह मन्त्र छठें सूक्त का प्रथम मन्त्र है । शौनक शाखा ही आजकल प्रचलित शाखा है ।

2- शौनक शाखा -

अथर्ववेद का प्रसिद्ध "गोपथ ब्राह्मण" इसी शाखा से सम्बद्ध है । यही शाखा प्रसिद्ध भी है । शौनक संहिता में 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं । बीसवाँ काण्ड सबसे बड़ा है और सत्रहवाँ काण्ड सबसे छोटा है । यजुर्वेद की तरह ही अथर्ववेद में गद्य के अंश पाये जाते हैं । लगभग पूरे अथर्ववेद का 1/6 भाग गद्य भाग में हैं । लगभग 50 सूक्त गद्य में हैं । 15वाँ एव 16वाँ काण्ड गद्य में है । अथर्ववेद का पन्चमांश (लगभग 1200 मन्त्र) ऋग्वेद के समानता वाली

ऋचाओं में निबद्ध है । ऐसे मन्त्र प्रथम, अष्टम तथा दशम मण्डलों में मिलते हैं । अन्तिम काण्ड में "कुन्ताप सूक्त" सम्मिलित है ।

प्रतिपाद्य विषय -

अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद का विषय विलक्षण है । इसका मुख्य विषय है -मारण, मोहन, अभिशाप सम्बन्धी मन्त्र । इसलिए अथर्ववेद को उतना सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है । स्मृतियों में यहाँ तक कहा गया है कि अथर्ववेद के अनुकूल जो आचरण करे वह दण्डनीय है । वेदों की विशेषता केवल सदाचरण में रही है जब कि अथर्ववेद में छल प्रपंच, सम्मोहन, अभिशाप इत्यादि से सम्बन्धित मंत्रों का संकलन है । इतिहास, पुराण में भी जहाँ धार्मिक सदाचरण का वर्णन है- वे ग्रन्थ भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं । अथर्ववेद में वर्णित विषय का तीन प्रकार से विभाजन किया जा सकता है । 1-अध्यात्म 2- अधिभूत 3- अधिदैवत । अध्यात्म में ब्रह्म, परमात्मा, और चारो आश्रमों का वर्णन है । अधिभूत में राजा, राज्य शासन, संग्राम आदि का और अधिदैवत में नाना प्रकार के देवता, यज्ञ के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है । सूक्त की दृष्टि से अथर्ववेद का विवरण निम्न है -

1- भैषज्यानि सूक्तानि -

इस सूक्त में रोगों की चिकित्सा से सम्बन्धी मन्त्र दिये गये हैं । राक्षस ही रोगों के उत्पादक माने गये हैं । लोगों को भूतप्रेत से पीड़ित दिखाया गया है । अथर्ववेद का कथन है कि ज्वर मनुष्यों को पीला बना देता है और

तीव्र गर्मी से लोगों को जला डालता है । बलास रोग (क्षय), गण्डमाला, जिसे दूर करने के लिए वरुण नामक औषधि का उपयोग करने को कहा गया है, खाँसी दन्त पीड़ा इत्यादि रोगों के औषधि का वर्णन भी है सर्पविष को दूर करने का उपाय भी बताया गया है ।

2- आयुष्याणि सूक्तानि -

इसमें पारिवारिक उत्सवों से सम्बन्धित सूक्त हैं- जैसे बालक का मुण्डन, युवक का गोदान, तथा उपनयन संस्कार । दीर्घायु के लिए हाथ में रक्षा सूक्त पहनने का विधान मिलता है । 17वें काण्ड में इनका वर्णन किया गया है ।

3- पौष्टिकानि -

घर बनाने के लिए, खेती के कार्य सम्पन्न करने के लिए, विदेश व्यापार के लिए जाने वाले वणिकों के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना की गयी है । वृष्टि सूक्त (अथर्व 4/15) इसी के अन्तर्गत है, जिसमें वर्षा का अच्छा वर्णन किया गया है ।

4- प्रायश्चित्तानि -

व्यक्ति जो दुष्कर्म करता है, उसके पश्चात् फिर प्रायश्चित्त करता है । चारित्रिक त्रुटि, धर्म का विरोध, ऋण का भुगतान न करना इत्यादि प्रायश्चित के विषय हैं ।

5- स्त्रीकर्माणि -

विवाह तथा प्रेम से सम्बन्धित सूक्त इसके अन्तर्गत आते हैं। पुत्रोत्पत्ति, शिशु रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। इसमें मारण, मोहन (वशीकरण) तथा उच्चाटन आदि फलों की सिद्धि के मन्त्र हैं। इसमें स्त्रियों की अपने सौत को ध्वस्त करने के लिए बड़ी भयानक प्रार्थना की गयी है।

6- राजकर्माणि -

राजा, राज्य की शासन व्यवस्था इत्यादि से सम्बन्धित मन्त्र इसमें वर्णित है। अथर्ववेद के 12वें काण्ड में पृथिवी का वर्णन है और मातृभूमि की बड़ी मनोरम कल्पना की गयी है। मातृ भूमि को सजीव रूप में दिखाया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है "मेरी माता भूमि है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ।"[1] पृथिवी सूक्त की सम्पूर्ण रूप से काव्यात्मक समीक्षा की जाय तो अपने आप में यह एक खण्ड काव्य जैसा है। इसमें नदी, सागर, पर्वत श्रेणियाँ वन, पशु पक्षी, मृगादि सभी की चर्चा है, इस पर निवास करने वाले देवी देवता, ऋषि, विद्वान्, मनुष्य, राक्षस, सभी का उल्लेख किया गया है और जब ऋषि यह कहता है कि "वह भूमि मुझे उसी प्रकार दूध दे जिस प्रकार माता अपने पुत्र को स्वतः अनुराग से दूध देती है।[2] इसमें कितनी ममता भरी हुई है।

1- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्ववेद 12/1/12)

2- सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः (अथर्ववेद 12/1/10)

7- ब्रह्मण्याग्नि -

इसमें परमात्मा तथा परब्रह्म के स्वरूप का विस्तृत विवेचन है। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद तक कहा गया । काल ही समस्त जगत् का परमतत्व स्वीकृत किया गया है । काल सबका ईश्वर तथा प्रजापति का भी पिता है ।[1]

अथर्ववेद का महत्त्व -

अथर्ववेद वैदिक दर्शन का सबसे पुष्ट एवं प्रामाणिक स्रोत है । आरण्यक,उपनिषद् आदि में प्राप्त दार्शनिक सिद्धान्त अथर्ववेद का ही विकसित रूप है । सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से भी यह उपयोगी है । यह एक विश्व-कोष है जिसमें उस समय के प्रचलित ज्ञान, रीति रिवाज,अन्धविश्वास इत्यादि का वर्णन है । यह एक ओर दार्शनिक वेद है तो दूसरी ओर स्त्रियों और शूद्रों का वेद माना गया है ।[2] साहित्य समाज का दर्पण है । इसका यह प्राचीनतम निदर्शन है । अथर्व परिशिष्ट[3] और स्कन्द पुराण[4] में कहा गया है कि अथर्ववेद के मन्त्रों में शक्ति है और इनके जप से इष्ट सिद्धि होती है । मैक्डानल ने भी कहा है कि ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में उपलब्ध सामग्री ज्यादा रोचक एवं महत्वपूर्ण है ।[5]

1- काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यःपितासीत् प्रजापतेः।।{अथर्ववेद {19/53/8}

2- सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शूद्रेषु च । आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति
आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2-29-11 से 12 ।

3- न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्र सम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ।। अथर्वपरिशिष्ट 2-5

4- यस्तत्राथर्वणान् मन्त्रान् जपेत् श्रद्धासमन्वितः।
तेषामर्थोद्भवं कृत्स्नं फलं प्राप्नोति स ध्रुवम् ।। {स्कन्दपुराण}

5- संस्कृत साहित्य का इतिहास {हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 172}

मन्त्र ब्राह्मण

वेद के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब वेदों में प्रयुक्त मन्त्र क्या हैं, इसकी भी जानकारी होनी चाहिए ।

भारतीय विद्वान् वेद रूपी ईश्वरीय ज्ञान की उत्पत्ति दर्शन शब्द के द्वारा सूचित करते हैं । इस कथन का अभिप्राय है कि वैदिक ऋषियों को उक्त वेद रूपी ज्ञान का दर्शन हुआ था । अर्थात् वे इस ज्ञान के द्रष्टा {साक्षात्कर्ता थे ।

मंत्र शब्द की व्युत्पत्तियाँ -

कितने विद्वान् "मन्त्र" शब्द को संस्कृत के मंत्र "मन्त्रिचुरादि" धातु से जिसका अर्थ परामर्श करना है, "अच्' प्रत्यय लगाकर सिद्ध करते हैं, पर यह मत उपयुक्त नहीं जान पड़ता, कारण कि वेद मन्त्रों से किसी प्रकार के परामर्श करने की ध्वनि नहीं निकलती । हम वेद मन्त्रों के द्वारा किसी देवता से सलाह करते नहीं जान पड़ते । इसी कारण कितने विद्वान् तो वेद के मन्त्रों को साँप, बिच्छू आदि के मन्त्रों की ही तरह निरर्थक मानते हैं। निरुक्तकार यास्क ने कौत्स ऋषि को इस मत का प्रवर्तक माना है । कौत्स का कथन है- अनर्थका हि मन्त्रा:' लेकिन पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि कौत्स के कथन का यह आशय नहीं है कि वैदिक शब्दों से कुछ अर्थ का बोध ही नहीं होता । कौत्स का तात्पर्य केवल इतना ही है कि वेदों के मन्त्र अर्थ बोध के लिए नहीं है, किन्तु यज्ञों में केवल उच्चारण मात्र के लिए है । वेद के शब्दों से अर्थ का ज्ञान होता है इसका विरोध

न कौत्स करते हैं, न कोई अन्य विद्वान् । यास्क कौत्स का उत्तर देते हुए कहते हैं "अर्थवन्त: शब्द सामान्यात् ।" अर्थात् जिन शब्दों का लौकिक संस्कृत में प्रयोग होता है वे ही शब्द वेद में भी हैं । वेदों के किसी अंश को निरर्थक मानने में सबसे भारी आपत्ति तो यह है कि इससे ईश्वर कभी-कभी निरर्थक प्रलाप करने वाला सिद्ध हो जाता है । वेद चाहे ईश्वर कृत हों या मनुष्य कृत, उसका कोई भी अंश निरर्थक नहीं है ।

मन्त्र शब्द "मन्" धातु §दिवादि ज्ञाने§ ष्ट्रन §त्र§ प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया जाता है जिसका अर्थ होता है "मन्यते ज्ञायते ईश्वरादेश: अनेन इति मन्त्र:। अर्थात् जिसके द्वारा ईश्वरीय आदेश जाना जाय । 2- "मन्" धातु §तनादि अवबोधे § से ष्ट्रन् प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया गया है-। इससे मन्त्र का अर्थ होता है । "मन्यते विचार्यते ईश्वरा देशोयेन स मन्त्र: । जिसके द्वारा ईश्वरादेश पर विचार किया जाय । 3- तनादि मन् धातु का अर्थ सम्मान करना भी है । ष्ट्रन् प्रत्यय जोड़ने पर इसका अर्थ होता है-"मन्यते सत्क्रियते देवता विशेषोऽनेन इति मन्त्र: ।" अर्थात् जिसे द्वारा किसी देवता विशेष का सत्कार किया जाय वह मन्त्र है । ये तीनों व्युत्पत्तियाँ सही जान पड़ती हैं ।

ब्राह्मण -

कर्मकाण्ड प्रधान इस युग में क्षत्रिय वर्ग यज्ञ आदि को करवाने वाले थे और ब्राह्मण वर्ग ही इस कर्मकाण्ड को करने वाले थे । संभवत: यही कारण है कि जिस साहित्य में इनका संकलन किया गया उन्हें "ब्राह्मण" कहा

जाता है । ब्रह्मन् का अर्थ यज्ञ होता है । अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने के कारण इन्हें ब्राह्मण कहा जाता है । मेदिनी,कोष के अनुसार वेद भाग का सूचक ब्राह्मण शब्द नपुंसक ही होता है ।"ब्राह्मण ब्रह्मसंघाते वेद भाग नपुंसकम्" ब्राह्मण शब्द का प्रयोग ग्रन्थ अर्थ मे भी होता है, पाणिनीय अष्टाध्यायी[1], निरुक्त[2], शतपथ ब्राह्मण[3], ऐतरेय[4], में मिलता ही है । इसका सबसे प्राचीन प्रयोग तैत्तिरीय संहिता[5] में मिलता है ।" ब्रह्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, जिसमें एक अर्थ हैं -मन्त्र,वेद में निर्दिष्ट मन्त्र[6]। इस प्रकार ब्राह्मणों में मन्त्रों,कर्मों तथा विनियोगों की व्याख्या है । ब्राह्मणो की व्याख्या करते हुए भट्ट भास्कर[7] ने उन्हें द्विविध बतलाया है - कर्म ब्राह्मण एवं कल्प ब्राह्मण । ब्राह्मणों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक,आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाला एक महनीय विश्वकोष[8] है । धार्मिक साहित्य में विश्व में इस

1- पाणिनीय अष्टाध्यायी 3/4/36

2- निरुक्त 4/27

3- शतपथ ब्राह्मण 4/6/9/20

4- ऐतरेय ब्राह्मण 6/25/8/2

5- तैत्तिरीय संहिता 3/7/1/1"ऐतद् ब्राह्मणान्येवपन्च हवींषि"।

6- ब्रह्म वै मन्त्रः । शतपथ ब्राह्मण 7/1/1/5

7- तैत्तिरीय संहिता- 1/8/1 का भट्टभास्कर कृत भाष्य ।

8- भट्टभास्कर तैत्तिरीय संहिता -1/5/1 का भाष्य---

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्या ग्रन्थः ।

प्रकार का दूसरा साहित्य उपलब्ध नहीं होता ।

संहितायें एवं ब्राह्मण दोनों वेद हैं -

वैदिक संहिताओं की भाँति ब्राह्मणों को भी वेद कहा गया है । वेद भाष्यकार आपस्तम्ब ऋषि का कहना है कि मन्त्र संहितायें और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं । वेद शब्द का गौण अर्थ लेने पर ब्राह्मणों को भी वेद कहा जा सकता है । गौण अर्थ लेने पर आपस्तम्ब[1] श्रौतसूत्र में कहा ही गया है कि मन्त्र, ब्राह्मण दोनों वेद हैं । मन्त्र संहितायें एवं ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों ही यज्ञ के प्रमाण रूप हैं "मन्त्रब्राह्मणौ यज्ञस्य प्रमाणम् । आपस्तम्ब ऋषि के इस वाक्य से कि "मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः ।" वेद मन्त्रों की स्थिति ब्राह्मण ग्रन्थों के बिना कुछ नहीं रह जाती ।

वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों दोनों के वेद मानने वाले ग्रन्थों में कतिपय सूत्रग्रन्थों से लेकर मीमांसाग्रन्थ, वेदान्त ग्रन्थ, वार्ति क ग्रन्थ और स्मृति ग्रन्थ उल्लेखनीय है ।[2] इन सभी ग्रन्थों में ~~वेदान्त ग्रन्थ, वार्तिक ग्रन्थ~~

1- मन्त्रब्राह्मणोर्वेदनामधेयम् । आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 24/1/3।

2- आपस्तम्ब 24/1/3।

3 सत्याषाढ श्रौतसूत्र 1/1/7
बौधायन गृह्यसूत्र 2/6/3
बौधायन धर्मसूत्र 2/9/7
कौशिक सूत्र 1/3
आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र {34
कात्यायन परिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र 19
शबर स्वामीकृत जैमिनीय मीमांसा {2/1/33}
तन्त्र वार्तिक 1/3/10
मनुस्मृति मेधा तिथि की टीका 2/6
शांकर भाष्य वेदान्त दर्शन {1/3/33}

ब्राह्मण ग्रन्थों को संहिताओं के समान प्रामाणिक माना गया है और संहिताओं जितना सम्मान प्राप्त है ।

ब्राह्मण साहित्य का विस्तृत अध्ययन अगले अध्याय में दिया जायेगा ।

आरण्यक

आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मणों के अन्तिम भाग के रूप में वर्णित है। सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में आरण्यक का अर्थ किया है - जो अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाय उसे आरण्यक कहते हैं।[1] इसकी पुष्टि ऐतरेय आरण्यक[2] से भी होती है। आरण्यक ग्रन्थों का मनन एकान्त में ही उपयुक्त था, गाँवों में कदापि नहीं। आरण्यक का मुख्य विषय यज्ञ नहीं, बल्कि यागों के भीतर मौजूद आध्यात्मिक तत्त्वों की मीमांसा है यज्ञ का अनुष्ठान नहीं। प्राणविद्या के महत्त्व को भी इनमें समझाया गया है।

आरण्यकों में आत्म विद्या, तत्वों का चिन्तन, एवं रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। आरण्यक का महत्त्व सर्वत्र वर्णित है। महाभारत के आदि पर्व का कथन है "कि औषधियों से उद्धृत अमृत के समान ही आरण्यक वेदों से सारभूत मानकर उद्धृत किया गया है।[3] आरण्यक ब्राह्मण के अंश माने गये हैं, लेकिन रहस्य ब्राह्मण से सम्बोधित करके आरण्यकों की विशिष्टता

1- अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।। (तैत्तिरीय आरण्यकभाष्य, श्लोक 6

2- अरण्य एव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते। (ऐतरेय आरण्यक)

3- आरण्यकं च वेदेभ्य औषधिभ्योऽमृतं यथा। (महाभारत-1/265)

दिखायी गयी है । निरुक्त ﴾1/4﴿ में दुर्गाचार्य ने "ऐतरेयके रहस्य ब्राह्मणे" कहकर ऐतरेय आरण्यक 2/2/1 का उदाहरण दिया है । गोपथ ब्राह्मण﴾2/10﴿ और बौधायन धर्मसूत्र भाष्य ﴾2/8/3﴿ में आरण्यकों को रहस्य ग्रन्थ माना गया है ।

आरण्यक ग्रन्थ गृहस्थ जीवन के लिए नहीं था । यह वानप्रस्थों के लिए उपयुक्त था जो वन में रहकर मनन, चिन्तन, स्वाध्याय, जप, तप एवं धार्मिक कार्यों में लगे रहते थे । नगर का वातावरण सर्वथा इनके लिए अनुपयुक्त था ।

प्रतिपाद्य विषय -

आरण्यकों को उपनिषदों का पूर्व रूप माना गया है । उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म उपासना एवं तत्त्व-ज्ञान का वर्णन मिलता है । उसी तत्त्व-चिन्तन का प्रारम्भ आरण्यकों में पाया जाता है । आरण्यकों में वैदिक यज्ञों का आध्यात्मिक एवं तात्त्विक स्वरूप बताया गया है । शांखायन ब्राह्मण में "यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है ।[1] यज्ञ की व्याख्या करना ब्रह्म की व्याख्या करना है इसीलिए समस्त कर्मों में यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म कहा गया है ।[2] सृष्टि के नियन्ता के रूप में यज्ञ का वर्णन मिलता है । आरण्यकों में यज्ञ का दार्शनिक विवेचन तत्त्वमीमांसा, ज्ञानकर्म

1- विष्णुर्वै यज्ञः ﴾शांखायन ब्राह्मण﴿

2- यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । शतपथ ब्राह्मण 1/7/3/5

और उपासना का समन्वय, वर्णाश्रम धर्म, निष्काम कर्म तथा प्राणविद्या आदि का वर्णन है । प्राणविद्या का वैशिष्ट्य आरण्यक का मुख्य विषय प्रतीत होता है । शान्त वातावरण विद्या की उपासना के लिए उपयुक्त होता है । प्राण-विद्या की प्राचीनता ऋग्वेद के मन्त्रों से स्पष्ट होती है, क्योंकि आरण्यक प्राणविद्या को अपनी सूझ नहीं बतलाते । अपनी पुष्टि में ऋग्वेद के मन्त्रों को उद्धृत करते हैं । ऐतरेय आरण्यक 2/1/4} की सुन्दर आख्यायिका के माध्यम से प्राणविद्या की श्रेष्ठता सभी इन्द्रियों में दिखायी गयी है । "प्राण विश्व का धारक है, प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बड़े प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत है ।"[1] यदि प्राण न होता तो यह विश्व भी न होता ।

प्राण ही आयु का कारण है कौषीतकि उपनिषद् में प्राण के आयुष्कारक होने की बात स्पष्ट की गई है ।[2]

अन्तरिक्ष तथा वायु की उत्पत्ति प्राण के द्वारा मानी गयी है । इसमें प्राण को पिता के रूप में उद्धृत किया गया है । वायु और अन्तरिक्ष

1- सोऽयमाकाश प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः तद्यथा यमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्याविष्टब्धानीत्येवं विद्यात् । {ऐतरेय आरण्यक 2/1/6}

2- यावद्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः"।2 कौषीतकि उपनिषद ।

उसकी सन्तान हैं । जिस प्रकार कृतज्ञ पुत्र अपने सत्कर्मों से पिता की सेवा किया करता है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष और वायु रूप पुत्र भी प्राण की सेवा में लगे रहते हैं । अन्तरिक्ष की सहायता से ही आदमी दूर स्थान पर कहे गये शब्दों को सुनता है । वायु भी शोभनगन्ध ले आकर प्राण को तृप्त कर देता है । ऐतरेय आरण्यक में प्राण के पिता एवं सृष्टिकर्ता होने का वर्णन है ।[1]

विकास के कारण दिन प्राण रूप है और संकोच के कारण रात्रि अपान है । इसलिए प्राण ही अहोरात्र के रूप में कालात्मक हैं । प्राण के विषय में ऐतरेय आरण्यक में यहाँ तक कह दिया गया है कि "जितनी ऋचायें हैं, जितने वेद हैं, जितने घोष हैं, वे सब प्राण रूप हैं । प्राण को इन रूपों में समझना चाहिए तथा उसकी उपासना करनी चाहिये ।[2]

वेदानुसार आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय

ऋग्वेद के दो आरण्यक ग्रन्थ हैं । 1- ऐतरेय 2- शांखायन (या कौषीतकि) आरण्यक ।

1- प्राणेनसृष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च । अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति । अन्तरिक्ष-मनुश्रृण्वन्ति । वायुरस्मै पुण्यं गन्धमावहति । एवमेतौ प्राणंपितरं परिचर-तोऽन्तरिक्षं च वायुश्च । (ऐतरेय आरण्यक)

2- सर्वा ऋचः, सर्वे वेदाः, सर्वे घोषा, एकैव व्याहृतिः प्राण एव । प्राण ऋच इत्येव विद्यात्"- (ऐतरेय आरण्यक 2/2/10)

1- ऐतरेय आरण्यक -

इसमें 18 अध्याय हैं जो पाँच भागों में बँटे हैं। इन भागों को आरण्यक कहते हैं। प्रथम आरण्यक में महाव्रत का वर्णन है, जो ऐतरेय ब्राह्मण (पंचिका 3) के गवामयन का भी एक अंश है। द्वितीय आरण्यक के प्रथम तीन अध्यायों में उक्थ या निष्केवल्य शस्त्र तथा प्राणविद्या और पुरुष का विवेचन है। चतुर्थ पंचम और षष्ठ अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् हैं। तृतीय आरण्यक का दूसरा नाम संहितोपनिषद् है -जिसमें संहिता, पद, क्रमपाठों एवं स्वर व्यंजन आदि के स्वरूप का वर्णन है। यह अंश प्रातिशाख्य तथा निरुक्त से प्राचीन लगता है। चतुर्थ आरण्यक छोटा है, जिसमें महाव्रत के पंचम दिन में प्रयुक्त होने वाली महानाम्नी ऋचायें हैं। अन्तिम आरण्यक में निष्केवल्य शस्त्र का वर्णन है इन आरण्यकों में प्रथम तीन के रचयिता महिदास ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वलायन, पाँचवें के शौनक हैं। शौनक वृहद्देवता के भी रचयिता हैं।

2- कौषीतकि या शांखायन आरण्यक -

कौषीतकि आरण्यक में 15 अध्याय हैं। 3 से 6 अध्यायों को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। सातवें एवं आठवें अध्याय को संहितोपनिषद् कहते हैं और अध्याय जो बचते हैं उनमें आरण्यक के मुख्य विषय का वर्णन है। प्रथम तथा द्वितीय अध्याय में महाव्रत का वर्णन है। नवें अध्याय में प्राण की महत्ता दिखलायी गयी है। दशम अध्याय में आन्तर अग्निहोत्र, मृत्यु को दूर करने के लिए एक विशिष्ट याग का 11 वें अध्याय में, 12वें अध्याय में बिल्व के फल से एक मणि के बनाने की विधि का, 13वें एवं 14वें अध्याय में आत्मा तथा ब्रह्म के ऐक्य की प्राप्ति का प्रतिपादन जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि बतायी गयी है। 15वें

अध्याय में आचार्य ने अपने वंश का वर्णन किया है ।

<u>यजुर्वेद के आरण्यक -</u>

शुक्ल यजुर्वेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं होता । शतपथ ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के अन्तिम 6 अध्यायों को बृहदारण्यक उपनिषद् कहा जाता है । वैसे यह एक प्रमुख और प्राचीन उपनिषद है । लेकिन बीच-बीच में यज्ञों के रहस्य का वर्णन है । इसलिए इसे आरण्यक भी कहा जाता है ।

कृष्ण यजुर्वेद में दो आरण्यक हैं ।- तैत्तिरीय आरण्यक 2- मैत्रायणीय आरण्यक । ।- तैत्तिरीय आरण्यक- यह तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है । इसमें ।0 परिच्छेद या प्रपाठक हैं । सप्तम अष्टम तथा नवम प्रपाठक को तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है, दशम प्रपाठक महानारायणीय उपनिषद् के रूप में हैं । प्रथम प्रपाठक में आरुण-केतुक नामक अग्नि की उपासना तथा तदर्थ इष्टका चयन का वर्णन करता है । द्वितीय में स्वाध्याय तथा पन्च महायज्ञों का वर्णन है । तृतीय में चातुर्होत्रचिति, चतुर्थ में प्रवर्ग्य के उपयोगी मन्त्र हैं । इसमें कुरुक्षेत्र, खाण्डव, पांचल आदि नामों का उल्लेख है । इसमें अभिचार मन्त्रों का भी वर्णन है, जो शत्रु के मारने में उपयोग किया जाता है । पंचम में यज्ञीय संकेतों की उपलब्धि होती है । षष्ठ प्रपाठक में पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का उल्लेख है । इस आरण्यक में ही सर्वप्रथम यज्ञोपवीत का वर्णन है ।[1]

।- प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः । तैत्तिरीय आरण्यक {2-।-।}

2- मैत्रायणीय आरण्यक -

मैत्रायणीय शाखा का आरण्यक है, इसी को मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें 7 प्रपाठक हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद अंश दोनों का मिश्रण है।

सामवेदीय आरण्यक -

सामवेद के दो आरण्यक मिलते हैं।

1- तलवकार आरण्यक -

इस आरण्यक को जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण भी कहा जाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों का मिश्रण है। इसमें चार अध्याय हैं। चतुर्थ अध्याय का दशम अनुवाक् केन उपनिषद" के नाम से विख्यात है।

2- छान्दोग्य आरण्यक -

इस आरण्यक को सत्यव्रत सामश्रमी ने सामवेद आरण्य संहिता नाम से छपवाया था।

अथर्ववेदीय आरण्यक -

अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं होता है। इस वेद से सम्बन्धित जो उपनिषद हैं, वे आरम्भ से ही स्वतन्त्र रूप में विद्यमान हैं।

उपनिषद

उपनिषद् आरण्यक के विशिष्ट अंग हैं । उपनिषद् ग्रन्थों के अस्तित्व में आने से वैदिक साहित्य में नया युग प्रारम्भ हुआ । ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर उपनिषदों तक समस्त ग्रन्थ मन्त्र संहिताओं की व्याख्या रूप हैं । धर्म की जिस व्यापक भावना को लेकर वैदिक संहितायें चलीं - ब्राह्मण ग्रन्थों ने उसको एकांगी, संकुचित और सर्वथा व्यक्तिगत रूप दे दिया । ब्राह्मण कर्मकाण्ड प्रधान माने गये हैं । ब्राह्मणों ने धर्म के स्थूल रूप का प्रतिपादन किया । वहीं पर ज्ञान काण्ड प्रधान उपनिषदों ने धर्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप पर विचार किया । ब्राह्मण काल वैदिक धर्म की अवनति का काल माना जाता है और उपनिषद काल वैदिक धर्म की चरमोन्नति का काल माना जाता है । वेद के अन्तिम भाग होने के कारण तथा मुख्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने के कारण उपनिषद को वेदान्त कहा गया है । तत्व ज्ञान तथा धर्म सिद्धान्तों के मूल श्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त है ।

वेदान्त दर्शन के तीन प्रस्थान माने गये हैं । उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र । उपनिषद् श्रवणात्मक, गीता निदिध्यासनात्मक और ब्रह्मसूत्र मननात्मक है । इनमें उपनिषद् मुख्य है, अन्वय दोनों इसी के ऊपर आश्रित हैं ।

उपनिषद् काल विचार क्रान्ति का काल रहा है । वेदों के उन्मुक्त एवं भावनाप्रधान ऋचाओं को हम उपनिषद् युग में गंभीर चिन्तन और एकाग्र मनन से लगे पाते हैं उपनिषद की इस विचार धारा और भारत की उस समय की बौद्धिक क्रान्ति के सम्बन्ध में दिनकर जी का कथन है कि "उतने प्राचीनकाल

में ऐसा प्रचण्ड चिन्तन । सोचकर हृदय बैठा जा रहा है ।[1] षड्दर्शन में इस प्रचण्ड चिन्तन की अनेक विधियों का विकास दिखाई देता है ।

उपनिषद् का अर्थ

दो उपसर्गों "उप" और 'नि' के साथ सद् धातु से क्विप् प्रत्यय जोड़ने पर उपनिषद् शब्द की उत्पत्ति होती है । सद् धातु अनेकार्थक है उप = समीप नि= निश्चय से या निष्ठा पूर्वक सद् धातु के अर्थ हैं "विशरण- नाश होना, गति= पाना या जानना, अवसादन= शिथिल होना,[2] । उपनिषद् का आज कल जो अर्थ किया जा रहा है वह सद्= बैठना धातु से की गई है । इससे उपनिषद् का अर्थ होता है कि 'तत्त्व ज्ञान के लिए गुरु के पास निष्ठा पूर्वक बैठना' जो तीन अन्य अर्थ किये गये हैं वे इस प्रकार हैं -

(1) विशरण - नाश होना- जिससे संसार की बीज भूता अविद्या का नाश होता है
(2) पाने के अर्थ में - जिससे ब्रह्म की यद्वा आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है ।
(3) शिथिल होने के अर्थ में - जिससे मनुष्य के दुःख इत्यादि शिथिल होते हैं ।

अतः शंकराचार्य ने तीनों अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्म-विद्या का द्योतक माना है ।

1- दिनकर-संस्कृत के चार अध्याय पृष्ठ 82 का फुटनोट

2- षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु ।।

असली उपनिषदें कितनी हैं, इसके लिए विद्वानों में बड़ा मतभेद है । वैसे इनकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित न हो हो सकी । कुछ लोग उपनिषदों की संख्या 108 से 200 तक मानते हैं । लेकिन आचार्य शंकर ने जिन दस उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है - वे प्राचीनतम तथा प्रामाणिक माने जा सकते हैं । मुण्डकोपनिषद के अनुसार उनके नाम क्रम से इस प्रकार है । (1) ईश (2) केन (3) कठ (4) प्रश्न (5) मुण्डक (6) माण्डूक्य (7) तैत्तिरीय (8) ऐतरेय (9) छान्दोग्य और (10) वृहदारण्यक । श्री ह्यूम ने जिन तेरह उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद किया है - उनमें इन दस के अतिरिक्त श्वेताश्वतर, कौषीतकि और मैत्रायणीय उपनिषदें भी मुख्य मानी गयी हैं । गीता प्रेस गोरखपुर से 108 उपनिषदों की सूची प्रकाशित की गयी है ।

वेदों के अनुसार वर्गीकरण -

प्रत्येक उपनिषद् का किसी न किसी वेद से सम्बन्ध है । उपनिषदों की संख्या 108 मानी गयी है ।

1- ऋग्वेदीय- ऐतरेय, कौषीतकि, आदि 10 उपनिषदें ।

2- शुक्लयजुर्वेद- ईश, वृहदारण्यक आदि 19 उपनिषदें ।

3- कृष्ण यजुर्वेद- कठ, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, कैवल्य आदि 32 उपनिषदें ।

4- सामवेदीय - केन, छान्दोग्य, मैत्रायणीय आदि 16 उपनिषदें ।

5- अथर्ववेदीय - प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, महानारायण आदि 31 उपनिषदें ।

उपनिषदों का विषयानुसार वर्गीकरण-108 उपनिषदों को विषय की दृष्टि से 6 भागों में बाँटा गया है ।

1- वैष्णव सिद्धान्तों पर निर्भर 14 उपनिषदें ।

2- शैव सिद्धान्तों पर 15 उपनिषदें

3- सांख्य के सिद्धान्त पर निर्भर 17 उपनिषदें ।

4- वेदान्त के सिद्धान्त पर निर्भर 24 उपनिषदें ।

5- योग के सिद्धान्तों पर निर्भर 20 उपनिषदें ।

6- शाक्त तथा अन्य सिद्धान्तों पर निर्भर 18 उपनिषदें ।

क्रमानुसार 13 मुख्य उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

1- ईशावास्योपनिषद् -

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा का चालीसवाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् नाम से विख्यात् है । यह आकार में बहुत छोटा उपनिषद है । लेकिन विषय की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण उपनिषद है । इसमें केवल 18 मन्त्र हैं-ब्रह्म विद्या पर संक्षिप्त रूप में बड़ी प्रभावशाली भाषा में प्रकाश डालने वाला ऐसा दूसरा उपनिषद नहीं है । ईशोपनिषद कर्म सन्यास का पक्षपाती न होकर यावज्जीवन निष्काम भाव से कर्म सम्पादन का अनुरागी है ।[1]

2- केनोपनिषद् -

सामवेद की जैमिनीय शाखा के ब्राह्मण ग्रन्थ के नवम अध्याय को केनोपनिषद् के नाम से जाना जाता है । यह उपनिषद् केन शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इस नाम से जानी जाती है ।[2] केनोपनिषद् में ब्रह्मतत्त्व का वर्णन

1- कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। ईशावास्योपनिषद-2

2- केनेषितं पतति प्रेषितं मनः । केनोपनिषद ।

है । इसके केवल-चार खण्ड हैं । प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर दिखलाया गया है । दूसरे खण्ड में ब्रह्म के रहस्य रूप का, तीसरे और चौथे में उमा हेमवती के रोचक आख्यान परब्रह्म के सर्वशक्तिमान् होने तथा देवताओं के अल्प शक्ति का वर्णन है ।

3- कठोपनिषद -

यह उपनिषद कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित है । इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में तीन-तीन वल्लियाँ हैं । इसका प्रारम्भ उद्दालक ऋषि के विश्वजित् यज्ञ से होता है । ब्राह्मण बालक नचिकेता यमराज के यहाँ तीन दिन तक भूखा पड़ा रहा । यमराज ने ब्राह्मण अतिथि को तीन वर माँगने को कहा । इन तीन वरों का इस उपनिषद में बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया गया है । ब्रह्म विद्या को नचिकेता ने अन्तिम वर के रूप में माँगा । यमराज ने ब्रह्मविद्या का जो उपदेश नचिकेता को दिया वही इसका मुख्य विषय है ।

4- प्रश्नोपनिषद -

जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति द्वारा प्रश्न पूछे गये हैं और किसी के द्वारा उत्तर दिये गये हैं । छः ऋषि ब्रह्मविद्या । की खोज में पिप्पलाद के समीप जाते हैं इन छः ऋषियों में भारद्वाज के पुत्र सुकेशा, शिवि के पुत्र सत्यवान कोशलवासी अश्वलायन, विदर्भवासी भार्गव कात्यायन और कबन्धी थे । इन लोगों ने ब्रह्म विषयक जो भी प्रश्न किये पिप्पलाद ने उनका उत्तर इस उपनिषद में दिया है । इसमें गद्य की प्रधानता है ।

5- मुण्डकोपनिषद -

अथर्ववेद की शौनक शाखा से सम्बन्धित है । तीन मुण्डक है । प्रत्येक के दो खण्ड हैं यह मुण्डन सम्पन्न व्यक्तियों के निमित्त निर्मित है । इसमें ब्रह्मा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या का उपदेश देते हैं । वेदान्त शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इसी उपनिषद् में मिलता है ।

6- माण्डूक्य उपनिषद-

यह अथर्ववेदीय उपनिषद है । यह बहुत छोटा उपनिषद है, लेकिन सिद्धान्त की दृष्टि से बहुत बड़ा है । इसमें केवल 12 खण्ड हैं । इसमें चतुष्पाद आत्मा और ॐकार की मार्मिक व्याख्या की गयी है ।

7- तैत्तिरीयोपनिषद्-

कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय संहिता से सम्बन्धित है । इस संहिता के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद सभी प्राप्त हैं । इस नाम के आरण्यक के दस प्रपाठकों मे सात से लेकर नौ तक के प्रपाठकों को तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है । इन तीनों प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली कहा जाता है । शिक्षा वल्ली में ओंकार की महत्ता, के साथ धार्मिक विधानों का वर्णन, ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मतत्व का वर्णन और भृगुवल्ली में ब्रह्मप्राप्ति का मुख्य साधन पन्चकोश विवेक, वरुण तथा भृगु के संवाद रूप में वर्णित हैं ।

8- ऐतरेयोपनिषद -

ऐतरेय ब्राह्मण के आरण्यक और उपनिषद दोनों प्राप्त हैं । ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक के चौथे से छठे तीनों अध्यायों को ऐतरेय

उपनिषद कहा जाता है । इन तीन अध्यायों में क्रमशः सृष्टि, जीव और ब्रह्म इन तीन तत्वों का विवेचन है ।

9- छान्दोग्योपनिषद -

यह सामवेदीय उपनिषद् है । कौथुम संहिता के ब्राह्मण ग्रन्थ में कुल 40 अध्याय हैं । अन्तिम आठ अध्याय छान्दोग्य उपनिषद् के नाम से जाने जाते हैं । यह उपनिषद् अपनी प्राचीनता, गम्भीरता ब्रह्मज्ञान के लिए प्रसिद्ध है । उपनिषदों में यह प्रौढ़ एवं प्रामाणिक माना जाता है । आदि के अध्यायों में अनेक विद्याओं ॐकार तथा साम के गूढ़ स्वरूप का वर्णन किया गया है । अन्तिम तीन अध्यायों में आध्यात्मिक ज्ञान का वर्णन है । तीसरे अध्याय में प्रसिद्ध सिद्धान्त "सब कुछ ब्रह्म ही है"[1] अद्वैतवाद का प्रमाण है । आरुणि छान्दोग्य के सर्वमान्य उपदेष्टा है "तत्वमसि" महावाक्य का मूल छान्दोग्य में ही प्राप्त होता है । "तत्वमसि" आरुणि की अध्यात्म शिक्षा का मन्त्र है । नारद भी आत्मविद्या के लिए महर्षि सनत्कुमार के पास जाते हैं । अन्तिम प्रपाठक में इन्द्र तथा विरोचन की कथा का वर्णन है ।

10- वृहदारण्यकोपनिषद् -

यह उपनिषद् अपनी विशालता, प्राचीनता और तत्वज्ञान के प्रतिपादन में गम्भीरता के लिए प्रसिद्ध है । याज्ञवल्क्य इस उपनिषद् के दार्शनिक माने जाते हैं । इसमें 6 अध्याय हैं । संवादों के माध्यम से याज्ञवल्क्य राजा जनक

1- सर्वं खल्विदं ब्रह्म" । छान्दोग्योपनिषद 3/14/1 ।

को तत्त्वज्ञान का उपदेश देते हैं । जनक की सभा में अन्य ब्रह्मवादियों को याज्ञवल्क्य परास्त करते हैं ।

11- श्वेताश्वतर-

कृष्ण यजुर्वेद के श्वेताश्वतर ब्राह्मण से सम्बन्धित है । इस उपनिषद् में 6 अध्याय हैं, इसमें ब्रह्मविद्या विषयक गम्भीर बातों को जिस सरल सुन्दर ढंग से कवित्वपूर्ण भाषा में समझाया गया है वैसा कहीं अन्यत्र नहीं मिलता ।

12- कौषीतकि उपनिषद -

शांखायन आरण्यक के तीसरे अध्याय से छठें अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहा जाता है । यह आकार की दृष्टि से तीसरे स्थान पर है । प्रज्ञा तथा प्राण की महत्ता का विशद विवेचन है । प्राण के द्वारा आयु की तथा प्रज्ञा द्वारा सत्य संकल्प की प्राप्ति होती है ।

13- मैत्रायणी उपनिषद -

यह उपनिषद् अपने विचित्र सिद्धान्तों के लिए प्रसिद्ध हैं । इसमें योग के षडंगों का (जो आगे चलकर पातन्जल योग में अष्टांग रूप) में विकसित है । इसमें सात प्रपाठक हैं,| पूरा गद्यात्मक है| बीच-बीच में कहीं-कहीं पद्य भी दिये गये हैं । अन्य प्राचीन उपनिषदों के उद्धरण एवं मन्त्र इसमें मिलते हैं इसीलिए प्रमुख 13 उपनिषदों में यह सबसे अर्वाचीन मानी जाती है ।

उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय

वेदों को विषय की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा गया है । कर्म, उपासना और ज्ञान । संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म विषय का वर्णन है । उपासना, संहिता और आरण्यक में वर्णित हैं और अन्तिम विषय ज्ञान का बोध हमें उपनिषद् कराते हैं । उपनिषदों से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग मिलता है । जैमिनी कृत पूर्व मीमांसा से कर्म और उपासना विषय की सूक्ष्म जानकारी मिलती है । वहीं पर "ज्ञान" की सूक्ष्म जानकारी हमें बादरायण कृत" उत्तर मीमांसा से होती है ।

वेदान्तियों ने विद्या को दो भागों में बाँटा है । परा और अपरा । ब्रह्म विद्या को परा विद्या के अन्तर्गत रखते हैं जिसके प्रतिपादक ग्रन्थ उपनिषद् हैं । कर्म प्रधान विद्या को अपरा विद्या कहते हैं । इसमें फल बाद में प्राप्त होता है । लेकिन ब्रह्म विद्या फल देती है । पराविद्या मोक्ष को देने वाली होती है । उपनिषद् ग्रन्थों में परा विद्या के साथ साथ अपरा विद्या की प्राप्ति के लिए साधन बताये गये हैं । "मुण्डकोपनिषद" में शौनक को समझाते हुए अंगिरा ने कहा है कि दोनों विद्याओं का जानना आवश्यक है ।

वेदान्तियों ने वेदान्त दर्शन को तीन भागों में बाँटा है । श्रुति, स्मृति और न्याय । उपनिषद् को श्रुति के अन्तर्गत, गीता आदि को स्मृति के अन्तर्गत और ब्रह्मसूत्र इत्यादि को न्याय के अन्तर्गत माना है ।

प्रकृति, पुरुष, और परमात्मा का विवेक ही उपनिषद का प्रतिपाद्य विषय हैं । प्रकृति को मूल तत्त्व माना गया है । इससे ही जगत् का अस्तित्व है । उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज चार देहधारी, वाक्, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय, चक्षु श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार ये नौ ज्ञानेन्द्रिय और एक विषय ये सभी प्रकृति तत्व के कार्य व्यापार हैं ।

आत्मा को अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन कहा गया है । लगभग सभी उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का वर्णन मिलता है । ब्रह्म विद्या ही उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय माना जा सकता है ।

द्वितीय अध्याय

ब्राह्मणों का रचना काल

काल निर्णय के विषय में ब्राह्मण साहित्य में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है । भाषा एवं वर्ण्य विषय का तुलनात्मक अध्ययन अन्य साहित्य में उपलब्ध संकेत तथा ज्योतिष सम्बन्धी प्राप्त संकेत हमें गहन अन्धकार में मार्ग ढूँढने में खद्योत के समान सहायता पहुँचाते हैं ।

सस्वर पाठ उपलब्ध होने के कारण ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण प्राचीन माने जाते हैं । भारतीय विद्वान् श्री भगवद्दत्त[1] ब्राह्मण साहित्य को महाभारत के समकालिक मानते हैं । शतपथ आदि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं जो महाभारत काल से कुछ पहिले के थे । शतपथ तथा ऐतरेय[2] ब्राह्मण में दौष्यन्ति, भरत, शतानीक, शकुन्तला का उल्लेख स्पष्टतया आया हुआ है । ये महाभारत से कुछ काल पहले होने वाले व्यक्तियों के नाम हैं । इसके अतिरिक्त महाभारत युद्ध से कुछ काल पहले के और भी अनेक व्यक्तियों के नाम ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं । शतपथ ब्राह्मण[3] में जन्मेजय परीक्षित द्वारा यज्ञ किये जाने का उल्लेख मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण[4] में भी जन्मेजय परीक्षित का उल्लेख इस रूप में हुआ है, आपने इतना महान् यज्ञ किया था कि उसकी प्रशंसा में जनता में लोकोक्ति रूप में यज्ञ गाथायें प्रचलित हो गयी थीं । महाभारत[5] में भी उस जन्मेजय परीक्षित का उल्लेख मिलता है । तद्यथा - इन्द्रौत शौनक ने जन्मेजय से बतलाया कि परीक्षित

---

1. भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास
2. शतपथ ब्राह्मण 13, 5. 4, 11-14 तथा ऐतरेय ब्राह्मण 8. 23
3. शतपथ ब्राह्मण 13. 5. 4. 1-2.
4. ऐतरेय ब्राह्मण 8/21.
5. महाभारत का शान्तिपर्व 149/2 तथा 151/38.

नामक एक महाराजा था । महाभारत में प्राप्त इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि निश्चय ही ब्राह्मण में आयी गाथा का जन्मेजय परीक्षित् महाभारत काल के पूर्व का था । प्रोफेसर घाटे महोदय जन्मेजय को महाभारत काल का मानते हैं । इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण महाभारत काल के बाद की रचना मानी गई । परन्तु अन्य प्रमाणों पर ध्यान देकर पूर्व मत पर ही स्थिर रह सकते हैं ।

महाभारत के आदि पर्व में उल्लेख है कि वेदव्यास के सुमन्त, जैमिनी, पैल तथा वैशम्पायन नामक चार शिष्य थे ।[1] वेदव्यास जी ने इन्हीं लोगों को वेद पढ़ाया था । इन चारों ने एक एक वेद पढ़ा था ।

काशिकावृत्ति[2] के वैशम्पायन का ही दूसरा नाम चरक था तथा उनके नव शिष्य थे । इनमें से दारिद्रविण, तौम्बुरविण: तथा आरुणिन: महाभाष्य में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रवचनकर्त्ता माने गये हैं । इस आधार पर निर्विवाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि ब्राह्मण महाभारत के समकालीन है । महर्षि याज्ञवल्क्य जो ब्राह्मणों के संकलनकर्त्ता कहे गये हैं, वे भी महाभारतकालीन थे, लेकिन अनेक याज्ञवल्क्यों का होना भी सम्भव है लेकिन महाभारत[3] के सभापर्व में याज्ञवल्क्य का उल्लेख आया है, उसी में स्थूलशिर, शुक, सुमन्तु, जैमिनी, पैल-

---

1. महाभारत आदिपर्व 130-132.
2. काशिकावृत्ति 4.3.104
3. महाभारत सभापर्व 4.17-18.

तित्तिर का भी उल्लेख मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण (630) में याज्ञवल्क्य के समकालीन बुडिल आश्वतराश्वि का उल्लेख मिलता है । ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण का काल शतपथ ब्राह्मण के काल के समीपवर्ती ही है - तैत्तिरीय ब्राह्मण के संकलनकर्त्ता आचार्य तित्तिर, जैमिनीय ब्राह्मण के प्रवचनकर्त्ता और व्यास शिष्य जैमिनि भी महाभारत के समकालीन थे । जैमिनीय ब्राह्मण की कुछ हस्तलेख प्रतियों से यह ज्ञात होता है कि मीमांसाकार व्यास के शिष्य थे, मीमांसा सूत्र ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विद्यमान था । ऐसा प्राचीन एवं पाश्चात्य विद्वान् एक मत से स्वीकारते हैं । जैमिनीय ब्राह्मण[1] में अनेक ऐसे नाम आये हैं जो महाभारत के समकालीन हैं । कौशिक सूत्र पद्धतिकार आथर्वणिक केशव ने भी मीमांसा भाष्यकार उपवर्ष का उल्लेख किया है । ये उपवर्ष व्याकरणाचार्य पाणिनि के समवर्ती थे । पाणिनि का काल ईसा से 400 वर्ष पूर्व माना जाता है । मूल ग्रन्थ इससे बहुत अधिक पूर्ववर्ती रहा होगा ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है ।

सामवेद के ब्राह्मण छान्दोग्य के अन्तिम भाग छान्दोग्य उपनिषद् (3/16/6) में ऐतरेय महिदास का उल्लेख आया है । ऐतरेय महिदास ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवचनकर्त्ता माने जाते हैं । जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण[2] में भी ऐतरेय

---

1. जैमिनीय ब्राह्मण 2. 113

2. जैमिनीयोपनिषद् 4. 2. 11

महिदास का उल्लेख आया है इस आधार पर कहा जा सकता है कि इनका भी संकलन महाभारत काल में हुआ था ।

सामविधान[1] ब्राह्मण में उल्लिखित वंश तालिका में ताण्डि और शाट्या-यन का उल्लेख मिलता है । ये ही आचार्य ताण्ड्य तथा शाट्यायन ब्राह्मणों के प्रवचनकर्त्ता हैं ये आचार्य पाराशर व्यास की वंशपरम्परा के कुछ ही पीछे के हैं । शतपथ ब्राह्मणकार[2] ताण्ड्यों से परिचित थे तथा पाण्डिनों के कथन को मानते भी थे ।

ताण्ड्य अथवा पंचविंश और जैमिनीय ब्राह्मण का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंचविंश ब्राह्मण जैमिनीय ब्राह्मण के बाद की रचना है । प्राय: दोनों ब्राह्मणों का वर्ण्यविषय एक सा है । पंचविंश ब्राह्मण 'गवामयन सत्र' जो सब यज्ञों की प्रकृति है का वर्णन विशेष रूप से मिलता है जबकि जैमिनीय ब्राह्मण में सब प्रकार के एकाह, अहीन, एवं सत्रों का उल्लेख सामान्य रूप से किया गया है । जैमिनीय ब्राह्मण में आख्यानों का सुविस्तृत उल्लेख मिलता है जबकि पंचविंश ब्राह्मण में सांकेतिक रूप में उल्लेख मिलता है । डॉ० कैलेण्ड[3] महोदय ने भाषा एवं याज्ञिक दृष्टि से दोनों ब्राह्मणों की गम्भीरता-पूर्वक आलोचना की है और वह इसी निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि जैमिनीय ब्राह्मण

---

1. सामविधान ब्राह्मण 3/9/3.
2. शतपथ ब्राह्मण 6/1/2/25.
3. डॉ० कैलेण्ड कृत पंचविंश ब्राह्मण अनुवाद की भूमिका

पंचविंश ब्राह्मण की अपेक्षा प्राचीनतम है । आख्यायिकाओं की बहुलता, यज्ञों का सुविस्तृत वर्णन एवं भाषा शैली की दृष्टि से यह शतपथ ब्राह्मण का समकालिक प्रतीत होता है इसमें भी अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो महाभारत काल के पूर्व के हैं ।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी ब्राह्मण साहित्य की भाषा संहिताओं से मिलती जुलती है एवं तैत्तिरीय, शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के हस्तलेख अपने पद-पाठों एवं स्वरों सहित उपलब्ध होते हैं ।

ब्राह्मणों के संकलन काल का अनुमान ज्योतिष सम्बन्धी उल्लेखों के आधार पर लगाया गया है । शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण में मिले संकेत कृत्तिका नामक नक्षत्र की स्थिति के आधार पर ब्राह्मण काल को 3000 ईसा पूर्व का निश्चित किया और इसकी अन्तिम सीमा 1500 ईसा पूर्व मानी है । पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान अभी इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है । डॉ० विण्टरनित्स ने अपने इतिहास ग्रन्थ में जर्मन ज्योतिषी प्रो० (ए०प्रे०) के गणना-नुसार इस ग्रह स्थिति को 1100 ईसा पूर्व में माना है । इन ज्योतिषी महोदय की व्याख्या है कि कृत्तिकायें अपने उदय के बाद बहुत देर तक पूर्व में दृष्टिगोचर होती थी और ऐसी दशा में 1100 ईसा पूर्व में ही सिद्ध होती है परन्तु इस व्याख्या से अधिक तर्कसंगत दीक्षित महोदय की उक्त विषयक व्याख्या है ।

शतपथ ब्राह्मण[1] में उल्लेख मिलता है कि अन्य नक्षत्र एक, दो, तीन या

---

1. शतपथ ब्राह्मण 2/1/2/2-3.

चार हैं । पर ये कृत्तिकायें बहुत सी हैं, ॥जो इनमें अग्न्याधान करता है वह॥ उनका बहुत्व प्राप्त करता है । अत: कृत्तिका में आधान करना चाहिए, ये पूर्व दिशा से विचलित नहीं होती पर अन्य सब नक्षत्र पूर्व दिशा से च्युत हो जाते हैं। ॥जो इनमें आधान करता है॥ उसकी दो अग्नियाँ पूर्व में आहित हो जाती है । अत: कृत्तिका में आधान करना चाहिए - इस उद्धरण में शतपथ ब्राह्मण ने स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया है कि "कृत्तिकायें पूर्व दिशा से नहीं हटती है और अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते हैं । सभी इसे एक स्वर से मानते हैं कि यह सीमा उस काल में बतायी गयी थी जबकि कृत्तिकायें पूर्व में ही उदित होती थीं । क्योंकि यह नियम नहीं है कि एक ही नक्षत्र सदैव पूर्व में उगेगा । कोई तारा एक ही स्थान पर सदैव नहीं उदित हो सकता है यह धीरे-धीरे पूर्व से हटकर उदित होगा । कालान्तर में इसकी दूरी बहुत अधिक हो जायेगी । यह अन्तर लगभग साढ़े छ हजार वर्षों तक बढ़ता जायेगा और पुन: अगले साढ़े छ हजार वर्षों के बाद वह नक्षत्र अपने पूर्व स्थान पर उदित होता । इस व्यवस्था से एक नक्षत्र के अपने पूर्व स्थान पर उदित दोनों में प्राय: 1300 वर्ष लग जायेंगे । दीक्षित महोदय शतपथ ब्राह्मण के जिस भाग में ये वाक्य आये हैं - उनका रचना काल शक पूर्व 3100 वर्ष के आसपास मानते हैं । डॉ० गोरखा प्रसाद के विचार से दीक्षित महोदय ने जो गणना करके 3000 ईसा पूर्व का काल निश्चित किया है वह अशुद्ध है । 2500 ईसा पूर्व की तिथि इससे कुछ अधिक ठीक प्रतीत होती है । इस सिद्धान्त की पुष्टि में अनेक विधियों से विचार किया है ।

बौधायन[1] श्रौतसूत्र में एक उल्लेख मिलता है कि शाला को यहाँ नापना चाहिये जिसकी छानी की वल्लियाँ पूर्व की दिशा में रहती हैं । कृत्तिकायें पूर्व की दिशा नहीं हटती है । उनकी ही दिशा में इसे नापना चाहिए, यह एक रीति है, श्रवण की दिशा में नापे यह दूसरी है चित्रा और स्वाती के मध्य में नापे यह तीसरी रीति है । शतपथ ब्राह्मण की ही उक्ति का इसमें पिष्टपेषण किया गया है । इसके अतिरिक्त दो अन्य वैकल्पिक रीतियाँ बतायी गयी है, उसका मुख्य कारण यह था कि यह नियम वर्ष के सात आठ महीनों में लागू नहीं हो सकता था । क्योंकि इतने समय तक कृत्तिकाओं का उदय प्रतिदिन दिन में या उषा अथवा सन्ध्याकाल में होता है - इस संकेत से यह भी ज्ञात होता है कि बौधायन श्रौतसूत्र के काल में श्रवण और कृत्तिकाओं का उदय साथ-साथ पूर्व में होता था । इससे पता चलता है कि बौधायन श्रौतसूत्र का काल लगभग 1330 ईसा पूर्व रहा होगा । सूत्र ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद बने । इसीलिए बौधायन श्रौतसूत्र के लिये 1330 ईसा पूर्व तथा शतपथ ब्राह्मण के लिये 2500 ईसा पूर्व का काल उचित प्रतीत होता है ।

ब्राह्मण साहित्य में संकेत मिलता है कि किस प्रकार ज्योतिष सिद्धान्त सूक्ष्म विश्लेषण के पश्चात् निर्धारित किये जाते थे । कौषीतकि ब्राह्मण (1/9/3) में सूर्य के शंकु के उत्तर और दक्षिण की ओर उदित होने से अयन का ज्ञान करते हैं।

---

1. बौधायन श्रौतसूत्र

अत: इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शतपथ ब्राह्मण के संकेत के आधार पर काल-निर्धारण करने में कोई अनौचित्य नहीं है । वेबर महोदय का मत है कि वैदिक काल में जो नक्षत्रों की सूचियाँ मिलती हैं वे कृत्तिका से प्रारम्भ होती है, परन्तु बाद में छठीं शताब्दी ई0 में जो नक्षत्र सूचियाँ उपलब्ध होतीं हैं वे अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ होती हैं । संभवत: इसका कारण यही था कि विषुव बिन्दु अश्विनी के आरम्भ में था यह इस बात का भी पूर्ण समर्थन करता है कि ये नक्षत्र सूचियाँ लगभग 2500 ईसा पूर्व में बनी होगी ।

पाश्चात्य विद्वान कीबो, ओल्डेनवर्ग आदि ने कृत्तिका से प्रारम्भ होने वाली सूचियों के सम्बन्ध में आपत्तियाँ उठायी हैं एवं उसके समर्थन में अनेक तर्क उपस्थित किये हैं । उन्होंने सप्तर्षियों को कृत्तिकाओं के साथ सम्बद्ध करने के विचार के विरुद्ध मत व्यक्त किया है । उनके विचार से कृत्तिकायें संयोग से नक्षत्रों की सूची में आरम्भ में रख दी गयी हैं, इसका वसन्त विषुवक से कोई संबंध नहीं है । याकोबी महोदय ने इनका अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से खण्डन किया है । उनके विचार से ऋग्वेद में वर्षा का आरम्भ तथा कर्क संक्रान्ति ही, नववर्ष के आरम्भ तथा पुराने वर्ष की समाप्ति को निर्दिष्ट करते हैं और यह भी कि नव वर्ष का आरम्भ फाल्गुनी नक्षत्र में कर्क संक्रान्ति के समय होता है ।

संहिताओं में मासों की चैत्रादि संज्ञायें नहीं मिलती हैं । परन्तु परवर्ती ब्राह्मण जिनमें ये उल्लेख मिलते हैं उनका संकलन ब्राह्मण युग के अन्तिम चरण

में हुआ था । शतपथ[1] ब्राह्मण वैशाख की अमावस्या का उल्लेख मिलता है ।

कौषीतकि[2] ब्राह्मण में पौष की अमावस्या तथा माघ मास का उल्लेख आया है । इसी प्रकार पंचविंश[3] ब्राह्मण में फाल्गुन मास का नामोल्लेख मिलता है । दीक्षित[4] महोदय के विचार से कौषीतकि, शतपथ और पंचविंश तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के जिन भागों में मासों के नाम आये हैं, उनका रचना काल शकपूर्व 2000 और 1500 के मध्य में है ।

ब्राह्मण[5] साहित्य में अनेक स्थानों पर ऐसा उल्लेख मिलता है जिनमें फाल्गुन मास को वर्ष का आरम्भ माना जाता था, क्योंकि फाल्गुन की पूर्णिमा को वर्ष का मुख कहा गया है परन्तु इस संकेत में यह स्पष्ट नहीं होता है कि वर्ष का आरम्भ किस ऋतु में होता है । याकोबी[6] महोदय के विचार से वर्ष शिशिर अयनान्त से प्रारम्भ होता था, क्योंकि बाद के काल में इस प्रथा का प्रचलन था । यदि इस तर्क को मानें तो गणना करने से ब्राह्मण ग्रन्थों का काल

---

1. शतपथ ब्राह्मण 11/1/1/7.
2. शांखायन ब्राह्मण 19/3.
3. पंचविंश ब्राह्मण 5/9/9, तैत्तिरीय 1/1/2-8, कौषीतकि 5/1.
4. भारतीय ज्योतिष - दीक्षित, पृष्ठ 187.
5. पंचविंश ब्राह्मण 5/9/9, तैत्तिरीय 1/1/2-8, कौषीतकि 5/1.
6. इण्डियन एण्टीक्वेरी, 23. 156

4000 ईसा पूर्व निकलता है । तिलक[1] महोदय का भी यही मत है । परन्तु पाश्चात्य विद्वान ओल्डेनवर्ग और थीबो[2] का विचार इससे भिन्न है । उनके विचार से बसन्त ऋतु का प्रथम मास होने के ही कारण फाल्गुन को वर्ष का मुख कहा गया है ।[3] ब्राह्मणों में वर्ष को चातुर्मास्यों[4] के अनुसार तीन ऋतुओं में विभक्त करने की प्रथा थी । उसमें से एक ऋतु बसन्त थी । उनका कहना है कि यह मत कौषीतकि ब्राह्मण के अनुकूल है ।[5] कौषातकि ब्राह्मण का यह संकेत ज्योतिष गणना का आधार प्रस्तुत करता है । इस स्थिति में फाल्गुन पूर्णिमा को मकर संक्रान्ति के लगभग डेढ मास बाद अथवा दूसरे शब्दों में फरवरी के प्रथम सप्ताह में माना जायेगा । कीबो महोदय के विचार से 800 ईसा पूर्व के भारत में एक नवीन ऋतु के आरम्भ का समय मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है । उनकी इस कल्पना के अनुसार ब्राह्मणों का काल 1200 ईसा पूर्व अथवा उसके अधिक बाद का निकलता है । परन्तु यह तथ्य के निकटतम नहीं प्रतीत होता है । दूसरी ओर तिलक महोदय का विचार है कि तैत्तिरीय संहिता (2350 वर्ष ईसा पूर्व) के समय मकर संक्रान्ति माघी पूर्णिमा चन्द्रमा के साथ पड़ती थी तथा यह फाल्गुन और चैत्री के साथ बहुत पहले के समय उदाहरण के लिए 4000-2500 ईसा पूर्व औ 6000-4000 ईसा पूर्व पड़ती रही होगी ।

---

1. ओरायन 27.
2. वैदिक इण्डेक्स, 1.479.
3. शतपथ ब्राह्मण 1.6.3.36, कौषीतकि 5.1
4. तैत्तिरीय, 1.4.9.5, 2.2.2.2 इत्यादि
5. कौषीतकि, 19.3

कौषीतकि[1] ब्राह्मण में स्पष्ट संकेत मिलता है कि शिशिर अयनान्त माघ की अमावस्या पर होता था । परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि इस काल में अमान्त मास माने जाते थे अथवा पूर्णिमान्त । यदि अमान्त मास मानने की पद्धति थी तो ब्राह्मणों का काल ज्योतिष वेदांग के दिनांक से 1900 वर्ष अधिक प्राचीन हो जाता है इस प्रकार ब्राह्मणों का काल 3100 ईसा पूर्व से प्रारम्भ माना जायेगा । कीथ[2] महोदय के विचार से कौषीतकि ब्राह्मण का काल वही है, जो शतपथ का है या उससे थोड़े ही समय पहले का है । परन्तु यदि पूर्णिमान्त मास पद्धति मानें तो पुन: वही 1200 ईसा पूर्व का समय निकलता है । परन्तु यह मानना उचित नहीं प्रतीत होता है कि वेदांग ज्योतिष और ब्राह्मणों का काल एक रहा होगा । सर विलियम[3] जोन्स ने - मासों का व्यवहार किस काल में हुआ है - इस पर विचार किया है । वैम्पटले महोदय का स्पष्ट मत है कि मासों का उल्लेख 1181 ईसा पूर्व से पहले कदापि नहीं है । बेवर[4] महोदय का ऐसा विचार है कि इस माध्यम से कालक्रम निश्चित करना सम्भव है । परन्तु ह्विटेन[5] महोदय ने यह विश्वसनीय रूप से दिखलाया है कि यह एक सर्वथा असम्भव तथ्य है । थीबो[6] महोदय भी इसी दृष्टिकोण से सहमत हैं । ऐसा प्रतीत होता है

---

1. कौषीतकि ब्राह्मण, 19.3
2. कीथ, ऋग्वेदीय ब्राह्मण, भूमिका, पृष्ठ 47-48.
3. एशियाटिक रिसर्चेज, 2.296.
4. वही, 2.347-348.
5. जनरल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी, 6.413, 8.85
6. वैदिक इण्डेक्स, 1.473

कि स्थूल रूप से यह शुद्ध है, परन्तु सूक्ष्म रूप से ध्यान देने पर यह तथ्य से दूर प्रतीत होता है । दूसरी बात यह भी है कि हमें स्पष्ट रूप से यह भी ज्ञात नहीं है कि सब ब्राह्मण एक ही समय की रचना है अथवा एक ही ब्राह्मण । ब्राह्मण के प्रत्येक अध्यायादि एक साथ संकलित किये गये थे अथवा नहीं ।

वेदांग ज्योतिष् का रचना काल 1500 ईसा पूर्व है । सभी विद्वान् इस विषय में एकमत हैं कि वेदांग ज्योतिष् ब्राह्मणों के बाद की रचना है । उपनिषदों की रचना वेदांगों से पूर्व हुई है । इनका काल 2500 ईसा पूर्व से लेकर 1600 ईसा पूर्व के बीच का है । वेदांग ज्योतिष् सर्वसम्मति से शतपथ से अर्वाचीन रचना माना जाता है । इसका काल 1400 ईसा पूर्व माना जाता है । मैक्समूलर भी इसका समय 1181 ई0 से पीछे मानने के पक्ष में नहीं हैं । लेकिन यदि शतपथ ब्राह्मण का यह नया काल मान लिया जाय तो वेदांग ज्योतिष् से उसका पूर्ववर्त्ती होने का कथन झूठा हो जायेगा, जो कि स्वीकार नहीं किया जा सकता है । मैत्री उपनिषद् में निर्दिष्ट ज्योतिष् घटना के आधार पर इसका समय 1900 ईसा पूर्व माना जा सकता है । इस घटना को ध्यान में रखते हुए दीक्षित के मत के अनुसार शतपथ ब्राह्मण का रचना काल 3000 ई0पू0 है तथा ब्राह्मणों का रचना काल 3000 ईसा पूर्व से प्रारम्भ होकर लगभग 2000 ईसा पूर्व तक था । ब्राह्मणों की अन्तिम अवधि इसलिए बढ़ा दी है, क्योंकि कुछ ब्राह्मणों में जैसे गोपथ में उपनिषदों का उल्लेख आया है । यही नहीं, शतपथ जैमिनीयोपनिषद् , गोपथ तथा छान्दोग्य ब्राह्मण के कुछ भाग भी उपनिषदों के नाम से

विख्यात है । बृहदारण्यक छान्दोग्य, केन, गायत्री प्रभृति उपनिषद् इन ब्राह्मणों के ही अंग हैं । इनका संकलन लगभग 2500 ईसा पूर्व के बाद ही हुआ है । इतने विशाल काय, अद्भुत ज्ञान से पूर्ण, कर्मकाण्डों की विशद विवेचना एवं आध्यात्मिक रहस्य की भावना से ओतप्रोत ब्राह्मण वाङ्मय की रचना के लिए 1000 वर्षों का काल कुछ अधिक नहीं है । अन्ततः यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मण साहित्य का संकलन अथवा रचना काल 3000 ईसा पूर्व से 2000 ईसा पूर्व तक रहा होगा ।

-----------::0::-----------

ब्राह्मणों का वर्ण्यविषय

संहिता में स्तुति की प्रधानता है और ब्राह्मण में विधि की । विधि ही ब्राह्मणों का प्रधान विषय है । वैसे विषय की दृष्टि से ब्राह्मण को 6 भागों में बाँटा जा सकता है[1]:-

1. विधि भाग	3. विनियोग	5. निरुक्ति
2. अर्थवाद	4. हेतु	6. आख्यान ।

इन सबमें विधि ही प्रधान विषय है । अन्य सभी विषय अवान्तर होने से इसके पोषक एवं निर्वहण करने वाले हैं । मीमांसक इन्हें अर्थवाद कहते हैं । ये वाक्य स्वतः उपयोगी नहीं हैं । परन्तु विधियों में उपयोगी होने के कारण ये उनके साथ एकवाक्यता प्राप्त करके ही सार्थक होते हैं । शबरस्वामी ने अपने भाष्य में विधियों के विषय को दश प्रकार का बताया है :-

> हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
> परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ॥
> उपमान दर्शते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु ।
>
> - शाबर भाष्य 2/1/8.

1. विधि :

विधि में यज्ञ एवं उससे सम्बन्धित कार्यकलापों के नियम दिये गये हैं ।

---

1. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पं0 बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 179-185.

ताण्ड्य ब्राह्मण 6/7 में अनेक विधियों का उल्लेख है । जैसे वहिष पवमान के लिए अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान किया गया है । प्रसर्पण करते समय पैर को धीरे से रखने तथा मौन रहने का विधान है ।

विधि विधान शतपथ ब्राह्मण में अधिक हैं । पहले ही काण्ड में दर्श और पौर्णमास इष्टियों के अनुष्ठानों का वर्णन है । पौर्णमास इष्टि में दीक्षा लेने वाला व्यक्ति आह्वनीय तथा गार्हपत्य अग्नियों के बीच पूरब की ओर खड़ा होकर जल का स्पर्श करता है । जल क्यों छूता है ? क्योंकि जल मेध्य होता है अर्थात् यज्ञ के लिए उपयोगी पदार्थ है । जल को स्पर्श करके व्यक्ति पवित्र होता है । तब जाकर यज्ञ के लिए योग्य होता है ।

2. <u>अर्थवाद</u>

"विहित कार्ये प्ररोचना निषिद्धकार्ये, विवर्तना अर्थवाद: ।" विधि का अनुकरण और निषेध की निन्दा करने वाले वाक्यों को अर्थवाद कहा जाता है। अग्निष्टोम की विशेष प्रशंसा ताण्ड्य ब्राह्मण 6/3 में की गयी है । इस यज्ञ को सभी के लिए उपादेय होने के कारण वास्तविक यज्ञ कहा गया है । ताण्ड्य ब्राह्मण में इस यज्ञ को ज्येष्ठ यज्ञ कहा गया है ।[1] वहिष पवमान की स्तुति भी ताण्ड्य[2] में की गयी है । तैत्तिरीय[3] संहिता में यज्ञ में माष (उड़द) के विधान

---

1. ताण्ड्य ब्राह्मण 6/3/8-9.
2. वही, 6/8/5.
3. अमेध्या वैभाषा तैत्तिरीय संहिता 5/1/81.

की निन्दा की गयी है । इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में निन्दा एवं प्रशंसा से सम्बन्धित वाक्य हैं अथवा अर्थवाद ब्राह्मणों की एक प्रमुख विषयवस्तु है ।

3. विनियोग :

विनियोग का प्रयोग सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों में ही मिलता है । कौन सा मन्त्र किस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त है इसका वर्णन विनियोग के अन्तर्गत होता है । ब्राह्मण ग्रन्थों ने मन्त्र के पदों से ही विनियोग की युक्तिमत्ता सिद्ध की है ।

'स न: पवस्व शं गवे'[1] ऋचा का गायन पशुओं के रोग-निवारण के लिये किया गया है । यहाँ पर विनियोग की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका उद्देश्य मन्त्र से ही ज्ञात हो जाता है । ताण्ड्य ब्राह्मण ‡6/9/69‡ में इसके विषय में विस्तार से चर्चा की गयी है ।

लेकिन एक दूसरे मन्त्र 'आ नो' मित्रावरुणा'[2] के माध्यम से दीर्घरोगी के रोग-निवारण का उद्देश्य बताया गया है । ताण्ड्य[3] ब्राह्मण में मित्रावरुण का सम्बन्ध प्राण और अपान से बताया गया है । मित्र प्राण के प्रतिनिधि के

---

1. ऋग्वेद, 9/11/3.

2. वही, 3/32/16.

3. ताण्ड्य ब्राह्मण 6/10/4-5.

रूप में और रात्रि के देवता के रूप में प्रतिष्ठित वरुण अपान के प्रतीक बताये गये हैं। दीर्घरोगी के शरीर में मित्रावरुण के रहने की प्रार्थना प्राण और अपान के धारण करने का भी प्रकारान्तर से संकेत है।

4. हेतु :

कर्मकाण्ड की विशेष विधि के लिए उपयुक्त कारण का जिसमें वर्णन होता है, वह हेतु के अन्तर्गत आता है। 'बहिष्पवमान' स्त्रोत में पाँचों ऋत्विजों के आगे चलने वाला अध्वर्यु अपने हाथ में दर्भ की मुष्टि लेकर चलता है। ताण्ड्य ब्राह्मण (6/7/16-20) में इसका कारण निर्देश करते समय अश्व रूप धारण कर यज्ञ के भागने तथा दर्भ की मुष्टि उसे दिखलाकर लौटा ले आने का आख्यान हेतु रूप से उपस्थित किया गया है। इसी तरह के उदाहरण ताण्ड्य ब्राह्मण में कई जगह देखे जा सकते हैं।

5. निरुक्ति :

ब्राह्मण ग्रन्थों में जगह-जगह शब्दों की व्युत्पत्ति की गयी है। निरुक्त में जो व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं उनका मूल ब्राह्मण ग्रन्थ ही है। संहिता में भी निरुक्ति मिलती है। ब्राह्मणों में शतपथ ब्राह्मण और ताण्ड्य ब्राह्मण में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ अधिक दी गयी हैं। 'दधि' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है "तद्दध्नो दधित्वम्"। स्त्रोत तथा साम की सुन्दर निरुक्ति ताण्ड्य ब्राह्मण में की गयी है। आज्य स्त्रोत की व्याख्या 'अजि' शब्द से बतायी गयी है - "यदाजिमायन् तदा ज्यानाम् आज्यत्वम्।"

बृहत् साम की निरुक्ति इस तरह की गयी है । "ततो वृहदनु प्राजायत । वृहद् मर्या इदं स ज्योगन्तरभूदिति तद्वृहतो वृहत्त्वम् ॥ताण्ड्य ब्राह्मण 7/6/5॥ ।

6. <u>आख्यान</u>

विधि अर्थवाद का वर्णन ही ब्राह्मण ग्रन्थों में छाया हुआ है, परन्तु ब्राह्मण साहित्य में क्लिष्ट यज्ञीय अनुष्ठानों के मध्य छोटे-छोटे सहेतुक आख्यानों के साथ बड़े रोचक आख्यान भी मिलते हैं । ये आख्यान उसी प्रकार मधुर एवं आनन्दप्रद हैं, जिस प्रकार तप्त मरु भूमि में विचरण करते हुए पथिकों के लिये छायादार वृक्षों की शीतल छाया । ताण्ड्य ब्राह्मण के छठें अध्याय में आख्यानों का वर्णन किया गया है - प्रजापति के अंगों से वर्णों की उत्पत्ति का आख्यान[1] 6/1 में, वाक् का देवों का परित्याग कर जल और अनन्तर जल में प्रवेश[2], स्वर्भानु असुर का आदित्य का आक्रमण तथा अत्रि के द्वारा उस अन्धकार का विघटन[3] यज्ञ का अश्व रूप में देवताओं से अपाक्रमण तथा दर्भमुष्टि के द्वारा उसका प्रत्यावर्तन[4] अग्नि मन्थन के समय घोड़े को आगे रखने का प्राचीन इतिहास[5], असुरों तथा देवों के बीच नाना संग्राम[6], पुरुरवा और उर्वशी[7]. जलौध का इतिहास[8] शुनः शेप[9] आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को सरस, रोचक, आकर्षक बनाने में आख्यानों का बड़ा योगदान है।

---

1. ताण्ड्य ब्राह्मण, 6/1.
2. वही, 6/5/10-12.
3. वही, 6/6/8.
4. वही, 6/8/18.
5. शतपथ ब्राह्मण 1/6/4/15.
6. शतपथ ब्राह्मण 2/1/6/8-18, ऐतरेय ब्राह्मण 1/4/23, 6/2/1.
7. शतपथ ब्राह्मण 11/5/1.
8. वही, 1/8/1.
9. ऐतरेय ब्राह्मण 7/2.

ब्राह्मण साहित्य

मानव जाति के विकास के अध्ययन का मूल स्रोत होने के कारण भारतीय वाड्मय अर्थात् वैदिक साहित्य विश्व के किसी और साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्टतर हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय वेद को ईश्वरीय वाणी मानते आ रहे हैं। वेद ही उनके समस्त मनन एवं चिन्तन का आधार रहे हैं। श्रुति की दृढ आधार-शिला पर ही भारतीय धर्म एवं सभ्यता का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है।

वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों का स्थान

वेद को केवल दो भागों में विभाजित किया गया है - एक मन्त्र भाग जिसमें संहितायें आती हैं और द्वितीय भाग "ब्राह्मण"। इसके अन्तर्गत ही आरण्यक एवं उपनिषद् भी सम्मिलित है। विषय की दृष्टि से वैदिक वाड्मय को चार भागों में बाँटा गया है जिसका उल्लेख पूर्व ही में किया जा चुका है।

संहिताओं के आधार पर वेद को चार भागों में बाँटा गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। उपरि वर्णित विभागों के अतिरिक्त एक अन्य उपविभाग भी मिलता है - कल्पसूत्र। इसमें तीन प्रकार के सूत्र - श्रौत, गृह्य एवं धर्म सूत्रों का समावेश है।

कालक्रम की दृष्टि और विषयवस्तु के महत्त्व की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान संहिताओं के बाद आता है। मैक्समूलर[1] महोदय का विचार है कि

---

1. मैक्समूलर, ऐंशियन्ट संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 228-229.

साहित्यिक दृष्टि से ब्राह्मणों का भले ही महत्त्व हो, सामान्य पाठक के लिए उनका महत्त्व प्रायः नगण्य है । ब्राह्मणों का अधिकांश भाग केवल बकवास है, लेकिन इस बकवास को धर्म का नाम नहीं दिया जा सकता । जिस व्यक्ति को ब्राह्मणों के बारे में यह पता न हो कि ब्राह्मण क्या है, वह इनके पूरे पृष्ठ को पढ़कर ऊब जायेगा ।" ब्राह्मण साहित्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह कथन निराधार सिद्ध हो जाता है । वस्तुतः ब्राह्मण साहित्य सर्वांग सम्पन्न है । इसमें तात्कालिक उत्कृष्ट सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार, उच्च कोटि का आध्यात्मिक विकास, धार्मिक विचार एवं कथा साहित्य देखने को मिलता है । ब्राह्मणों में मन्त्रों की, कर्मों की और उनके विनियोगों की व्याख्या मिलती है । ब्राह्मणों की अन्तरंग परीक्षा करने पर यह स्पष्ट है कि 'ब्राह्मण' यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करने वाले महनीय ग्रन्थ हैं । यज्ञ के स्वरूप के परिचायक यही ग्रन्थ हैं । विषय की दृष्टि से ब्राह्मण साहित्य एक ऐसी मध्यम श्रृंखला है, जो संहिता एवं आरण्यकोपनिषदों को बाँधती है । एक ओर इसमें संहिता के मन्त्रों का कर्मकाण्ड में विनियोग द्रष्टव्य है, दूसरी ओर उच्चकोटि की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन की धारा का उद्गम या स्रोत। अपनी इसी विशेषता के कारण यह वैदिक साहित्य का इतना महत्त्वपूर्ण अंग है कि जिसके अध्ययन के बिना वैदिक साहित्य का अध्ययन अधूरा रह जाता है । एकमात्र इस ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन के द्वारा ही प्रायः आधे संहिता साहित्य का अध्ययन हो जाता है, जैसे शतपथ ब्राह्मण के अध्ययन के द्वारा वाजसनेयि संहिता का और तैत्तिरीय ब्राह्मण के अध्ययन द्वारा तैत्तिरीय संहिता का ।

इसके अतिरिक्त कितने ही उपनिषद् इस ब्राह्मण साहित्य के अंग हैं, जो स्वतन्त्र उपनिषद् के रूप में भी प्रसिद्ध है जैसे - छान्दोग्य, वृहदारण्यक, केन, गायत्र्युपनिषद् आदि ।

प्राप्त ब्राह्मण साहित्य

वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या बहुत बडी प्रतीत होती है किन्तु आजकल सभी ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं । प्रत्येक वेद में ऋषि परम्परा के अनुसार अनेक सम्प्रदाय बने । प्रत्येक सम्प्रदाय अथवा शाखा के अपनी संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्र ग्रन्थ बने । यही कारण है कि ब्राह्मणों की संख्या अत्यन्त विपुल है । परतर वैदिक साहित्य का कितना ही अंश सही अर्थों में ब्राह्मण न होते हुए भी ब्राह्मण कहलाता है जैसे सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मण सामविधान, वंश आर्षेय, संहितोपनिषद् और अथर्ववेद से सम्बन्धित गोपथ ब्राह्मण । ये ब्राह्मण न होकर वेदांग अधिक है ।

प्राचीन ब्राह्मणों में प्राप्त एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ब्राह्मणों का यहाँ विवेचन किया जा रहा है ।

ऋग्वेद के ब्राह्मण

ऋग्वेद से सम्बन्धित दो ब्राह्मण ग्रन्थ मिलते हैं :- 1. ऐतरेय ब्राह्मण और 2. शांखायन या कौषीतकि ब्राह्मण ।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय ब्राह्मण है - ऐतरेय ब्राह्मण । इसमें 40 अध्याय हैं, प्रत्येक पाँच अध्यायों को मिलाकर एक पंचिका बनती है और प्रत्येक अध्याय में कण्डिका की कल्पना की गयी है । इस प्रकार सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण 40 अध्याय 8 पंचिका तथा 285 कण्डिकायें हुई । इसके रचयिता ऐतरेय महिदास माने जाते हैं, उन्हीं के नाम के आधार पर इस ब्राह्मण का नामकरण हुआ है । कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ऐतरेय शब्द भी अवेस्ता साहित्य में ऋत्विज् अर्थ में व्यवहृत 'एथ्रेय' शब्द से सम्बन्धित है । यह विचार किसी अंश तक अधिक उचित प्रतीत होता है । ऋग्वेद से सम्बद्ध यह ब्राह्मण यज्ञ में 'होतृ' नामक ऋत्विज् के क्रिया-कलापों का विशेष रूप से विवरण प्रस्तुत करता है । इस ब्राह्मण में ब्राह्मण आचार्यों की सम्मतियाँ बहुत कम उद्धृत की गयी हैं । केवल 7/11 में कौषीतकि आचार्य का मत उद्धृत किया गया है । कीथ[1] महोदय इसी आधार पर इस पंचिका को प्रक्षिप्त मानते हैं । मैक्डानल[2] महोदय के अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण की अन्तिम तीन पंचिकायें पहली पाँच पंचिकाओं की अपेक्षा बाद की रचनायें हैं । इसका कारण यह है कि इनमें 'लिट् लकार' का प्रयोग परोक्षार्थ की सीमित परिधि में किया जाता है जबकि पहले पाँच पंचिकायें में लिट् लकार का प्रयोग प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों की भाँति वर्तमान कालिक अपरोक्ष अर्थ में भी मिलता है । परन्तु भारतीय विद्वान् श्रीभगवतदत्त[3] उपाध्याय का विचार इससे कुछ

---

1. कीथ, ऋग्वेदीय ब्राह्मण, पृष्ठ 24.
2. मैक्डानल, ए हिस्ट्री आफ दि लिटरेचर, पृष्ठ 191.
3. पं0 भगवतदत्त, वैदिक वाड्मय का इतिहास, पृष्ठ 6.

भिन्न है । उनके विचार से ऐतरेय महिदास अन्य ब्राह्मणों के प्रवचनकर्त्ताओं के समान प्राचीन परम्परागत सामग्री में बहुत कम हस्तक्षेप करते थे ।

इस ब्राह्मण की प्रथम 6 पंचिकाओं में सोमयाग का तथा अन्तिम दो पंचिकाओं में राज्याभिषेक का कथन है । प्रथम तथा द्वितीय पंचिका में अग्निष्टोम याग में होता के विधि-विधानों तथा कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन है । यही अग्निष्टोम समस्त सोमयागों की प्रकृति है । तृतीय तथा चतुर्थ पंचिका में तीनों सवनों के समय प्रयुज्यमान शस्त्रों का वर्णन मिलता है । साथ ही साथ अग्निष्टोम की विकृतियों - उक्थ्य, अतिरात्र तथा षोडशी नामक यागों का संक्षिप्त विवेचन मिलता है । पंचम में द्वादशाह यागों का तथा षष्ठ में कई सप्ताहों तक चलने वाले यागों का तथा उनमें प्रयुक्त होता तथा उसके ऋत्विजों के कार्यों का विवेचन दिया गया है । सप्तम पंचिका में राजसूय एवं अष्टम में ऐन्द्र महाभिषेक का वर्णन किया गया है ।

इस ब्राह्मण के ऊपर तीन व्याख्याओं का पता चलता है :- 1. सायण कृत भाष्य, 2. षड्गुरु शिष्य रचित 'सुखप्रदा' नाम्नी लघुकाय व्याख्या तथा 3. गोविन्द स्वामी कृत व्याख्या । इनमें से प्रथम दो प्रकाशित हैं एवं अन्तिम अप्रकाशित ।

ऋग्वेद का दूसरा ब्राह्मण है <u>कौषीतकि</u> या <u>शांखायन</u> । इस ब्राह्मण में 30 अध्याय हैं । प्रत्येक कौषीतकि आचार्य का उल्लेख पैग्य आचार्य के विरोध में

किया गया है । सर्वत्रकौषीतकि आचार्य के मत को उचित ठहराया गया है ।[1] इसका प्रतिपाद्य विषय लगभग ऐतरेय ब्राह्मण की तरह है । परन्तु इसमें विषय का वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ किया गया है । इसमें अग्न्याधान सम्बन्धी नियम अग्निहोम, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, द्वादशाह, सत्रप्रभृति इष्टियों का भी सविस्तार वर्णन किया गया है । इस ब्राह्मण पर भट्ट विनायक कृत भाष्य मिलता है, परन्तु यह अभी तक अप्रकाशित है ।

यजुर्वेद में ब्राह्मण

यजुर्वेद के दो भेद हैं - शुक्ल और कृष्ण । दोनों ही शाखाओं से सम्बन्धित ब्राह्मण उपलब्ध हैं । शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित शतपथ ब्राह्मण सबसे अधिक विपुलकाय तथा यागानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक ग्रन्थ है । शुक्ल यजुर्वेद की उभय शाखाओं माध्यन्दिन तथा काण्व में यह ब्राह्मण उपलब्ध है । दोनों ही शाखा के ब्राह्मणों में विषय की एकता होने पर भी वर्णन क्रम एवं अध्यायों की संख्या में अन्तर है । माध्यन्दिन शतपथ के काण्डों की संख्या 14, अध्याय 100, प्रपाठक 68, ब्राह्मण 438 तथा कण्डिकायें 7624 हैं । काण्व शतपथ में प्रपाठक नामक उपखण्ड का अभाव है । इसमें काण्ड 17, अध्याय 104, ब्राह्मण 435 और कण्डिकायें 6806 हैं । माध्यन्दिन शतपथ में प्रथम नौकाण्डों का विषय क्रम माध्यन्दिन संहिता के अनुकूल है । पिण्ड पितृयज्ञ का वर्णन संहिता में दर्शपूर्णमास के अन्तर है, परन्तु ब्राह्मण में अग्नि के आधान के अनन्तर है । दोनों ही

---

1. कौषीतकि ब्राह्मण 8/9/26/3.

शाखाओं के शतपथ ब्राह्मणों में सर्वप्रथम ही एक अन्तर दृष्टिगोचर होता है। माध्यन्दिन के शतपथ के प्रथम दो काण्डों में दर्शपूर्णमास और अग्न्याधान आदि वर्णित है, परन्तु काण्व शाखा के शतपथ में प्रथम दो काण्डों में अग्न्याधान दर्श-पूर्णमास वर्णित है,। विण्टरनित्स[1] महोदय के विचार से माध्यन्दिन शाखा का ही शतपथ सम्भवत: शतपथ का प्राचीनतम मूल भाग है। काण्व शाखा के शतपथ की जो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं वे या तो अपूर्ण हैं या उनके पाठ के शुद्ध होने में सन्देह है। आजकल माध्यन्दिन शाखा के शतपथ का ही पठन-पाठन अधिक प्रचलित है। प्रस्तुत लेख में माध्यन्दिन शाखा के शतपथ से ही विषय-सामग्री ली गयी है।

माध्यन्दिन शाखा के शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमासेष्टियों का, द्वितीय में अग्न्याधान, अग्नि होत्र, पिण्ड पितृयज्ञ आग्रयण और चातुर्मास्य का वर्णन है। तृतीय तथा चतुर्थ में सोमयाग का, पाँचवें में राजसूय एवं वाजपेय छठें से लेकर दसवें तक अग्नि रहस्य का वर्णन है, तेरहवें काण्ड में अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध तथा पितृमेध का विशद विवरण मिलता है, चौदहवाँ काण्ड 'प्रवर्ग्यकाण्ड' कहलाता है, इसमें प्रवर्ग्य याग का वर्णन मिलता है। इसी 14वें काण्ड के 6 ब्राह्मण वृहदारण्यक उपनिषद् कहलाते हैं। परन्तु यह शतपथ ब्राह्मण में ही सम्मिलित है। शतपथ ब्राह्मण के माध्यन्दिन शाखा के ही कुछ अंशों के स्वतन्त्र ब्राह्मण के रूप में भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, जैसे मण्डल ब्राह्मण ‡10/5/2‡,

---

1. विण्टरनित्स, प्राचीन भारतीय साहित्य ‡हिन्दी‡।

ब्रह्मचर्य ब्राह्मण ‖11/5/4‖, वंश ब्राह्मण ‖14/5/5‖ ।

याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण के प्रथम पाँच काण्डों के कर्त्ता माने गये हैं परन्तु काण्ड 6 से 10 में इनका नाम भी नहीं मिलता है । आचार्य शाण्डिल्य इसमें प्रमुख माने गये हैं, उन्हें ही अग्नि रहस्य का प्रवक्ता माना गया है । शेष चारों अध्यायों में याज्ञवल्क्य ही प्रधान है और शतपथ ब्राह्मण के कर्ता माने गये हैं । वेबर तथा एगलिंग महोदय का विचार है कि शतपथ ब्राह्मण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रोक्त है और वाजसेनेयि याज्ञवल्क्य इनके संकलनकर्त्ता थे ।

विषय की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण अत्यन्त मौलिक है । याज्ञिक विषयों के अतिरिक्त सभी विषयों पर इस ब्राह्मण से प्रकाश पड़ता है । विदेश में ब्राह्मण सभ्यता का प्रसार इसी काल में हुआ था । वर्ण्य-विषयों के विस्तार, विचार तथा विवरण के कारण शतपथ ब्राह्मण ब्राह्मण साहित्य का मुकुटमणि माना जाता है । ग्यारहवें काण्ड में वर्णित पंचमहायज्ञों का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन के लिये अत्यधिक महत्त्व है । इसमें याज्ञिक कर्मकाण्ड के आध्यात्मिक पक्ष का सुन्दर विवेचन दर्शनीय है । उपनिषदों की आध्यात्मिक विचारधारा का उद्गम स्थल यही ब्राह्मण है । यह ब्राह्मण प्राप्त ब्राह्मणों में प्राचीनतम माना जाता है इसमें अनेकों आख्यान एवं उपाख्यान मिलते हैं जो बाद के काल में अनेक पुराणों, महाकाव्यों एवं नाटकों के वर्ण्य-विषय बने हैं । जैसे उर्वशी-पुरूरवा आख्यान, दुष्यन्त-शकुन्तला आख्यान, मनु की जलप्लावन की कथा इत्यादि । ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है ।

यजुर्वेद की कृष्ण शाखा में हमें केवल एक ब्राह्मण उपलब्ध है - तैत्तिरीय। यह ब्राह्मण स्वरपाठ सहित मिलता है। यह ब्राह्मण भी प्राचीनता की दृष्टि से शतपथ से कम प्राचीन नहीं है। यह ब्राह्मण तीन विभागों में विभाजित है। प्रथम दो काण्ड आठ-आठ प्रपाठक अथवा अध्याय में विभक्त है। तृतीय काण्ड में 12 अध्याय हैं जिनके अवान्तर खण्ड अनुवाक नाम से प्रसिद्ध हैं। तृतीय काण्ड को अवान्तरकालीन रचना माना जाता है। इसके चतुर्थ प्रपाठक में पुरुषमेध के बलि प्राणियों का वर्णन है। यह कृष्ण-यजुर्वेद में उपलब्ध नहीं होता है। इसके अन्तिम तीन प्रपाठकों के तित्तिर आचार्य द्वारा प्रोक्त होने में सन्देह हैं। इस ब्राह्मण के भाष्यकार भट्टभास्कर इस ब्राह्मण भाग को आचार्य तित्तिर प्रोक्त नहीं मानते हैं। उनका यह वाक्य उनके व्याख्या के आरम्भ वाक्य से स्पष्ट हो जाता है।[1] बहुत सम्भव है कि कभी यह अंश काठक शाखीय ब्राह्मण का रहा हो किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनका कालान्तर में आधे काठक ब्राह्मण के लुप्त हो जाने पर इसी प्राप्त तैत्तिरीय ब्राह्मण में समाविष्ट कर दिया गया हो। इसी ब्राह्मण (3।10-12) में यम-नचिकेतोपाख्यान का संक्षिप्त अविकसित रूप मिलता है। बाद में यही कठोपनिषद् का वर्ण्य-विषय बना।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवानयन, वाजपेय,

---

1. भट्ट भास्कर कृत तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/10/1 का भाष्य

एवमश्वमेधान्तानि तित्तिर प्रोक्तानि काण्डानि, व्याख्यातानि अथ काठकाग्निकाण्डान्यष्टौ ----- ।

सोम, नक्षत्रेष्टि तथा राजसूय का वर्णन मिलता है । द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, सौत्रामणि तथा वृहस्पतिस्व, वैश्यश्व, इत्यादि का वर्णन मिलता है । इस ब्राह्मण का भी ऐतिहासिक, याज्ञिक, एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व है । इसमें चातुवर्ण्य की मर्यादा सर्वत्र दर्शनीय है । अवतारों का भी उल्लेख इसमें मिलता है। वैदिककालीन ज्योतिःशास्त्र के अनेक ज्ञातव्य तथ्यों का उल्लेख इस ब्राह्मण को इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण बनाता है ।

इस ब्राह्मण पर सायणाचार्य एवं भट्टभास्कर के भाष्य मिलते हैं । इनके अतिरिक्त भवस्वामी एवं रामाग्निचित् के भाष्य के होने का संकेत भी मिलता है। परन्तु अभी तक इसका कोई हस्तलेख उपलब्ध नहीं हुआ है ।

<u>सामवेद के ब्राह्मण</u>

सामवेद से सम्बन्धित प्राप्त ब्राह्मणों की संख्या अन्य वेदों के ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक है । सामवेद की दो शाखायें मानी गयी हैं । ताण्डिन् तथा तलवकार अथवा जैमिनीय । दोनों ही शाखाओं से सम्बन्धित ग्रन्थ मौजूद हैं । ताण्ड्य या महा या पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण एवं छान्दोग्य तथा मन्त्र ब्राह्मण ताण्डि शाखा से सम्बद्ध है । मैक्डानल[1] महोदय के विचार से तलवकार अथवा जैमिनीय ब्राह्मण में 5 अध्याय हैं इसके पहले तीन अप्रकाशित अध्याय यज्ञीय

---

1. मैक्डानल - ए हिस्ट्री आफ दि संस्कृत लिटरेचर, पृ०ठ 195.

विधि के विविध अंशों का मुख्यत: प्रतिपादन करते हैं । चौथे अध्याय की संज्ञा 'उपनिषद् ब्राह्मण' है जो सम्भवत: रहस्यार्थ का प्रतिपादन करने वाला ब्राह्मण - इस अर्थ को संकेतित करता है । इसमें आरण्यक की भाँति अनेक रूपकात्मक उक्तियाँ मिलती हैं । साथ ही गुरुजनों की दो परम्पराओं का भी उल्लेख है । पाँचवे अध्याय की संज्ञा आर्षेय ब्राह्मण है जिसमें सामवेद के रचयिताओं की संक्षिप्त परिगणना है उनके विचार को यदि मानते हैं तो हमें सम्पूर्ण तलवकार ब्राह्मणों तीन खण्डों में विभक्त तीन भिन्न नामों में मिलता है तीन अध्यायों में जैमिनीय ब्राह्मण प्रकाशित हो गया है और उपनिषद् ब्राह्मण एवं आर्षेय ब्राह्मण पूर्व ही प्राप्त थे ।

अब सामवेद से सम्बद्ध ब्राह्मणों पर विचार किया जायेगा । सामवेद का सबसे महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण <u>ताण्ड्य महाब्राह्मण</u> है "ताण्ड्य ब्राह्मण" शोध प्रबन्ध का विषय है इसलिए ताण्ड्य ब्राह्मण पर "ताण्ड्य से सम्बन्धित अध्याय में विचार किया जायेगा ।

2. <u>षड्विंश ब्राह्मण</u>

षडविंश नाममात्र के लिये ही एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है । वास्तव में यह पंच-विंश का ही एक परिशिष्ट है, 'षडविंश' यह नाम भी छब्बीसवाँ अध्याय होने का बोध कराता है । इस ब्राह्मण में 5 प्रपाठक हैं । प्रपाठकों का विभाग खण्डों में है । इसमें कुल मिलाकर 48 खण्ड हैं । पाँचवें प्रपाठक के अन्तिम दो खण्डों पर सायणाचार्य ने भाष्य नहीं किया है । पाँचवाँ प्रपाठक 'अद्भुत ब्राह्मण' नाम से

प्रसिद्ध है । वर्ण्य विषय की दृष्टि से उसका नाम सार्थक है इसमें नाना प्रकार की अलौकिक घटनाओं एवं उनके शान्ति का विधान दिया गया है । यह प्रपाठक उस काल के विचित्र धार्मिक भावनाओं को समझने के लिए नितान्त उपयोगी है । अवान्तरकाल में धर्मग्रन्थों में प्रायश्चित्तों का विपुल विधान दिया गया है । अनुमान है कि उनका मूल स्रोत यही ब्राह्मण ही रहा होगा । इसके अतिरिक्त प्रथम चार अध्यायों का भी याज्ञिक दृष्टि से महत्त्व है ।

इस ब्राह्मण पर सायणाचार्य कृत भाष्य मिलता है । सायण ने अपने भाष्य में प्रपाठक संज्ञा न लिखकर अध्याय ही लिखा है । सायण स्वीकृत मूल में और उपलब्ध प्रतियों में भेद है । तीसरे प्रपाठक को उन्होंने दो भागों में बाँटकर सम्पूर्ण ब्राह्मण में छः अध्याय बनाये हैं तथा आपने पाँचवें प्रपाठक के अन्तिम दो खण्डों पर भाष्य भी नहीं लिखा है । इन मतभेदों के आधार पर अनुमान है कि अन्तिम प्रपाठक में कुछ भूल अवश्य हो गयी है ।

तीसरा ब्राह्मण है - <u>छान्दोग्य</u> । इसे मन्त्र ब्राह्मण अथवा उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं । यह ब्राह्मण 10 प्रपाठकों में विभक्त है । इस ब्राह्मण के अन्तिम आठ प्रपाठक छान्दोग्य उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है । शेष दो प्रपाठकों में आठ-आठ खण्ड हैं । यह ब्राह्मण गृह्य संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का एक सुन्दर संग्रह है, गोभिल गृह्यसूत्र में, इसमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों एवं विषयों का ही विवेचन किया गया है । यह ब्राह्मण ताण्ड्य शाखा से सम्बन्धित है ।

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में छान्दोग्य ब्राह्मण एवं छान्दोग्योपनिषद् को ताण्ड्य शाखा से सम्बन्धित माना है । सत्यव्रत सामाश्रमी प्रभृति भारतीय विद्वानों का विचार है कि ताण्ड्य शाखा का ब्राह्मण 40 प्रपाठक का एक वृहद् ब्राह्मण था ।

पंचविंश के	25 प्रपाठक
षड्विंश के	5 प्रपाठक
छान्दोग्य के	2 प्रपाठक
छान्दोग्योपनिषद् के	8 प्रपाठक
योग :	40 प्रपाठक

इस ब्राह्मण पर दो भाष्य मिलते हैं - प्रथम दामुक के पुत्र गुणविष्णु का तथा दूसरा सायण का, ये दोनों ही भाष्य प्रकाशित हो चुके हैं ।

चौथा ब्राह्मण है दैवत । यह अग्निब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है । यह एक अत्यन्त छोटा ग्रन्थ है । इसमें तीन खण्ड हैं । प्रत्येक खण्ड कण्डिकाओं में बँटा है । कुल मिलाकर 62 कण्डिकायें हैं । इस ब्राह्मण में मुख्यत: छन्दों का उल्लेख किया गया है । सम्भवत: यह ग्रन्थ छन्द:शास्त्रियों एवं निरुक्तकारों का पथ निर्देशक रहा होगा । प्रथम खण्ड में साम देवताओं का काम निर्देश और उनकी प्रशंसा में गेय सामों के विशिष्ट नामों का निर्देश किया गया है । द्वितीय खण्ड में छन्दों के देवता तथा वर्णों का विशेष वर्णन किया गया है । तृतीय खण्ड में छन्दों

की निरुक्तियाँ दी गयी हैं। इस ब्राह्मण पर एकमात्र सायणाचार्य कृत भाष्य मिलता है।

पाँचवाँ ब्राह्मण है आर्षेय ब्राह्मण। इस ब्राह्मण में तीन प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक खण्डों में विभक्त हैं। कुल मिलाकर 82 खण्ड हैं। विषय की दृष्टि से इस ब्राह्मण का यज्ञों से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है। इसे एक प्रकार से ब्राह्मण ग्रन्थों की आर्षानुक्रमणी समझनी चाहिये। इस ब्राह्मण में साम के उद्भावक ऋषियों का नाम तथा संकेत दिया गया है। यह ब्राह्मण साम गायन के प्रथम प्रचारक ऋषियों का वर्णन करने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस ब्राह्मण पर सायणाचार्य का भाष्य मिलता है। जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण नाम से एक अन्य ब्राह्मण भी मिलता है। यह ब्राह्मण बड़ौदा के सूचीपत्र भाग प्रथम पृष्ठ 105 में सम्मिलित है। इसमें 84 खण्ड हैं। यह छोटा सा ब्राह्मण तलवकार या जैमिनीय शाखा की ऋष्यनुक्रमणी है। यह पाठ कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण से पर्याप्त भिन्न है। कौथुम शाखा के आर्षेय ब्राह्मण में एक ही मन्त्र के दो या दो से अधिक ऋषियों का नाम मिलता है। वहीं पर जैमिनीय शाखा के आर्षेय ब्राह्मण में एक ही ऋषि का नाम मिलता है। संभवतः ये दोनों आर्षेय ब्राह्मण एक ही हैं। कालान्तर में प्रक्षेप एवं पाठान्तर हो गया है, क्योंकि कुछ अन्तरों के अतिरिक्त विषय भेद नहीं है। परन्तु इस मत की पुष्टि के लिए अभी पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

छठाँ ब्राह्मण है संहितोपनिषद्। यह एक अत्यन्त छोटा ब्राह्मण है।

इसमें केवल पाँच खण्ड हैं । कुछ पुराने ब्राह्मणवाक्यों और श्लोकादिकों का यह संग्रह मात्र है । इस ब्राह्मण में सामगायन से उत्पन्न होने वाले प्रभाव का वर्णन है तथा साम और सामयोनि मन्त्रों तथा पदों के परस्पर सम्बन्धों का भी विवेचन है । इस ब्राह्मण पर सायणकृत भाष्य मिलता है । इसके अतिरिक्त विष्णुसुत्र कृत भाष्य की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख बड़ौदा के सूची पत्र भाग । पृष्ठ 17 पर अंकित है ।

सातवाँ ब्राह्मण है - <u>सामविधान ब्राह्मण</u> । यह एक ऐसा ब्राह्मण है जिसका विषय अन्य ब्राह्मणों में उपलब्ध विषय से भिन्न है । इस ब्राह्मण में तीन प्रकरण या अध्याय हैं । इस ब्राह्मण में नाना प्रकार के पापकर्मों के लिए प्रायश्चित्त का विधान, अभिचार, वशीकरण, वास्तुहोम, नाना प्रकार की आयुष्य, ब्रह्मवर्चस्व, धन-प्राप्ति आदि से सम्बन्धित विधि विधानों का उल्लेख किया गया है । सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से यह ब्राह्मण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । बाद के काल में लिखे गये स्मृतिग्रन्थों में हमें इन विषयों का विवेचन मिलता है । यह ब्राह्मण धर्म सूत्रों की पूर्वपीठिका है क्योंकि धर्म सूत्रों में इन्हीं विषयों का सविस्तार वर्णन मिलता है । इस ब्राह्मण पर सायणाचार्यकृत भाष्य मिलता है इसका प्रकाशन भी हो चुका है । इसके अतिरिक्त एक अन्य भरतस्वामी कृत भाष्य की स्थिति के विषय में हमें विदित होता है । यह भाष्यग्रन्थ अलवर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है । यह अभी तक अप्रकाशित है ।

आठवाँ ब्राह्मण है वंश ब्राह्मण - यह ब्राह्मण कलेवर में अत्यन्त छोटा है इसमें केवल तीन खण्ड हैं । इसमें सामवेद के आचार्यों की वंश परम्परा दी गयी है । इस ब्राह्मण पर सायणकृत भाष्य उपलब्ध है ।

नवाँ ब्राह्मण है जैमिनीय ब्राह्मण - जैमिनीय शाखा का ब्राह्मण अपने सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हुआ था । यत्र तत्र कुछ अंश उपलब्ध होते थे । इन उपलब्ध भागों का संकलन करके कई बार प्रकाशन किया गया था । डा० रघुवीर ने इस ब्राह्मण का एक विशुद्ध एवं सम्पूर्ण संस्करण प्रकाशित किया है । इसके द्वारा जैमिनीय ब्राह्मण के तीन वृहद् अध्याय प्रकाश में आ सके हैं । यह ब्राह्मण यज्ञ-विस्तार एवं आख्यान वर्णन की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण से किसी भी दशा में कम नहीं है ।

दसवाँ ब्राह्मण है जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण - मैकडानल महोदय के विचार से यह जैमिनीय ब्राह्मण का अंशमात्र है । इसे हम उस बृहद् ब्राह्मण का चौथा अध्याय भी कह सकते हैं । प्रसिद्ध केनोपनिषद् इसी ब्राह्मण का एक भाग है। इस ब्राह्मण में चार अध्याय हैं । इस पर भी अभी तक कोई भाष्य नहीं मिला है। केनोपनिषद् के पद भाष्य में शंकराचार्य ने लिखा है कि ----- यह नवम् अध्याय का आरम्भ है, इसके पूर्व (आठ अध्यायों में) यज्ञ कर्म पूरे कहे गये हैं ।

बड़ौदा के सूचीपत्र भाग प्रथम पृष्ठ 105 पर उनके कोशानुसार एक और विभाग दिया गया है - वह निम्नलिखित है :-

1. महाब्राह्मण, 2. द्वादशाह ब्राह्मण, 3. महाव्रत ब्राह्मण, 4. एकाह ब्राह्मण, 5. अहीन ब्राह्मण, 6. सत्र ब्राह्मण, 7. आर्षेय ब्राह्मण, 8. उपनिषद ब्राह्मण ।

यह विभाजन शंकराचार्य के विभाजन से मिलता जुलता है । इस आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैमिनीय, जैमिनीयोपनिषद् (केन उपनिषद् सहित) एवं आर्षेय ब्राह्मण मिलाकर एक वृहत् जैमिनीय ब्राह्मण होगा । परन्तु अभी तक इस रूप में इसका प्रकाशन नहीं हुआ है ।

अथर्ववेद के ब्राह्मण

अथर्ववेद का केवल एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है, जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है । इसके दो भाग हैं - पूर्व तथा उत्तर । प्रत्येक भाग प्रपाठक या अध्यायों में विभक्त है । पूर्व में पाँच तथा उत्तर में छः प्रपाठक हैं । प्रपाठकों का विभाजन कण्डिकाओं में हुआ है । इसमें 258 कण्डिकायें हैं ।

'आथर्वण परिशिष्ट' 49 उपनाम आथर्वण चरणव्यूह 4/5 में लिखा है- "तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत् । तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति।" इस उपलब्ध संकेत से विदित होता है कि कभी यह ब्राह्मण 100 प्रपाठकों वाला था ।

मैक्डानल[1] महोदय के विचार से गोपथ के पूर्वार्द्ध को शेष (102-105)

---

1. मैक्डानल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 201.

भाग प्राय: शतपथ ब्राह्मण के 11-12वें अध्याय से परिगृहीत है और कुछ विषय तो ऐतरेय ब्राह्मण से लिया गया है। ब्राह्मण साहित्य में यह ग्रन्थ बहुत बाद की रचना मानी जाती है। इस ब्राह्मण में अथर्ववेद की स्वभावत: महिमा गायी गई है तथा ब्रह्मा पुरोहित के क्रिया कलापों का विशेष वर्णन मिलता है। पूर्व गोपथ ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक में ओंकार तथा गायत्री की महिमा का सुन्दर वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का, तृतीय में यज्ञ के चारों ऋत्विजों का, चतुर्थ में ऋत्विजों की दीक्षा तथा पंचम प्रपाठक में संवत्सर सत्र का वर्णन मिलता है। तदन्तर अश्वमेध, पुरुषमेध, अग्निष्टोम आदि अन्य सुप्रसिद्ध यज्ञों का वर्णन मिलता है। उत्तर गोपथ का वर्ण्य विषय पूर्व की अपेक्षा कुछ अव्यवस्थित है। इसमें नाना प्रकार के यज्ञों तथा तत्सम्बद्ध क्रियाकलापों एवं आख्यायिकाओं का उल्लेख है।

गोपथ ब्राह्मण के रचयिता निश्चय ही गोपथ ऋषि हैं। अथर्ववेदीय ऋषियों की नामावली में गोपथ ऋषि का उल्लेख है। प्राचीनता की दृष्टि से ब्लूमफील्ड इसे वैतान सूत्र से अर्वाचीन मानते हैं। परन्तु डॉ० कैलेण्ड तथा कीथ महोदय इसे प्राचीन मानते हैं। इस ब्राह्मण पर अब तक कोई भाष्य नहीं मिला है। सांस्कृतिक एवं भाषाशास्त्र की दृष्टि से इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है। इसमें ब्रह्मचारी धर्म का सविस्तार उपाख्यान वर्णन मिलता है। शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भाषा शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।[1] बहुतों का उल्लेख अवान्तर कालीन निरुक्त ग्रन्थों में मिलता है।

---

1. द्रष्टव्य, गोपथ 1.1.6, 1.3.19 आदि।

अनुपलब्ध ब्राह्मण साहित्य

ब्राह्मणों का साहित्य अत्यन्त विशाल है । परन्तु आज अधिकांश ब्राह्मण अनुपलब्ध हैं । यत्र-तत्र साहित्य में इनके उद्धरण या नामोल्लेख मात्र मिलते हैं । किसी भी ऐसे नामोल्लेख प्राप्त ब्राह्मण की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई है । डॉ० बटकृष्ण घोष ने ऐसे अनुपलब्ध ब्राह्मणों के उपलभ्यमान उद्धरणों का संकलन करके प्रकाशित करने का प्रशंसनीय कार्य किया है ।[1] इस संकलन से किसी ब्राह्मण का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है । श्री भगवतदत्त ने वैदिक कोष की भूमिका में अप्रकाशित या लुप्त ब्राह्मणों पर गवेषणात्मक दृष्टि से विचार किया है । अब यहाँ पर उस अनुपलब्ध ब्राह्मण साहित्य पर विचार करेंगे जिनका नामोल्लेख मिलता है । यजुर्वेद की अनेक शाखायें थी । उनसे सम्बन्धित अनेक ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है ।

यजुर्वेदीय अनुपलब्ध ब्राह्मण

1. चरक ब्राह्मण

यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रधान शाखा चरक से सम्बद्ध है । इस ब्राह्मण के प्रमाण बालक्रीड़ा भाग 1, पृष्ठ 48, 50 तथा भाग दो, पृष्ठ 87 पर मिलते हैं। सायणाचार्य अपने ऋग्वेद भाष्य 8. 66. 10 में कहते हैं - "चरक ब्राह्मण इतिहास-नाम्नायते ।" तदनन्तर उन्होंने इसकी कई पंक्तियाँ उद्धृत की हैं । निघण्टु टीकाकार देवराज यज्वा ने पृष्ठ 67 पर चरक ब्राह्मण का प्रमाण उद्धृत किया है।

---

1. बी०के० घोष, कलेक्शन आफ दि फ्रैगमेन्ट्स आफ लास्ट ब्राह्मणाज़, 1935.

यह ब्राह्मण काठक संहिता 36/7 में भी मिलता है । शांखायन श्रौतसूत्र के व्याख्याकार आनर्त ने पृष्ठ 66 व 153 पर चरक श्रौतसूत्र को उद्धृत किया है । इन उपलब्ध संकेतों के आधार पर अनुमान है कि चरक शाखा का साहित्य भी तैत्तिरीय शाखा के ही समान कभी समृद्ध था । सायणाचार्य द्वारा उल्लेख किया जाना इस बात का प्रमाण है कि उनके काल में इसका अस्तित्व था । कालान्तर में यह ग्रन्थ लुप्त हो गया ।

2. <u>श्वेताश्वतर ब्राह्मण</u>

विश्वरूपाचार्यकृत बालक्रीड़ा टीका भाग 1, पृष्ठ 8 पर यह उद्धृत है । श्वेताश्वतर उपनिषद् इसी के आरण्यक का एक भाग प्रतीत होता है ।

3. <u>काठक ब्राह्मण</u>

तैत्तिरीय ब्राह्मण के तृतीय काण्ड के अन्तिम तीन प्रपाठकों को भी यह कठ या काठक ब्राह्मण कहते हैं । यह काठक ब्राह्मण सम्भवतः कभी बृहद् काठक ब्राह्मण का भाग रहा होगा । कुछ लोग काठक संहिता में ही काठक ब्राह्मण को भी सम्मिलित मानते हैं । कठोपनिषद् प्राप्त ही है । इस शाखा की संहिता 'काठक संहिता' नाम से उपलब्ध है । यह ब्राह्मण भी कभी अवश्य रहा होगा । परन्तु कालान्तर में काल कवलित हो गया है । काठक ब्राह्मण के अस्तित्व के प्रमाण में भी अनेक संकेत मिलते हैं ।

शुद्धि कौमुदी पृष्ठ 279 पर काठक ब्राह्मण का एक वचन उद्धृत है ।

वशिष्ठ धर्मसूत्र 12/24 पर "अपि च काठके विज्ञायते । अपि नः" यह लिखा मिलता है । थोडे अन्तर से यह वाक्य महाभाष्य 7/1/13 में उद्धृत मिलता है । परन्तु यह वाक्य काठक संहिता में नहीं मिलता है । अवश्य ही यह काठक ब्राह्मण से उद्धृत किया गया होगा । काठक गृह्यसूत्र में यह ब्राह्मण के वचन उद्धृत मिलते हैं। भण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना के वैदिक हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचीपत्र भाग । में पृष्ठ 154 पर हस्तलेख का विवरण दिया गया है । उसे तैत्तिरीय ब्राह्मण (काठकम्) कहा गया है । वस्तुतः वह काठक ब्राह्मण नहीं है, वरन् काठक संहिता का एक त्रुटित ग्रन्थ है ।

4. <u>मैत्रायणीय ब्राह्मण</u>

मैत्रायणीय संहिता से सम्बद्ध कोई स्वतन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थ नहीं है । मैत्रायणीय संहिता का ही चौथा अध्याय एक तरह से ब्राह्मण समझा जाता है । परन्तु यह विचार निराधार है । बौधायन श्रौतसूत्र 30/8 में मैत्रायणीय ब्राह्मण का वाक्य उद्धृत है । परन्तु यह वाक्य मुद्रित संस्करण में नहीं मिलता है । मैत्रायणीय उपनिषद् का अस्तित्व भी इसी बात को प्रमाणित करता है कि अवश्य ही मैत्रायणीय शाखा का अपना अलग ब्राह्मण रहा होगा ।

5. <u>खाण्डिकेय ब्राह्मण</u>

भाषिक सूत्र 3/26 पर इसका नामोल्लेख मिलता है ।

6. <u>औखेय ब्राह्मण</u>

भाषिक सूत्र 3/26 में यह भी उद्धृत है ।

7. <u>जाबालि ब्राह्मण</u>

बाल क्रीड़ा टीका भाग 2 पृष्ठ 94-95 पर इस ब्राह्मण का एक उद्धरण उद्धृत है। यह सम्भवत: ब्राह्मण का पाठ है। इस शाखा की संहिता और आरण्यक भी नहीं मिलते हैं। केवल उपनिषद् ग्रन्थ ही मिलते हैं। जाबालोपनिषद् अत्यन्त प्राचीन है। इसका शंकराचार्य ने अपने वेदान्त सूत्र में भी उल्लेख किया है। इस शाखा के एक गृह्यसूत्र के अस्तित्व का भी गौतम सूत्र के मस्करि भाष्य पृष्ठ 267, 389 पर उल्लेख मिलता है।

8. <u>हारिद्रविक ब्राह्मण</u>

सायणाचार्य के ऋग्वेद भाष्य 5/40/8 एवं निरुक्त 10/5 पर एवं महाभाष्य 4/2/104 पर भी इसका उल्लेख मिलता है।

9. <u>आह्वरक ब्राह्मण</u>

नारदीय शिक्षा के टीकाकार शोभाकार ने इसे उद्धृत किया है। पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थ 'सम्प्रदाय पद्धति' सं० 2606 पत्र ख पर यह उद्धृत है। दुर्गाचार्य निरुक्त वृत्ति 3/21 में भी इस ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय प्रातिशाख्य 23/16 में आह्वरकों के स्वर के विषय में कहा गया है।

10. <u>कंकति ब्राह्मण</u>

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 14/20/4 में इस ब्राह्मण का उल्लेख किया गया

है । महाभाष्य 4/2/66 में इसका उल्लेख मिलता है ।

11. गालव ब्राह्मण

महाभाष्य 1/1/44 में यह उद्धृत है । कील हार्न सं० भाग 1 पृष्ठ 105 पर लिखा है । "गालवा एव हृन्वान् प्रयुंजीरन् --- । इस उद्धरण से गालव ब्राह्मण के अस्तित्व का ज्ञान होता है ।

12. यजुर्वेदीय सम्बन्धी इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त सामवेदीय ब्राह्मण का भी नामोल्लेख मिलता है ।

12. भाल्लवि ब्राह्मण

बौधायन धर्मसूत्र विवरण 1/1/27 पर गोविन्द स्वामी लिखते हैं -- पाल्लविन: छन्दोगविशेषा: । यह संकेत माल्लवेय शाखा का होना बताता है । बृहद्देवता 5/23 तथा 5/159 पर भाषिक सूत्र 3/15, नारद शिक्षा 1/13, महाभाष्य 4/2/104 में भाल्लवि ऋषि का मत एवं भाल्लवियों के ब्राह्मण का नामोल्लेख मिलता है । इसके अतिरिक्त कात्यायन कृत उपग्रन्थ सूत्र 1/10, ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य 3/3/26 पर, निदान सूत्र 3/3, 3/6, 5/1, 7/5 पर भाल्लवि ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है ।

13. शाट्यायन ब्राह्मण

इस शाखा का बहुसंख्यक उल्लेख इस बात को प्रमाणित करता है कि यह ब्राह्मण अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण रहा होगा । अनुपलब्ध ब्राह्मणों में

यही सबसे अधिक उद्धृत ब्राह्मण है । पाश्चात्य वैदिक विद्वान् अर्टल महोदय ने अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी के जर्नल भाग 18 पृष्ठ 15 सन् 1897 में इस ब्राह्मण के विषय में एक लेख लिखा था । उसमें उन्होंने अनेक स्थलों पर उपलब्ध इस ब्राह्मण के प्रमाण बताये हैं उसे यहाँ तद्वत् उद्धृत कर रहे हैं :-

1. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य	3/3/25
2. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य	3/3/26
3. (तरयपुत्रा---)	3/3/27, 4/1/16, 4/1/17.
4. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य	3/3/26 (औदुम्बरा:)
5. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र	5/23/3, 10/12/13.
6. कात्यायन श्रौतसूत्र याज्ञिक देव	5/23/3.
7. कात्यायन श्रौतसूत्र याज्ञिक देव	10/12/14.
7. कात्यायन श्रौतसूत्र रुद्रदत्त	14/13/14.
8. आश्वलायन श्रौतसूत्र	1/4/13.
9. लाट्यायन श्रौतसूत्र	1/2/24.
9क. अग्नि स्वामी भाष्य सहित	4/5/8.
10. सायण भाष्य ताण्ड्य ब्राह्मण पर	4/2/10, 4/3/2, 4/5/14, 4/6/23.
11. सायण ऋग्वेद भाष्य	1/151/23.
12. सायण ऋग्वेद पर	1/84/13.
13. साम भाग 1	पृष्ठ 400 पर
सोसाइटी संस्करण भाग 3	पृष्ठ 506 पर

13. सायण ऋग्वेद पर 1/105/10, 7/32, 7/33/7.

14. क. सायण ऋग्वेद पर 8/91/1.
ख. सायण ऋग्वेद पर 8/91/3.
ग. सायण ऋग्वेद पर 9/91/5.
घ. सायण ऋग्वेद पर 9/91/7.

15. सा सायण ऋग्वेद पर 9/95/7.
साम पर भाग 1, पृष्ठ 716 पर

16. सायण ऋग्वेद पर 9/5/83.
साम पर भाग 4, पृष्ठ 19.

17. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 10/58/5.

18. क. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 10/57/1.
ख. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 10/60/1.
ग. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 10/60/6.

19. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 10/105
मूल का श्लोकबद्ध अनुवाद

20. सायण भाष्य ऋग्वेद पर 5/2/1.

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों पर भी शाट्यायन ब्राह्मण उद्धृत हैं :-

21. उपग्रन्थ सूत्र 1/10, 2/1, 2/8.

22. भारद्वाज गृह्यसूत्र पृष्ठ 86.

23. बौधायन गृह्यसूत्र 2/5/25.

24. बौधायन गृह्यसूत्र 2/5/43.

25. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/23/16.

26. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/51.

27. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/51/13.

28. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/51/14.

29. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/84/13.

30. वेंकट माधवकृत ऋग्वेद भाष्य 1/105.

31. पुष्पसूत्र 8/8/184.

32. सायण भाष्य ताण्ड्य ब्राह्मण 4/6/5.

33. सायण भाष्य ताण्ड्य ब्राह्मण 5/4/14.

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी शाट्यायन ब्राह्मण का नामोल्लेख मिलता है। कात्यायन ऋक् सर्वानुक्रमणी 7/32 शाट्यायन कल्प के प्रमाण बाल-क्रीडा भाग 1, पृष्ठ 38, सत्याषाढ श्रौत महादेव व्याख्या 6/5, गोपीनाथ व्याख्या 10/10 पर उद्धृत हैं। आपर्ट[1] महोदय ने अपने हस्तलिखित प्रतियों की सूची में इस ब्राह्मण की दो प्रतियों का उल्लेख किया है, परन्तु उनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है। श्री टी0आर0 चिन्तामणि महोदय को तेलगू लिपि में 54 ताल

---

1. जनरल आफ दि ओरियण्टल रिसर्चस मद्रास वैल्यूम 5, 1931, पृष्ठ 296-98.

पत्रों पर लिखी एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है । प्रत्येक पृष्ठ में 8 पंक्तियाँ हैं । इसमें औदुम्बरी, वहिष्पवमान, आज्यस्तोम विधान आदि का उल्लेख आया है । यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है ।

इतने बहुल उद्धरण ग्रन्थ की महत्ता के पर्याप्त सूचक हैं । इसके अधिकांश उद्धरण जैमिनीय ब्राह्मण में अक्षरशः उपलब्ध होते हैं ।

14. <u>कालबवि ब्राह्मण</u>

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 20/9/9 पर उद्धृत हैं । उपग्रन्थ 1/10 पर कालबवि नाम मिलता है । इसके अतिरिक्त निदान सूत्र 6/7 पर और पुष्प सूत्र 8/8/184 पर भी इस ब्राह्मण के उद्धरण मिलते हैं ।

15. <u>रौरुकि ब्राह्मण</u>

गोभिल गृह्यसूत्र 3/2/5 में इसका उल्लेख मिलता है । सायणाचार्य ने ताण्ड्य ब्राह्मण भाग 1/4/1 में लिखा है - रौरुकि शाखोक्तानि यजूंषि । इसके अतिरिक्त द्राह्यायण श्रौतसूत्र 4/3/9 पर टीकाकार धन्वी ने अपनी टीका में रौरुकियों का उल्लेख किया है । ब्राह्मण श्रौतसूत्र 4/3/1 में भी इसका उल्लेख किया है ।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ब्राह्मण भी मिलते हैं । परन्तु वे किस शाखा से सम्बन्धित हैं, इसका अभी तक निर्णय नहीं हुआ है ।

16. तुम्बरु ब्राह्मण 17. आरुणेय ब्राह्मण

इन दोनों ही ब्राह्मणों पर महाभाष्य 4/2/104 पर उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त इस ब्राह्मण का नाम तन्त्र वार्त्तिक चौखम्बा संस्करण पृष्ठ 164 में आता है।

18. सौलभ ब्राह्मण

महाभाष्य 4/2/66, 4/3/105 पर इसका उल्लेख आया है।

19. शैलाली ब्राह्मण

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 6/4/7 में यह उद्धृत है।

20. पराशर ब्राह्मण

तन्त्रवार्त्तिक चौखम्बा सं0 पृष्ठ 964 में इसका नाम मिलता है।

21. पैंगि ब्राह्मण

इस ब्राह्मण का ही दूसरा नाम पैंग्य ब्राह्मण या पैंग्यायनि ब्राह्मण भी है। इसका आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 5/18/8 एवं 5/29/4 में उद्धृत मिलता है। सत्याषाढ श्रौतसूत्र 3/7, 6/5-6, पर महादेव व्याख्या में इसका उल्लेख मिलता है।

22. माष शरावि ब्राह्मण

द्राहायण श्रौतसूत्र 8/2/30 पर धन्वी ने लिखा है कि "माषशराव्यो

नामकेच्छिखिनः" --- इस उपलब्ध संकेत में माष्मारावि नामक शाखा के विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है । अवश्य ही इस शाखा का ब्राह्मण रहा होगा ।

23. कापेय ब्राह्मण

सत्याषाढ श्रौतसूत्र 1/4, 1/8 में इस शाखा एवं इसके ब्राह्मण को उद्धृत किया गया है ।

इसकेअतिरिक्त अन्वाख्यान, वाजसनेयि और वृवृच शाखाओं का नामोल्लेख मिलता है । अवश्य ही इन शाखाओं के ब्राह्मण ग्रन्थ भी अन्य शाखाओं के समान रहे होंगे ।

कवीन्द्राचार्य सरस्वती के पुस्तकालय का जो सूचीपत्र बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है, उसके प्रथम पृष्ठ पर बाष्कल एवं माण्डूकेय ब्राह्मण का नाम मिलता है ।

ऋक्, यजु, सामवेद से सम्बन्धित ब्राह्मणों के विषय में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान् एकमत हैं । परन्तु सामवेद से सम्बन्धित ब्राह्मणों में मतभेद है । 14वीं शती ई0 उत्तरार्ध के वैदिक भाष्यकार सायणाचार्य सामवेद के आठ ब्राह्मणों से परिचित थे और उन्होंने इन पर अपने भाष्य भी लिखे हैं । अपने भाष्यों में उन्होंने इनके नाम इस प्रकार दिये हैं - प्रौढ, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् संहितोपनिषद् तथा वंश । पाश्चात्य विद्वान् मैक्डानेल महोदय ने सामवेद की दो स्वतन्त्र शाखायें ताण्डिन् तथा जैमिनीय मानी है । ताण्डिन् शाखा के अन्तर्गत पंचविंश, षड्विंश, छान्दोग्य या उपनिषद् एवं सामविधान,

देवताध्याय, वंश, संहितोपनिषद् ब्राह्मण की गणना की है तथा जैमिनीय शाखा के अन्तर्गत जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीयोपनिषद् , ब्राह्मण तथा आर्षेय ब्राह्मण की गणना की है । वेबर महोदय का विचार सायणाचार्य से भिन्न है । वे पंचविंश, षड्विंश तथा छान्दोग्य को सामवेद से सम्बद्ध मानते हैं, शेष को ब्राह्मण संज्ञा प्राप्त होने पर भी विषय की दृष्टि से दोनों से सम्बद्ध मानते हैं । विण्टरनित्स महोदय ने सामवेद से सम्ब॰ केवल दो ब्राह्मणों का नाम दिया है - ताण्ड्य तथा षड्विंश तथा एक तीसरे ब्राह्मण का उल्लेख किया है - जिसके कुछ ही उद्धरण अभी उपलब्ध हुए हैं । षड्विंश ब्राह्मण का एक भाग जो अद्भुत ब्राह्मण के नाम से अधिक विख्यात है, उसे वेदांग सूत्र मानते हैं । इसके अतिरिक्त जो तीसरे अल्प उपलब्ध ब्राह्मण का संकेत दिया है, सम्भवतया इससे उनका तात्पर्य जैमिनीय ब्राह्मण से है । इसके अतिरिक्त जो अन्य ब्राह्मण सामवेद से सम्बद्ध मिलते हैं, वे विण्टरनित्स महोदय के विचार से ब्राह्मण न होकर वेदांग अधिक है ।

अत: इन सभी विद्वानों के मतों पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामवेद की ताण्डिन् शाखा से सम्बद्ध आठ ब्राह्मण प्राच्य एवं पाश्-चात्य विद्वानों के एकमत होने से प्रतिष्ठा प्राप्त है । यद्यपि इनमें से कुछ ब्राह्मण विषय दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण न होकर वेदांग अधिक हैं तथापि उन्होंने उनकी गणना ब्राह्मणों के अन्तर्गत की है । ब्राह्मण संज्ञा प्राप्त एवं भारतीय प्राचीन भाष्यकार सायण द्वारा मान्य एवं उपलब्ध इन आठों ब्राह्मणों को सामवेद से सम्बन्धित मानते हैं । जैमिनीय शाखा में जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीयो-पनिषद् ब्राह्मण एवं जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण भी सौभाग्य से अपने संशोधित रूप में प्रकाशित एवं उपलब्ध हैं ।

ब्राह्मणों का महत्त्व

ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय था यज्ञमीमांसा । यज्ञ को समस्त कर्मों में प्रथम माना गया है, "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।" यज्ञ करना सर्वाधिक पुण्य कर्म माना गया । यज्ञ करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है "सर्वस्मात्-पाप्मनोनिर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति । ब्राह्मणों के कुछ आलोचक यागानुष्ठानों के सूक्ष्म विवेचन को नगण्य दृष्टि से देखते हैं । धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मणों का महत्त्व अतुलनीय है । यज्ञ के माध्यम से धार्मिक महत्ता प्रतिपादित की गयी जो व्यक्ति यज्ञ करता है, वह अपना ही व्यक्तिगत लाभ नहीं प्राप्त करता, बल्कि पूरा समाज उससे लाभ प्राप्त करता है, क्योंकि यज्ञ में प्रयुक्त हवि अग्नि में जलकर धुएं के रूप में आसमान में व्याप्त हो जाती है और सूर्य तक पहुँच जाती है और फिर बादलों के साथ मिलकर वर्षा के रूप में पृथिवी को सींचती है[1], जिससे वातावरण स्वच्छ होता है, फिर उस वर्षा से अन्न का उत्पादन भी होता है, जिससे प्रजा बड़े आराम के साथ धन धान्य से सम्पन्न होकर सुखपूर्वक जीवन-यापन करती है ।[2] देवताओं को हवि देने से वे भी प्रसन्न होते हैं । प्रसन्न होने पर व्यक्ति एक दूसरे व्यक्ति को लाभ पहुँचाना चाहता है तो फिर देवताओं की क्या बात । वे प्रसन्न होकर प्रजा का कल्याण करते हैं । यज्ञ करने से व्यक्ति जीवन मरण के कष्ट से उबर जाता है और पुण्य कमाता है ।[3]

---

1. अग्निर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्रादवृष्टि । शतपथ 5/3/5/17.
2. विशुद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति । ऐतरेय 2/41.
3. पुनर्मृत्युं मुच्यते य एवमेतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्ति वेद ।
   शतपथ ब्राह्मण 2/3/3/9.

ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने कितनी ऊँची एवं वैज्ञानिक दृष्टि से यह कल्पना की है कि हवि देने से धुँए के रूप में वह आसमान में जाकर वहाँ से वर्षारूप में बरस कर धरती को धन धान्य से पूर्ण करती है ।

ब्राह्मणों के अध्ययन में विदेशी विद्वानों ने अधिक रुचि दिखायी और सभी ब्राह्मणों पर महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए एवं इसकी महत्ता को दर्शाया। इससे भारत उन विदेशी विद्वानों का ऋणी रहेगा । साथ ही भारत का ज्ञान विज्ञान विदेशों तक अपनी धाक स्थापित करने में सफल हुआ ।

ब्राह्मणों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय यज्ञ अनुष्ठान के विषय को लेकर विद्वानों में शास्त्रार्थ होता था । मीमांसा की उत्पत्ति उसी काल में हुई थी । मीमांसा प्रथम दर्शन माना गया है । और मीमांसक प्रथम दार्शनिक माने गये हैं । मीमांसकों को 'ब्रह्मवादी' कहा गया है । 'ब्रह्मवादी' लोग यज्ञ विवाद को सुलझाते हैं । ताण्ड्य ब्राह्मण में "एवं ब्रह्मवादिनोवदन्ति" के द्वारा अनेक याज्ञिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सत्य की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है, जो व्यक्ति झूठ बोलता है, वह अपनी पवित्रता एवं पुण्य को खो डालता है और अपना ही अहित करता है । लोक के लिए कल्याणकारी विचार एवं सिद्धान्तों की छाया पाश्चात्य ग्रन्थों में मिलती है । भगवान बुद्ध ने भी इन सिद्धान्तों एवं विचारों का अपने ऊपर प्रयोगात्मक परीक्षण

किया । शतपथ ब्राह्मण में ही एक स्थान पर सत्य को वेदस्वरूप माना गया है । इसीलिए आर्य जाति में ब्राह्मण ग्रन्थों की पूजा की जाती है । उन्हें प्राण से बढ़कर माना जाता है । प्राचीन काल समस्त जानकारी हमें ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलती है ।

इस प्रकार ब्राह्मणों के विस्तृत अध्ययन से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों एवं विचारों की ओर ध्यान जाता है । उनमें ब्राह्मणों से हमें यज्ञ सम्बन्धी सभी जानकारी हमें मिलती है । शब्दों के निर्वचनों का परिचय हमें ब्राह्मणों से ही मिलता है जोकि निरुक्त के मूल आधार हैं । आख्यानों के माध्यम से हमें उस काल की घटनाओं का पता चलता है । उन्हीं आख्यानों को लक्ष्य में रखकर अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी । ब्राह्मण ग्रन्थ हमारे जीवन के लिए बड़े ही उपयोगी रहे हैं ।

तृतीय अध्याय

ताण्ड्य महाब्राह्मण

सामवेद से सम्बन्धित कुल आठ ब्राह्मण हैं ये क्रमशः हैं । §1§ ताण्ड्य महाब्राह्मण §2§ षड्विंश §3§ सामविधि §सामविधान§ §4§ आर्षेय §5§ देवताध्याय §6§ उपनिषद् §7§ संहितोपनिषद् ब्राह्मण §8§ वंश ब्राह्मण । अन्य वेदों में ब्राह्मणों की इतनी संख्या नहीं है । साम वेद की दो शाखाएं हैं - ताण्डिन् तथा तलवकार अथवा जैमिनीय । दोनों ही शाखाओं से सम्बन्धित ग्रन्थ उपलब्ध है । ताण्ड्य या महा या पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण एवं छान्दोग्य अथवा मन्त्र ब्राह्मण ताण्डिन शाखा से सम्बद्ध हैं । मैक्डोनेल[1] महोदय के विचार से तलवकार अथवा जैमिनीय ब्राह्मण में 5 अध्याय हैं । इसके पहले तीन अप्रकाशित अध्याय यज्ञीय विधि के विविध अंशों का मुख्यतः प्रतिपादन करते हैं।चौथे अध्याय को उपनिषद् ब्राह्मण कहते हैं जो सम्भवतः रहस्य के अर्थ को प्रतिपादित करने वाला है । इसमें आरण्यक की तरह अनेक रूपकात्मक उक्तियाँ मिलती है । साथ ही गुरुओं की दो परम्पराओं का भी उल्लेख मिलता है । पाँचवे अध्याय को आर्षेय ब्राह्मण कहा जाता है इसमें सामवेद के रचयिताओं की संक्षिप्त परिगणना है । उनके विचार को यदि मानते हैं तो हमें सम्पूर्ण तलवकार ब्राह्मण तीन खण्डों में विभक्त तीन भिन्न नामों में मिलता है । तीन अध्यायों में जैमिनीय ब्राह्मण प्रकाशित हो गया है और उपनिषद ब्राह्मण एवं आर्षेय ब्राह्मण पूर्व ही प्राप्त थे ।

1- मैक्डानेल--हिस्ट्री आफ दि संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ 195

सामवेद से सम्बन्धित अन्य ब्राह्मणों का अध्ययन इसके पहले अध्याय में किया जा चुका है । अब यहाँ पर ताण्ड्य महाब्राह्मण के विषय में वर्णन किया जायेगा जो शोध प्रबन्ध का विषय है ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण का अर्थ -

यह ब्राह्मण सामवेद का सबसे महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है । ताण्डि शाखा से सम्बन्धित होने के कारण ताण्ड्य ब्राह्मण कहा जाता है । सामविधान[1] ब्राह्मण के अनुसार ताण्डि नाम के एक आचार्य थे उन्हीं के नाम पर इसका नाम ताण्ड्य पड़ा । शतपथ[2] ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है "अथ ह स्माह ताण्ड्य" अर्थात ताण्ड्य बोला । इस ताण्डि आचार्य ने ताण्ड्य ब्राह्मण का प्रवचन किया था । ताण्ड्य महाब्राह्मण मे कुल 25 अध्याय हैं इसलिए इस ब्राह्मण को पंचविंश ब्राह्मण कहते हैं । इस ब्राह्मण का एक नाम और मिलता है, इसकी विशालता को देखते हुए इसे महाब्राह्मण भी कहा जाता है । इस ग्रन्थ में कुल 25 प्रपाठक और 347 खण्ड हैं । सायण ने ताण्ड्य महाब्राह्मण पर जो भाष्य लिखा है, । उसमें उन्होंने प्रपाठक के स्थान पर अध्याय शब्द का प्रयोग किया है लेकिन मूलग्रन्थ के हस्तलेखों में प्रपाठक शब्द ही सर्वत्र पाया जाता है ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण का सम्बन्ध सामवेद की कौथुमीय शाखा से है महार्णव[3] में लिखा गया है कि इस ब्राह्मण का सम्बन्ध कौथुम शाखा से है, जो

1- सामविधान ब्राह्मण 2/93
2- शतपथ ब्राह्मण 6/1/2/25
3- माध्यन्दिनी, शांखायनी, कौथुमी शौनकी तथा ।
नर्मदोत्तर भागे च यज्ञ कन्या विभागिनः । महार्णव ।

गुजरात में प्रचलित था । यहाँ उन अभिप्राय चरणव्यूह के टीकाकार का भी है, उनके अनुसार ताण्ड्य ब्राह्मण से सम्बन्ध रखने वाली कौथुमी शाखा गुजरात में प्रसिद्ध थी । यह बात अभी तक सत्य भी उतर रही है । क्योंकि इसका प्रचलन गुजरात प्रदेश में ही है ।

इसी अध्याय के प्रारम्भ में सामवेद की दो शाखाओं का वर्णन किया गया है । उनमें एक थी ताण्ड्य नाम की शाखा । सत्यव्रत सामश्रमी आदि भारतीय विद्वानों का विचार है कि ताण्ड्य शाखा का ब्राह्मण 40 प्रपाठक का एक वृहद् ब्राह्मण था । इसी वृहद् ब्राह्मण के प्रारम्भ के 25 अध्याय ताण्ड्य ब्राह्मण के नाम से जाने गये ।

1- गुर्जर देशे कौथुमी प्रसिद्धा । चरणव्यूह ।

ताण्ड्य ब्राहमण का देश और काल -

अधिकतर ब्राहमण ग्रन्थों में जो भौगोलिक विवरण दिये गये हैं। उनके अनुसार ब्राहमणों के उदय का स्थान कुरुपान्चाल प्रान्त तथा सरस्वती नदी का प्रदेश है । ताण्ड्य ब्राहमण का सारस्वत प्रदेश से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । ताण्ड्य[1] ब्राहमण में सरस्वती नदी के लुप्त हो जाने के स्थान का नाम "विनशन" बताया गया है । तथा उसके पुनः उदगम के स्थान का अभिधान "प्लक्षप्रास्रवण" है । ताण्ड्यमहाब्राहमण[2] में एक स्थान पर वर्णन आया है कि यह स्थान "विनशन" से अश्व की गति से 44 दिनों तक चलने की दूरी पर था । सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के बीच के प्रदेश तथा इनके संगम का निर्देश इसी ब्राहमण में मिलता है ।[3] ताण्ड्य[4] ब्राहमण में कुरुक्षेत्र को प्रजापति की वेदी माना गया है । प्रजापति के यज्ञ का प्रतीक होने से कुरुक्षेत्र यज्ञ की वेदी सिद्ध होता है ।

1- ताण्ड्य महाब्राहमण 25/10/2।

2- सरस्वती विनशनप्रदेशादारभ्य चतुश्चत्वारिंशदाश्वीनप्रमाणः प्लक्षःप्रास्रवणः।
ताण्ड्य महाब्राहमण 25/10/16

3- ताण्ड्य महाब्राहमण 25/10/23

4- एतावतो वात्रप्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रमिति । ताण्ड्य महाब्राहमण 25/13/3

इससे यह पता चलता है कि ब्राह्मणों का संकलन इसी प्रदेश में हुआ था । मनुस्मृति में सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों को देव नदी के नाम से अभिहित किया गया है यह देवनिर्मित प्रदेश "ब्रह्मावर्त" के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसे ही यज्ञ संस्कृति का केन्द्र माना गया और यहीं पर ब्राह्मणों की यज्ञ प्रक्रिया का पूर्ण विकास हुआ । इसी प्रदेश की भाषा को राष्ट्रभाषा का सम्मान मिला । यहीं के आचार एवं संस्कृति पूरे भारतवर्ष की आचार एवं संस्कृति बन गयी ।

ब्राह्मणों में शतपथ ब्राह्मण प्राचीनतम माना जाता है । इसका समय 3000 हजार ईसा पूर्व माना गया है और शेष ब्राह्मण ग्रन्थ 3000 ईसा पूर्व से लेकर 2000 ईसापूर्व के बीच लिखे गये हैं । ताण्ड्य महाब्राह्मण भी एक प्राचीन ब्राह्मण है । शतपथ ब्राह्मण की प्राचीनता का आधार उसका सस्वर होना है । कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण स्वरपाठ सहित मिलता है इसे भी प्राचीनता की दृष्टि से शतपथ के समीप माना जाता है । भाषिक सूत्र में कहा गया है कि ताण्ड्यादि सामब्राह्मण सस्वर थे । उनमें लिखा गया है कि "शतपथ के समान ही ताण्ड्य और माल्लवियों का ब्राह्मण सस्वर था ।[2] ऐसा ही विवरण नारद शिक्षा में भी प्राप्त होता है ।[3] इससे सिद्ध होता है कि

1- मनुस्मृति 2/22

2- शतपथ वत्ताण्डिभाल्लविना ब्राह्मण स्वरः । भाषिक सूत्र 3/25 ।

3- द्वितीयप्रथमावेतौ ताण्डिभाल्लविनां स्वरौ ।
तथा शतपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम । नारद शिक्षा ।

ताण्ड्य आदि ब्राह्मण स्वर सहित पढ़े जाते थे । शतपथ ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, ताण्ड्य महाब्राह्मण से प्राचीन माने जा सकते हैं और शेष उपलब्ध ब्राह्मण इसकी अपेक्षा नवीन प्रतीत होते हैं । जिनमें अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण सबसे नवीन ब्राह्मण माना गया है । कुछ विद्वानों ने सामवेद के जैमिनीय ब्राह्मण को ताण्ड्यमहाब्राह्मण से प्राचीन माना है । विश्लेषण करने के पश्चात् यह पता चलता है कि ताण्ड्यमहाब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों में से एक था ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण की विषय वस्तु

ताण्ड्यमहाब्राह्मण एक विशालकाय ब्राह्मण है । सम्पूर्ण साहित्य यज्ञों के वर्णन से भरा पड़ा है । ताण्ड्यब्राह्मण भी इसका अपवाद नहीं हैं । ब्राह्मणों में यज्ञसम्बन्धी सभी जानकारियां दी गयी हैं । यज्ञ क्या है ? यज्ञ के प्रयोजन क्या हैं ? यज्ञ का क्या महत्त्व हैं ? इन सभी तथ्यों की जानकारी हमें ब्राह्मण साहित्य से ही मिलती है । यज्ञ के विविध रूपों का इसमें वर्णन मिलता है । ताण्ड्य महाब्राह्मण में सोम तथा सोमयाग ही मुख्य विषय है । यह ब्राह्मण सामवेद से सम्बन्धित है । यह पूर्व विदित है । सामवेद से सम्बन्धित होने से इस ब्राह्मण में साम के विशिष्ट प्रकारों का एवं उनके नामकरण और उदय का वर्णन हुआ है । साम का नामकरण उनके द्रष्टा ऋषियों के कारण ही पड़ता है । इस ब्राह्मण में वैखानस ऋषि के द्वारा दृष्ट साम वैखानस,[1] शर्कर दृष्ट साम शार्कर[2], इस तरह से सामों के नामकरण किये गये हैं । इस ब्राह्मण में कहीं कहीं सामों की स्तुति एवं महत्त्व को प्रदर्शित करनेके लिए रोचक आख्यायिकायें दी गयी हैं । साम के विषय में एक उदाहरण दिया जा रहा है ।

1- वैखानसंभवति ताण्ड्यमहाब्राह्मण 14/4/6

2- शार्करम भवति । ताण्ड्य महाब्राह्मण 14/5/14

वत्स तथा मेधातिथि दो काण्व ऋषि थे । मेधातिथि ने वत्स को शूद्र पुत्र एवं अब्राहमण कहकर गाली दी । इसके पश्चात् वे दोनों वत्स "वात्स साम" से तथा मेधातिथि मेधातिथ्य साम से अग्नि के पास ब्राहमीयान् के निर्णय के लिए पहुँचे । वहाँ पर पहुँचते ही वत्स ने अपने को अग्नि में डाल दिया, परन्तु अग्नि ने उसका एक भी रोंआ तक नहीं जलाया {तस्य लोम च नौषत} । तभी से वात्स साम इच्छाओं के पूरक होने से "कामसनि"[1] के नाम से विख्यात हुआ । ठीक इसी प्रकार का एक वर्णन - ताण्ड्य[2] महाब्राहमण में हुआ है । जिसमें वीङ्क" साम के द्वारा च्यवन ऋषि को यौवन प्रदान करने की आख्यायिका का उल्लेख किया गया है ।

ताण्ड्यमहाब्राहमण में एक दिन से लेकर सहस्र संवत्सर तक चलने वाला यज्ञों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया गया है इस ब्राहमण के द्वितीय

1- वत्सश्च वै मेधातिथिश्च ----------------------------कामसनि

- साम वात्सं काममेवैतेनावरुन्धे ।

2- च्यवनो वै दाधीचोऽश्विनोः प्रिय आसीत्सोऽजीर्यत्तमेतेन साम्ना अप्सु व्यैङ्कयतां तं पुनर्युवानम कुरुतां तद्वाव तौ तहर्यकामयेतां कामसनि साम

तथा तृतीय अध्याय में त्रिवृत्पन्चदश, सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियों का वर्णन किया गया है ।

चतुर्थ तथा पन्चम अध्यायों में 'गवामयन" का वर्णन है । इसमें गौओं द्वारा अनुष्ठान किया जाता है । इसीलिए गवामयन कहा जाता है । यह सत्र के अन्तर्गत आता है । और सत्र के अन्तर्गत आने वाले यागों की प्रकृति है । यह एक वर्ष तक चलने वाला याग है । इसके अनुष्ठान के लिए माघ या फाल्गुन मास में दीक्षा ली जाती है । गवामयन सत्र में सूर्य के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं गवामयन सत्र के अन्तिम महीने में महाव्रत दिवस के कृत्य किये जाते हैं । गवामयन की वेदी श्येनाकार होती है ।

छठें अध्याय से लेकर नवें अध्याय के दूसरे खण्ड तक ज्योतिष्टोम, उक्थ्य, अतिरात्र का वर्णन किया गया है । ये सब "एकाह" और अहीन" यज्ञों की प्रकृति हैं । ताण्ड्यमहाब्राह्मण के छठें अध्याय के प्रथम खण्ड में वर्ण व्यवस्था का वर्णन है जिसमें क्रमशः चारो वर्णों की उत्पत्ति, कर्म, इत्यादि को बताया गया है । छठें अध्याय के आठवे, नवें खण्ड में पुनर्जन्म एवं परलोक सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं । छठें अध्याय के सातवें एवं आठवें खण्डमें ज्योतिष्टोम" की उत्पत्ति, उद्गाता के साथ औदुम्बरी शाखा की स्थापना, द्रोण कलश की स्थापना, इत्यादि का वर्णन है । सप्तम खण्ड से लेकर सातवें अध्याय के द्वितीय खण्ड तक प्रातः सवन का वर्णन है । प्रातः सवन से तात्पर्य है कि सोम का

रस निचोड़कर प्रातः काल में देवता सम्बन्धी आहुति दी जाती है । सातवें अध्याय के दूसरे खण्ड से लेकर आठवें अध्याय तक माध्यन्दिन सवन का वर्णन किया गया है । यह सवन दिन के मध्य भाग अर्थात् दोपहर को की जाती है इसी से इसका नाम माध्यन्दिन सवन है । जिसमें रथन्तर, वृहत्, नौधस तथा कालेय सामों का विस्तृत वर्णन है ।

आठवें अध्याय के शेष खण्ड से लेकर नवम अध्याय तक सायं सवन तथा रात्रिकालीन पूजा का विधान किया गया है । तीसरा सवन दोपहर के बाद किया जाता है । यही अन्तिम सवन है ।

दशम अध्याय से लेकर पन्द्रहवें अध्याय तक द्वादशाह यागों का विधान किया गया है जिनमें क्रमशः प्रथम दिन से आरम्भ कर दशम दिन तक के विधानों तथा सामों का विशिष्ट वर्णन हुआ है । द्वादशाह यज्ञ दो प्रकार का होता है, सत्र रूप और अहीनरूप । सत्रात्मक केवल ब्राहमण हीकर सकते हैं । चौदहवें अध्याय में विभिन्न ऋषियों द्वारा दृष्ट सामों का वर्णन किया गया है । ताण्ड्य महाब्राहमण के 16वें अध्याय से 19 वें अध्याय तक नाना प्रकार एकाहों का वर्णन है । जिन सोमयागों में केवल एक दिन तीनों सवनों में सोम को समर्पित किया जाता है । उन्हें "एकाह" कहा जाता है । एकाहों में अग्निष्टोम प्रमुख है। यह समस्त सोमयागों की प्रकृति है । अन्यप्रमुख एकाहों में ज्योतिष्टोम,उक्थ्य,

षोडशी, अत्यग्निष्टोम, इत्यादि प्रमुख है । 16वें अध्याय खण्ड सात में "महाव्रत" एकाह, अग्निष्टोम संस्था वाले चार प्रकार के साहस्रा एकाह जिनका नाम ये हैं - ज्योति, सर्वज्योति, विश्वज्योति, और अग्निष्टोम संस्थ । खण्ड 12 से खण्ड सोलह तक साधस्का नामक एकाहों का वर्णन है, ये 6 प्रकार के होते हैं । प्रारम्भ के दो एकाहों का कोई नाम नहीं मिलता है । शेष के नाम इस प्रकार हैं -अनुक्री, विश्वजिच्छिल्प स्वर्गकाम और एकत्रिक । इन एकाहों का अनुष्ठान खेत में होता था इससे रोग दूर होते थे ।

सत्रहवें अध्याय खण्ड एक से खण्ड चार तक व्रात्य स्तोम का वर्णन किया गया है । अद्विजों के मध्य निवास करते हुए जो लोग अपना द्विजत्व खो देते थे । वे व्रात्य के अन्तर्गत आते थे । इन्हीं व्रात्यों के फिर से द्विज समूह में प्रवेश के लिए व्रात्य स्तोम किया जाता है । इसी अध्याय के खण्ड पाँच से खण्ड नौ तक पाँच प्रकार के अग्निष्टुतों का वर्णन है इन यज्ञों को वह व्यक्ति करता था जो अश्लील वाणी बोलने के लिए प्रायश्चित करता है । खण्ड दस से बारह तक में तीन त्रिवृत स्तोम प्रजापतेर पूर्व, वृहस्पतिसव, सर्वस्वार नाम से वर्णित है। इन यज्ञों को ग्रामकामी, पौरोहित्य और सुखत्व कामी, एवं स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा वाले व्यक्ति करते थे ।

अठारहवें अध्याय के प्रथम खण्ड से पाँचवें तक उपहव्य, वैश्यसव तीव्रसुत इत्यादि एकाहों का वर्णन है । ये अग्निष्टोम के सम्बन्धित है ।

छठें एवं सातवें खण्डमें वाजपेय का वर्णन किया गया है । इस यज्ञ को शरद ऋतु में किया जाता है । सम्राट पद की प्राप्ति के लिए यह किया जाता है । आठवें से दसवें खण्ड में महत्वपूर्ण "राजसूय" यज्ञ का विवेचन हुआ है । यह एक दीर्घ-कालिक यज्ञ है । इसमें यजमान का क्षत्रिय होना आवश्यक है । इस यज्ञ का मुख्य कृत्य राज्याभिषेक है । इसमें एक सुत्यादिवस होने के कारण इसकी गणना एकाहों में की जाती है । बीच में उस समय की सांस्कृतिक दशा का वर्णन मिलता है । उस समय लोग क्या पहनते थे । क्या खाते थे ? इत्यादि ।

उन्नीसवें अध्याय में विभिन्न द्वन्द्व सोमयागों का वर्णन किया गया है । द्वन्द्व सोमयाग में एक यज्ञ को करने के पश्चात् दूसरे यज्ञ को करना अनिवार्य होता है । प्रथम खण्ड में राट और द्वितीय में विराट को फिर क्रमशः औपशद पुनस्तोम, चतुष्टोम अन्यचतुष्टोम, उद्भिदवलभिद् अपचिति प्रथम, अपचिति द्वितीय, ऋषभ-गोसव, मरुत्सोम इन्द्राग्निस्तोम, इन्द्रस्तोम, विघान प्रथम और द्वितीय एकाह यज्ञों का वर्णन हुआ है ।

बीसवें अध्याय से अहीन यागों का वर्णन हैं एक से अधिक रात्रियों तक चलने वाले यज्ञों को अहीन कहा जाता है । यह एक ऐसा सोमयाग है । जिसमें तीनों वर्णों का अधिकार रहता है । इन तीन वर्णों में ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य की गणना की जाती है । इसमें दक्षिणा होती है । अन्त में अतिरात्र संस्था

होती है । यह एक, दो, तीन चार आदि अनेक यजमानों के द्वारा निष्पन्न होता है ।[1] अहीन यज्ञ के कई भेद हैं । खण्ड एक से दस तक विभिन्न एकरात्रिक क्रतुओं का उल्लेख हुआ है एकरात्रिक होने के अतिरिक्त यह यज्ञ दूसरे दिन प्रातः काल तक चलता है । इसीलिए इनकी गणना अहीन में की जाती है । मुख्य एकरात्रिक ये हैं §1§ ज्योतिष्टोम §2§ सर्वस्तोम, §3§ अप्तोर्याम, §4§ नव-सप्तदश, §5§ विषुवद, §6§ गोष्टोम, आयुष्टोम अभिजित, विश्वजित । इनके अतिरिक्त तिवृत, पन्चदश, सप्तदश, एकविंशति एक स्तोम वाले अतिरात्र हैं । ग्यारहवें खण्ड से 13 वें खण्ड तक द्विरात्रिक अहीन यागों का विवरण मिलता है इस श्रेणी में आंगिरस, चैत्ररथ और कापिवन आते हैं । 14वें खण्ड से 21 वें खण्ड तक "गर्ग" नामक त्रिरात्र का वर्णन आया है । त्रिरात्रिक शब्द से ही पता चलता है कि यह तीन रात्रियों तक चलता है । 20वें अध्याय में केवल "गर्ग" त्रिरात्र के विषय में वर्णन किया गया है ।

इक्कीसवें अध्याय के खण्ड 3 से खण्ड आठ तक में शेष 5 त्रिरात्रों अश्व, वेद, छन्दोमपवमान, अन्तर्वसु और पराक के विषय में जानकारी दी गयी है नौवें खण्ड से 12 वें खण्ड तक चार प्रकार के चतुरात्रों का वर्णन है ।

1- त्रैवर्णिकाधिकारिक: सदक्षिणोऽतिरात्र संस्थापक: एकद्विचतुराद्यनेक-यजमान-कर्तृक: सोमयागोऽहीन: ।

ये चतुर्वीर, जमदग्नि, वाशिष्ठ, संजय के नाम से जाने जाते हैं । खण्ड 13 से 15 तक में पाँच रात्रियों तक चलने वाले तीन पंचरात्रों अभ्यासंगा, पन्चशारदीय, अन्तर्महाव्रत के विषय में वर्णन मिलता है ।

बाइसवें अध्याय से षडरात्रों का वर्णन है । तीन प्रकार के षडरात्र त्रिकद्रुक, पृष्ठ्य और अभ्यासंग्य नाम के हैं । चौथे खण्ड से दसवें खण्ड तक सात सप्तरात्रों का परिचय दिया गया है । ये सप्तर्षि, प्रजापति, छन्दोमपवमान जमदग्नि, ऐन्द्र, जनक तथा पृष्ठ्यस्तोम नाम से जाने जाते हैं । इसी अध्याय के 11वें खण्ड में अष्टरात्र को भी वर्णित किया गया है । अगले दो खण्डों में दो नवरात्रों देव और अन्य के विषय में खण्ड 14 से 17 तक में 4 प्रकार के दशरात्रों {त्रिककुप्, कौसुरुविन्दु, अन्य:कश्चित् और देवपुरम} का वर्णन है । अन्तिम खण्ड में "पुण्डरीक" नामक एकादशरात्र का वर्णन मिलता है । यह स्वराज्य और समृद्धि प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

तेइसवें अध्याय से "सत्र" नामक यज्ञों का प्रारम्भ होता है । सत्र में त्रयोदशरात्र से सहस्रसंवत्सर तक के यागों का वर्णन मिलता है । सत्र का लक्षण बताया गया है -"ब्राह्मण कर्तृकोऽदक्षिण उभयतोऽतिरात्र संस्थाक: सोमयागविशेष: सत्रम"[1] । सत्र में आहिताग्नि अग्निष्टोम संस्था के सम्पादक कम से कम 17 और

1- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति -पृष्ठ 212 डा0बलदेव उपाध्याय

अधिक से अधिक 24 अधिकारी होते हैं । ये सभी यजमान होते हैं । सत्र जन्य फल सबको समान रूप से मिलता है, और दक्षिणा नहीं दी जाती । 17 अधिकारी पक्ष में एक गृहपति कहलाता है, अन्य सोलह ब्रह्मादि का कार्य करते हैं । 24 अधिकारिपक्ष में आठ गृहपति होते हैं और सोलह ऋत्विक् आदि का कार्य करते हैं। तेइसवें अध्याय के प्रथम दो खण्डों में दो प्रकार के त्रयोदशरात्रों {आप्तद्वादशाह और प्रतिष्ठाफलक} का, तीसरे से पाँचवे खण्ड में तीन प्रकार के चतुर्दशरात्रों {सर्वद्धिसाधनम्, अन्यचतुर्दश रात्र सत्र, प्रतिष्ठासाधनम् } का वर्णन है । खण्ड छः से खण्ड नौ तक चार प्रकार के पन्चदश रात्रों का, दसवें खण्ड से 14वें खण्ड तक षोडश रात्र से विंशतिरात्र सत्र का पन्द्रहवें खण्ड से 18 वें तक दो प्रकार के एकविंशति रात्र, द्वाविंशति और त्रयोविंशति रात्र सत्र का वर्णन किया गया है । इसमें ब्रह्मवर्चस् मुख्य है । खण्ड उन्नीस से अट्ठाइस तक दो प्रकार के चतुर्विंशति रात्र और पन्चविंशति रात्र से द्वात्रिंशद्रात्र तक के रात्रि सत्रों का उल्लेख है ।

24वें अध्याय के प्रथम तीन खण्डों में तैंतीस रात्रि से चालीस रात्रियों तक चलने वाले विभिन्न रात्रिसत्रों का 11वें खण्ड से सत्रहवें खण्डतक सात प्रकार के एकोनपन्चाशत् रात्र का इसको 'विवृति सत्र' भी कहा जाता है । अठारहवें खण्ड में एकषष्ठिरात्र और 19वें खण्डमें शतरात्र का वर्णन मिलता है । इसके पश्चात् समस्त सत्रों की प्रकृति गवामयन सत्र का विवरण प्राप्त होता है ।

यह द्वितीय प्रकार के सांवत्सरिक सत्र के अन्तर्गत आता है ।

पच्चीसवें अध्याय में "गवामयन सत्र के अतिरिक्त अनेक सत्रों का वर्णन मिलता है । प्रथम खण्ड में आदित्य नामक सत्र का, दूसरे में अंगिरस फिर क्रमशः दृतिवातवतो, कुण्डयायिनाम् और "तपश्चित के सत्र का वर्णन है । इसके पश्चात् बारह वर्ष तक चलने वाले, छत्तीस वर्ष तक चलने वाले, सौ वर्षों तक चलने वाले यज्ञों का वर्णन है नौवे खण्ड से सहस्रसात सत्र का उल्लेख है । दसवें खण्ड से 12वें खण्ड तक तीन प्रकारके सारस्वत सत्रो {मित्रावरुणयोरयनम्, इन्द्राग्न्योरयनम् और अर्यम्णोरयनम् } का वर्णन मिलता है । दीर्घकालिक यज्ञों दार्षद्वत" तुरायण, सर्पसत्र" त्रिसंवत्सर, सहस्रसंवत्सर तक चलने वाले विश्व सृजायमयन नामक सत्रों का वर्णन है ।

ब्राह्मणों का मुख्य विषय यज्ञ मीमांसा है, ताण्ड्यमहाब्राह्मण भी इससे अछूता नहीं है इसका प्रधान प्रर्यविषय सोमयाग है । जिसे विषय वस्तु में क्रमशः उद्धृत किया गयाहै । इनकी क्रियाविधि और फल प्राप्ति इत्यादि का वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा । इस अध्याय में केवल किस अध्याय औरकिस खण्ड में क्या कहा गया है, इसका वर्णन है । ताण्ड्य महाब्राह्मण में यज्ञों के वर्णन में ही बीच बीच में उस समय की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक दशा इत्यादि केविषय में भी वर्णन मिलता है । इस ब्राह्मण में यज्ञ के प्रधान विषयों को लेकर विभिन्न ब्रह्मवादियों के बीच वाद विवाद भी होता था । व्रात्ययज्ञ" अग्निष्टो

साम का विधान किस मन्त्र पर हो । कुछ आचार्यों की सम्मति है कि "देवो वा द्रविणोदा" पर साम का विधान होना चाहिए । तो कुछ आचार्य लोग" अदर्शि गातु वित्तम" सतोबृहती पर साम रखने के पक्षपाती हैं । ताण्ड्यमहा ब्राह्मण में इस मत का खण्डन करके पूर्व मत को स्वीकार किया गया है । पच्चीसवें अध्याय के अन्तिम कुछ खण्डों में सरस्वती, दृषद्वती इत्यादि नदियों के उद्गम, संगम स्थानों के विषय में जानकारी मिलती है ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण की भाषा और शैलीगत विशेषताएं

वेदों के अधिकतर भाग पद्यमें मिलते हैं । कुछ ही भाग हैं जो गद्य में लिखे गये हैं । लेकिन पूरा ब्राह्मण साहित्य गद्य में लिखा गया है । ताण्ड्य महाब्राह्मण भी गद्य में लिखा गया है । इसकी भाषा परिमार्जित है । ताण्ड्य का गद्य साहित्यिक शैली में निबद्ध रोचक गद्य का भव्य दृष्टान्त है । इसमें न कहीं दीर्घ समास का दर्शन होता है और न अर्थ समझने में कहीं दुरूहता । बड़ी ही सरल भाषा में इनका विवेचन किया गया है । भाषा मन्त्रों की भाषा के समान है । लेकिन वेद के धातुओं एवं प्राचीन शब्दों से ब्राह्मणों ने अपने को वंचित रखा और उसके स्थान पर नये शब्द एवं नये शब्दरूपों का प्रयोग मिलता है । ब्राह्मण साहित्य संहिताओं एवं लौकिक संस्कृत के बीच एक कड़ी का काम करती है । ठीक इसी प्रकार ब्राह्मणों की भाषा, संहिताओं की भाषा तथा पाणिनि के द्वारा नियमित संस्कृत भाषा को मिलाने वाली बीच की कड़ी है । जिस तरह भगवती भागीरथी का भव्य प्रवाह प्रवाहित होता रहता है, ठीक उसी प्रकार इस गद्य भाषा का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है । ताण्ड्यमहाब्राह्मण में वाक्यों की जो रचना की गई है, वह बड़ी ही सरल, सीधी एवं सरस हैं । अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा यह ब्राह्मण थोड़ा दुरूह जान पड़ता है । यदि ब्राह्मण साहित्य में यज्ञ सम्बन्धी विवरण न होते तो शायद ही इनका कोई अध्ययन करता । वैसे भी यज्ञीय प्रसंग में नीरसता है लेकिन उस नीरसता को लघु वाक्यों में विन्यस्त करके

पर्याप्त रूप से रोचक, आकर्षक एवं हृदयावर्जक बनाया गया है । ब्राहमण साहित्य में नीरसता और बढ़ जाती यदि बीच बीच में आख्यायिका वाले अंश न होते । क्योंकि आख्यायिकाएं रोचक होती हैं । ब्राहमण ग्रन्थों एवं ताण्ड्यमहाब्राहमण के वैयाकरण वैशिष्ट्य के ये प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

§1§ स्त्रीलिंग शब्दों के पन्चमी तथा षष्ठी एक वचन में आ:के स्थान पर ऐ का प्रयोग §भूम्या: के स्थान पर भूम्यै का प्रयोग जो कि अथर्व के गद्य में भी विद्यमान हैं ।

§2§ "अन्" से अन्त होने वाले शब्दों की सप्तमी एकवचन में सर्वत्र "इ" प्रत्यय जोड़ा मिलता है । केवल अहन् एवं आत्मन् शब्द ही इसके अपवाद हैं ।

§3§ कर्तृवाचक निष्ठाप्रत्यय "तवत्" का कभी कभी प्रयोग होने लगता है ।

§4§ ईश्वर शब्द के साथ तुमुन् के लिए तो: का प्रयोग मिलता है । "रूप

§5§ "रूप करोति" का प्रयोग "होना" के अर्थ में ब्राहमणों की विशिष्टता है ।

§6§ भूतकालिक लकारों का बहुत प्रयोग बड़ी सूक्ष्मता के साथ मिलता है । लिट में द्वित्व करण पर्याप्त रूप में है । लुङ का प्रयोग साक्षात् कथन में ही विशेष है । वर्णन के निमित्त लङ् ही विशेष प्रयुक्त है ।

§7§ कृ के योग से जो लिट की रूप निष्पत्ति अथर्व से आरम्भ होती है । वह ब्राहमण ग्रन्थों में व्यापक रूप धारण करती है, परन्तु लौकिक संस्कृत के समान भू और "अस" का प्रयोग अभी यहाँ नहीं होता । पाणिनि ने ब्राहमणों की भाषा के इन वैशिष्ट्यों का गम्भीर संकेत किया है ।

(8) ताण्ड्य महाब्राह्मण का गद्य ग्रीक और लैटिन गद्य में बड़ा अन्तर है । क्योंकि ग्रीक और लैटिन भाषा के आदर्श गद्य तथा वर्तमान जर्मन भाषा के समान निपात नियमतः कारक से पूर्व प्रयुक्त होता है । जबकि ब्राह्मणों में ऐसा नहीं है । ब्राह्मणों में प्रयोग किये गये 41 उपसर्गों में से केवल 12 उपसर्ग ऐसे हैं, जो हमेशा कारक के पूर्व रखे जाते हैं, और इस दृष्टि से ये वास्तव में उपसर्ग है । ऐसे उपसर्ग निम्नलिखित है - आ, साकम् उपरि, तिरः पश्चात्, अवस्तात्, अधस्तात्, प्राक्प्राङ् अर्वाक्, पराचीनम्-अवाङ् ।

(9) अन्य अव्ययों का स्थान कारक के पश्चात् ही किया गया है ।

अध्ययन करने से पता चलता है कि ताण्ड्यमहाब्राह्मण की भाषा परिमार्जित, प्रसन्न एवं उदात्त है । इसकी शैली बड़ी ही सरस है । ब्राह्मण में प्रयुक्त व्याकरण का अन्य साहित्य में प्रयुक्त व्याकरण के अन्तर का ज्ञान होता है ।

चतुर्थ अध्याय

यज्ञ की महत्ता और अर्थ

यज्ञ भारतीय संस्कृति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, इसीलिए यज्ञ ब्राह्मण धर्म का मेरुदण्ड कहा जाता है । ब्राह्मण साहित्य में इन यज्ञों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । यज्ञ को शतपथ ने इहलोक का ऐश्वर्य रूप माना है ।[1] अन्य स्थानों पर भी इसे पापों, रोगों आदि का नाशक बताया गया है ।[2] इसे स्वर्ग प्राप्ति का साधन[3] एवं अमरत्व प्रदान करने वाला बताया गया है ।[4] शतपथ[5] ब्राह्मण में तो इसे जीवन का श्रेष्ठ कर्म कहा गया है । जहाँ वेदों में अनेक स्थानों पर यज्ञ को "प्रजापति" कहा गया है,[6] इस बात से यज्ञ की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है ।

अग्नि में नाना देवताओं को उद्दिष्टकर हविष्य या सोम रस का हवन "यज्ञ" के नाम से जाना जाता है । धातु "यज्" देवपूजासंगतिकरणदानेषु" से यज्ञ की महत्ता एवं विविधता को बताया गया है । इसमें वैदिक युग के यज्ञों की धारणा का इससे पता नहीं चलता । शतपथ ब्राह्मण[7] में यज्ञ का निर्वचन

1- शतपथ ब्राह्मण 1/7/1/9, 14

2- गीता 3/13, मैत्रायणी सं0 1/10/10-14

3- तैत्तिरीय संहिता, 6/3/4/7, शतपथ 1/7/1/5, ऐतरेय 1/19

4- काठक सं0 36/11, तैत्तिरीय 1/6/8

5- शतपथ 1/7/3/5 यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ।

6- ऐतरेय 2/17, 4/26, शतपथ 1/7/4/4, तैत्तिरीय 3/3/7/3

7- शतपथ 3/9/4/23

किया गया है । वहाँ कहा गया है कि विस्तारित, विकसित किया जाता हुआ जो उत्पन्न होता है उसे ही यज्ञ कहते हैं ।

ऋग्वैदिक काल से ही यज्ञ की परम्परा की शुरूआत हो गयी थी, लेकिन यज्ञ का सम्पूर्ण विकास ब्राह्मणकाल में ही हो पाया । ऋग्वेद में "यज्ञ" शब्द यजन, पूजा या उपासना के सामान्य अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है, लेकिन बाद में अग्नि में आहुति देने के साथ अन्य क्रियाओं से युक्त अनुष्ठान विशेष को यज्ञ की संज्ञा दी गयी ।

यज्ञ की हवियों पर ही उस काल के देवता निर्भर रहते थे । हवि से ही उनके भूख की शान्ति होती थी । भूखे इन्द्र ने उपासु से यज्ञ करने की प्रार्थना की, और उसे स्वर्ग प्राप्ति का प्रलोभन दिया । ऋग्वेद में तीन अग्नियों का उल्लेख मिलता है ।[1] एक अन्य संकेत में तीन स्थानों पर अग्नि प्रज्वलित करने का भी उल्लेख मिलता है । गार्हपत्य अग्नि का स्पष्ट रूप से नाम मिलता है।[2] प्रतिदिन किये जाने वाले तीनों सवनों, प्रातः माध्यन्दिन एवं सायं का भी उल्लेख मिलता है ।

ब्राह्मण साहित्य यज्ञों से भरा पड़ा है । कर्मकाण्ड ही इनका मुख्य विषय है । यज्ञ से सम्बन्धित वर्णन अन्यत्र इतना नहीं मिलता । इन्द्र को यज्ञ की आत्मा माना गया है ।[3] उन्हें यज्ञ का देवता माना गया है ।[4]

1- ऋग्वेद 2/36/4

2- ऋग्वेद 1/15/12

3- शतपथब्राह्मण 9/5/1/33

4- ऐतरेय 5/34, 6/9, गोपथ 2/3/23

यज्ञ की पुरुष ब्रह्म से तुलना की गई है । पुरुष की यज्ञ है, यह भावना अनेक स्थलों पर व्यक्त की गयी है ।[1]

उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि यज्ञ का महत्त्व बहुत अधिक था ।

यज्ञ का क्रमिक विकास

वैदिक यज्ञ अपनी महत्ता के लिए जितना प्रसिद्ध है, उतना ही अपनी विविधता के लिए भी । हजारों वर्ष का यज्ञ का इतिहास है । कितनी सभ्यताएं आयीं कितनी गयीं । यज्ञ में कितनी विधियां प्रारम्भ में थीं, कितनी बाद में । कौन यज्ञ सबसे पहले प्रचलन में आया । ये सब प्रश्न सामने आते हैं ।

अनुमान के आधार पर अग्निहोत्र याग के रूप में यज्ञ की कल्पना की गयी, अग्नि होत्र सबसे प्राचीन माना जा सकता है, अग्निहोत्र याग एक बहुत ही सरल याग था । जिसमें ऋत्विजों की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी । यजमान इसे दैनिक जीवन में से थोड़ा समय निकाल कर सम्पन्न कर लेता था ।

इसके पश्चात् दर्श पूर्णमास और चातुर्मास्य का क्रम हो सकता है, क्योंकि दर्शपूर्णमास में प्रजा की उत्पत्ति की कामना की गयी है । और चातुर्मास्य

1- कौषीतकि ब्राह्मण 17/7/25

में मृत्यु, रोग और शत्रु रूपी बाधाओं को क्षीण करके एक सुखपूर्वक जीवन जीने के लिए प्रयास किया गया है ।

महाभारत[1] में उपर्युक्त इन तीन यज्ञों को प्राचीन माना जाता है । इसके पश्चात् सोमयाग का क्रम आता है । क्योंकि यज्ञों में सोम का प्रयोग बहुत बाद में हुआ है । लेकिन ऋग्वेद में मुख्यतः शब्द यजमान के लिए आया है । इससे सोमयाग का अस्तित्व ऋग्वेद काल में था ऐसा मानना पड़ेगा । ऋग्वेद में ही अश्वमेध में पशु यागों का वर्णन है । इससे पशुयागों का अस्तित्व भी सिद्ध होता है । इसलिए यह कहा जा सकता है, कि ऋग्वैदिक काल में ही सभी यज्ञों का अस्तित्व था । लेकिन यह ब्राह्मणों में ही फला फूला । उस समय यह धारणा बन गयी थी कि यज्ञ से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति हो सकती है । इसी से सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं । इसीलिए कर्मकाण्ड लोकप्रिय बन गया । और इस श्रद्धा भाव को उस समय के ऋत्विजों ने खूब भुनाया । और अपनी कुशल बुद्धि का उपयोग करते हुए यज्ञ की क्रियाओं में परिवर्तन करके उनको और कठिन बनाकर बहुरूपता प्रदान की ।

सामान्यतः यज्ञ को दो विभागों में बाँटा जाता है[2] ।

1- प्रकृति यज्ञ 2- विकृति यज्ञ

1- दर्शं च पौर्णमासं च अग्निहोत्रं च धीमतः।
चातुर्मास्यानि चैवासन् तेषुधर्मः सनातनः।। महाभारत शान्तिपर्व 269/20

2- तैत्तिरीय संहिता भाष्य 1/7

1- प्रकृति यज्ञ - जिसमें यज्ञ अपने मूल रूप में रहता है-जैसे दर्शपूर्णमास और अग्निष्टोम ।

2- विकृति याग- विकृत यज्ञ वह है जिसमें प्रकृति यज्ञ का विकार या परिवर्तित रूप वर्णित रहता है ।

दर्शपौर्णमास इष्टियागों का प्रकृति यज्ञ है, वहीं पर अग्निष्टोम सोमयागों का प्रकृति यज्ञ है । सोमयागों में "अग्निष्टोम" सबसे प्राचीन माना जाता है । प्राचीन काल में 12 यज्ञ मुख्य यज्ञ माने गये थे । जिनमें हविर्याग से सम्बन्धित 7, सोमयाग से 4, इष्टकायाग से। । अग्निहोत्र दर्श और पूर्णमास चतुर्मास्यों के वैश्वदेव वरुण प्रघास, साकमेध, शुनासीरीय, हविर्याग से सम्बन्धित है । अग्निष्टोम राजसूय, वाजपेय और अश्वमेध सोमयाग से, अग्निचिति इष्ट-का याग से सम्बन्धित है ।

यज्ञ के पन्चाङ्ग

यज्ञ सम्पादन में अनेक वस्तुओं का उपयोग किया जाता है । लेकिन उनमें से कुछ वस्तुएं तो अति महत्त्वपूर्ण होती हैं । ब्राह्मणों में यज्ञ को पाँच अंगों से युक्त माना गया है । देवता, हविर्द्रव्य, मन्त्र, ऋत्विक् और दक्षिणा ये पाँच, यज्ञ के मूल तत्त्व माने गये हैं । इनके अतिरिक्त भी कितनी वस्तुओं का उपयोग यज्ञ में होता है ।

इन्हें तीन भागों में विभक्त करके इसका अध्ययन किया जा रहा है । (1) यज्ञ के आधार (2) यज्ञ के सम्पादक (3) यज्ञ के उपकरण

1- यज्ञ के आधार -

यज्ञ के मूलाधार तत्व में देवता, हवि, और मंत्रों की गणना की जाती है । इसी तीन के इर्द गिर्द सारी क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं ।

देवता -

यज्ञ का सर्वप्रथम तत्त्व देवता है । देवताओं की पूजा अर्चना करके व्यक्ति अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए प्रयास करता है । देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है । आजानज देवता, कर्म देवता तथा आजान देवता । इनमें प्रथम दो प्रकार के देवता कर्म के फल को भोगने वाले होते हैं । इस दिव्य लोक में रहते हुए किये हुए कर्म का फल भोगते हैं । और तीसरी श्रेणी के आजान देवता सृष्टि के आदिकाल में ही उत्पन्न हुए थे, सूर्य, चन्द्र, वायु इत्यादि । देवता यजमान के उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होता है । प्रत्येक

देवता को प्रसन्न करने के लिए अलग-अलग मन्त्र हैं,और अलग-अलग हविर्द्रव्य । अग्नि, विष्णु, इन्द्र, सोम को यज्ञ का देवता माना जाता है, इन देवताओं का सभी यज्ञों में महत्त्व है । कुछ और देवता जिनकी गणना द्वितीय श्रेणी में की जाती है । वे हैं वरुण, अदिति, सविता, पूषा, मरुत,विश्वेदेवा,सरस्वती आदि ।

हविर्द्रव्य -

द्रव्य का वह भाग जो देवताओं को दिया जाता है, "आहुति" कहलाता है । आहुति देकर देवताओं को प्रसन्न किया जाता है । देवता लोग प्रत्यक्ष होकर अपना भाग लेते थे । "अग्नि मुखा वै देवा: । के अनुसार आग में दी हुई आहुति देवताओं के मुख में दी जाती है । अग्नि में शुद्ध होकर आहुति अमृत के रूप में हो जाता है, जो देवताओं के जीवन के लिए वरदान हो जाता है । हवियों में आज्य के अलावा पृषदाज्य, पुरोडाश,चरू तथा सोम प्रमुख है[1] । सान्नाय्य, आमिक्षा,वाजिन,करम्भ मन्थ, और धाना भी हवि रूप में प्रयोग की जाती थी । पशु याग में पशु का भी हविर्द्रव्य के रूप में प्रयोग होता था ।

2- यज्ञ के सम्पादक -

यज्ञ के सम्पादन में "यजमान" ऋत्विज् के अतिरिक्त भी कुछ व्यक्ति भाग लेते हैं । यज्ञों का संकल्पकर्ता, अभीष्ट फल को प्राप्त करने की इच्छा वाला यजमान कहा जाता है । यजमान अपने यज्ञ का प्रजापति माना गया है ।

1- शतपथ ब्राह्मण 1/6/1/20

व्रत भी वही करता है । फल का अधिकारी भी वही होता है । यज्ञ की पूर्णता के लिए यजमान पत्नी का होना आवश्यक है । यज्ञ में पत्नी का कोई स्वतन्त्र योगदान नहीं होता ।

यज्ञ के अनुष्ठाता के रूप में "ऋत्विज्" का नाम आता है, क्योंकि ऋत्विज् यजमान के संकल्प को मन्त्रों के माध्यम से आगे बढ़ाता है । ऋत्विज् का चुनाव यजमान ही करता है । शतपथ में यजमान को यज्ञ की आत्मा कहा गया है, ऋत्विज तो यज्ञ के अंग है ही ।[1] ऋत्विज मुख्य रूप से चार माने गये हैं ।

1- होता - देवताओं का ऋग्वेद मंत्रों के द्वारा यज्ञ में आह्वान करता है ।

2- अध्वर्यु - यज्ञ में यजुओं के द्वारा होम आदि का अनुष्ठान करता है । यज्ञ सम्बन्धी कार्यों का ये प्रधान ऋत्विज है ।

3- उद्गाता- औद्गात्रकर्म करने के लिए उद्गाता देवताओं की स्तुति में साम का गायन करता है ।

4- ब्रह्मा -

ब्रह्मा को यज्ञ का अध्यक्ष माना जाता है । सभी वेदों का ज्ञाता होता है । यज्ञ की बाहरी विघ्नों से सुरक्षा, स्वरों के उच्चारण में त्रुटि होने पर सही करना इत्यादि कार्य "ब्रह्मा" के ऊपर ही था ।

1- शतपथ ब्राह्मण - 9/5/2/16

कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नीद् को उद्गाता के स्थान पर मुख्य ऋत्विज् माना गया है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में "अध्वर्यु" को यज्ञ की प्रतिष्ठा[1] अग्नीद् को यज्ञ का मुख,[2] होता को आत्मा,[3] उद्गाता को यश,[4] और चिकित्सक के रूप में ब्रह्मा का वर्णन है ।[5]

होता का स्थान वेदि के उत्तर में,[6] ब्रह्मा का दक्षिण[7] में, उद्गाता का पूर्व में,[8] अध्वर्यु का स्थान पश्चिम में रहता था । ब्रह्मा और अध्वर्यु के बीच में यजमान रहा करता था । और यज्ञों में ऋत्विजों की संख्या प्राय: कम रहती थी । सोमयाग में एक से लेकर 16 ऋत्विजों का वर्णन आया है । इनमें प्रमुख चारों ऋत्विजों के सहायक के रूप में प्रत्येक के साथ तीन-तीन और

1- तैत्तिरीय 3/3/8/10

2- मैत्रायणीसंहिता 1/6/4

3- कौषीतकि 9/6,29/8 गोपथ-3/5/14

4- गो०पू० 5/15

5- ऐतरेय 5/34

6- तैत्तिरीय 3/9/5/2

7- तैत्तिरीय 3/9/5/1

8- ताण्ड्य ब्राह्मण 6/5/20 अनभिजिता वा एषोदगातृणां दिग्यत्प्राची यद्द्रोण-कलशं प्राञ्च प्रोहन्ति दिशोमभिजित्यै ।

ऋत्विज् होते थे । प्रतिस्थाता, नेष्टा, उन्नेता अध्वर्यु के, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत होता के पोता अग्नीत् ब्राह्मणाच्छंसी ब्रह्मा के, और प्रस्तोता सुब्रह्मण्यम् प्रतिहर्ता उद्गाता के सहयोगी ऋत्विज् कहे जाते थे।

ऋत्विज् और यजमान के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो यज्ञ के सम्पादन में सहायता करते हैं । हवि को कूटने वाले, पीसने वाले हविष्कृत, पशु को मारने वाले शमितृ और सोम विक्रेता आदि सहायक के रूप में कार्य करते हैं ।

दक्षिणा -

बिना कुछ दान किये यज्ञ से अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं हो पाती । दक्षिणा से यज्ञ समृद्ध होता है[1] । निर्दक्षिणोहतो यज्ञः" के अनुसार दक्षिणा देना यज्ञ की पूर्णता के लिए अनिवार्य था । सबसे बड़ा दान गोदान माना जाता था । गो के अतिरिक्त हिरण्य, वस्त्र, और अश्व भी दक्षिणा के लिए होते थे ।[2]

इन पंचांगों में से किसी की कमी यज्ञ को अपूर्ण कर देती थी । जिससे यज्ञ का अभीष्ट फल प्राप्त नहीं होता था ।

1- मैत्रायणी सं0 4/8/3, शतपथ 2/2/2/2, कौषीतकि 15/1

2- शतपथ ब्राह्मण 4/3/4/7

यज्ञ के उपकरण

यज्ञ में कुल मिलाकर 12 उपकरणों का प्रयोग होता है ।

1- आज्य पात्र -

इनमें आहुति के लिए घी अथवा घी दही का मिश्रण रखा जाता है । ये चार माने गये हैं । आज्यधानी, पृषदाज्य धानी, ध्रुवा और उपभृत।

2- होमपात्र -

होमपात्र से आहुतियाँ दी जाती हैं । ये पाँच मानी गयी हैं । जुहू स्रुव अग्निहोत्र हवर्णी, दर्वी और प्रचरणी । कभी कभी मध्यम पर्ण और अर्क-पर्ण से भी एक दो आहुतियाँ दी जाती हैं ।

3- मन्थन उपकरण -

इनसे अग्नि को पैदा किया जाता है । इनमें एक अग्नि मन्थन-कलश और दो अरणियाँ, एक उत्तरारणि और एक अधरारणि हैं ।

4- यज्ञायुध -

इनसे वेदि खोदने, हवि पीसने आदि का काम किया जाता है । ये दस हैं - स्फय, अभ्रि, उलूखल, मूसल, दृषद-उपल, शम्या, शूर्प, कृष्णाजिन् और परशु (अथवा अश्व पशु) ।

5- दोहन उपकरण -

ये हवि के लिए दूध दुहने में प्रयुक्त होते हैं । ये हैं - पलाश या शमी की शाखा, शाखा पवित्र, उखा (लकड़ी या अयस् के ढक्कन सहित) या कुम्भी और रस्सी ।

6- हवि पात्र-

जिसमें हवि तैयार की जाती है ये 13 हैं - कपाल, उपवेश, मदन्ती पात्र, संवपनपात्री, मेक्षण, दर्वी, चरुस्थाली, पुरोडाश पात्र, महावीर पिण्डलेपपात्र, शराब, अन्वाहार्यस्थाली, उपयाम, अथवा उपयमनी, परिग्राह ।

7- उपयोजन पात्र -

आवश्यकता के अनुसार जिन्हें विविध यज्ञविधियों में काम में लिया जाता है । उन्हें उपयोजन पात्र कहते हैं । ये हैं -वेद, पवित्र, विधृति, प्रस्तर, आसन्दी आदि ।

8- प्रातिस्विक-उपकरण-

अनिवार्य रूप से यज्ञ में जिन द्रव्यों का प्रयोग होता है । उन्हें प्रातिस्विक कहते हैं । ये 6 हैं, समिधा, प्रोक्षणीपात्र, इध्म, परिधि, बर्हि, पुष्करपर्ण और सम्भार (उषा सिकता, वल्मीकवपा आदि मिट्टियों को सम्भार) कहा जाता है ।

9- चमस और ग्रह पात्र -

सोमयाग में 10 चमस 19 ग्रहपात्र और सवनीय तथा द्रोण कलश । दशपेय याग में 100 चमसों का विधान है ।

10- दीक्षा उपकरण -

यजमान और उसकी पत्नी की दीक्षा में काम आने वाली 8 वस्तुएं हैं मेखला, दण्ड, योक्त्र, कृष्णविषाणा, क्षौमवस्त्र, त्रैककुम, अंजन, नवनीत और दर्भ ।

11- भक्षण पात्र-

भक्षण पात्र में ऋत्विज् और यजमान अपना-अपना हविर्भाग खाते हैं । इनमें ब्रह्मा, यजमान, और उसकी पत्नी के लिए प्रशित्रहरण, यजमानपात्र और पत्नीपात्र होते हैं । शेषपात्र, व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर "इडा" नामक विशिष्ट हविर्भाग से सम्बन्धित होते हैं। इन्हें इडापात्र कहा जाता है ।

12- आसन -

ऋत्विज् और यजमान जिन पर बैठकर यज्ञ सम्पन्न करते हैं, उन्हें ही आसन कहा जाता है ।

यज्ञों के प्रकार

अग्नि मुख्यतया दो प्रकार की मानी गयी है । स्मार्ताग्नि तथा श्रौत्राग्नि । इनमें से प्रथम अग्नि का स्थापन प्रत्येक विवाहित व्यक्ति को करना चाहिये और इस गृह्याग्नि में पाक यज्ञ सम्पन्न किया जाता है, और दूसरी अग्नि से हवि और सोम संस्था के यज्ञ सम्पन्न किये जाते हैं । इन यज्ञों को 25 वर्ष से ऊपर एवं चालीस वर्ष से पूर्व वाले व्यक्ति पत्नी सहित कर सकते हैं ।

गोपथ[1] ब्राह्मण में उपलब्ध संकेतानुसार यज्ञ त्रिवृत सात तन्तुओं वाला और इक्कीस संस्था वाला है । सात सोम यज्ञ, सात पाक यज्ञ, सात हविर्यज्ञ हैं । ये कुल मिलाकर इक्कीस संस्था के यज्ञ हैं[2] । इस संस्था के अनुसार यज्ञ को दो भागों में बाँट सकते हैं ।

1- श्रौत्राग्नि संस्था -

(क) हविर्यज्ञ- 1- अग्न्याधान 2- अग्निहोत्र 3-दर्शपूर्णमास 4- चातुर्मास्य 5- आग्रयणेष्टि 6- निरूढ़पशुबन्ध 7- सौत्रामणि ।

(ख) सोमयज्ञ - 1- अग्निष्टोम 2-अत्यग्निष्टोम 3- उक्थ्य 4- षोडशी 5- अतिरात्र 6- आप्तोर्याम 7- वाजपेय ।

1- गोपथ 1/1/12

2- गोपथ 1/5/27

2- गृह्याग्नि संस्था -

पाकयज्ञ - 1- साम होम 2- प्रातर्होम 3- नौ प्रकार के स्थालीपाक 4- बलि 5- पितृयज्ञ 6- अष्टका 7- पशु ।

ये ही मुख्य संस्था के यज्ञ हैं । इनके अतिरिक्त जो अन्य छोटे एवं बड़े यज्ञों का उल्लेख मिलता है, वे इन्हीं के अंग हैं । गोपथ ब्राह्मण में यज्ञ का क्रम बतलाया गया है - 1- अग्न्याधेय 2-पूर्णाहुति 3- अग्निहोत्र 4- दर्शपूर्णमास 5- आग्रयण 6- चातुर्मास्य 7- पशुबन्ध 8- अग्निष्टोम 9-राजसूय 10- वाजपेय 11- अश्वमेध 12- पुरुषमेध 13- सर्वमेध ।

श्रौताग्नि संस्था

श्रौताग्नि में किये जाने वाले यज्ञों के दो प्रकार-हवि और सोम गोपथ ब्राह्मण और सूत्र साहित्य में कहे गये हैं ।

प्राय: सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य में श्रौताग्नि संस्था से सम्बन्धित हवि और सोमयज्ञों का विस्तृत कर्मकाण्डीय विवरण दिया गया है । केवल छान्दोग्य और सामविधान ब्राह्मण में स्मार्ताग्नि से सम्बन्धित यज्ञों का विवरण मिलता है ।

श्रौताग्नि संस्था से सम्बन्धित हवि और सोम यज्ञों में बहुत सी बातों मे समानता होती है । दोनों ही प्रकारों में तीनों अग्नियों का प्रयोग होता है । दोनों में एक से लेकर सोलह तक पुरोहित प्रयुक्त होते हैं ।

दोनों ही प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान । किसी एक देवता विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । अनेक देवताओं के लिए एक ही यज्ञ में अनेक कृत्य किये जाते हैं । प्रकृति और विकृति के रूप मे यज्ञों के दो प्रकार बतलायें जा चुके हैं । प्रकृति यज्ञों का आधार है, और विकृतियाँ उन पर आधारित हैं ।

सोमयज्ञों में सामगायन ऐसी व्यवस्था है, जिसका अत्यन्त महत्त्व है । साम एक गीति है जो ऋग्वेद के किसी भी मन्त्र पर लगायी जा सकती है, और ये मन्त्र विभिन्न गीतियों में गाये जा सकते हैं । जिसके लिए उनमें वर्णों अथवा दुर्लभ्य वर्ण समुदायों तक को जोड़ दिया जाता था, जिसका स्वयं कोई अर्थ नहीं होता । इनमें पन्द्रह तक वर्ण गिनाये गये हैं । ये संख्या में अनेक हैं । इनमें रथन्तर और बृहद् साम का विशेष महत्त्व है । पंचविंश तथा जैमिनीय ब्राह्मण में ।। ।। नामों तथा उनके उद्गायक ऋत्विजों के बारे में बतलाया गया है । आर्षेय ब्राह्मण में भी सामों से सम्बन्धित ऋषियों का उल्लेख आया है । साम गायन के वैज्ञानिक अनुशीलन के निमित्त यह ब्राह्मण भी अत्यन्त उपयोगी है । दैवत ब्राह्मण के नाम का निर्देश किया गया है । जिसकी प्रशंसा में इन्हें गाया जाता है ।

लय और छन्दों का भी सामगान में महत्त्वपूर्ण योग होता है । एक ही लय में अनेक मन्त्रों का गाया जाना स्तोत्र कहलाता है । इस प्रकार के स्तोमों के त्रिवृत, पंचदश, सप्तदश, एकविंश, चतुर्विंश आदि स्तोम मिलते हैं, यह सभी त्रिक् होते हैं । इसमें दो मन्त्रों को तीन मन्त्र बनाकर पढा जाता है । तीनों

सवनों में दी जाने वाली आहुतियों का समान रूप से दोनों प्रकार के यज्ञों में महत्त्व है । इसके अतिरिक्त सपत्नीक व्यक्ति ही इन यज्ञों के अनुष्ठान का अधिकारी होता है ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में सोमयागों का ही वर्णन किया गया है। ताण्ड्य महाब्राह्मण शोध प्रबन्ध का विषय है । इसलिए इसमें वर्णित सोमयागों का ही अध्ययन यहाँ किया जायेगा ।

सोम संस्था के यज्ञ

ताण्ड्यमहाब्राह्मण तथा सूत्र साहित्य में सोम संस्था से सम्बन्धित सात यज्ञ कहे गये हैं ।- अग्निष्टोम 2-अत्यग्निष्टोम 3-उक्थ्य 4-षोडशी 5- वाजपेय 6- अतिरात्र 7- आप्तोर्याम । इन यज्ञों में मुख्य रूप से सोम से ही आहुति दी जाती थी । सोमाहुति के दिवों की संख्या के अनुसार इन यज्ञों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है । एकाह, अहीन और सत्र । बारह सुत्या दिवसों वाला द्वादशाह याग सत्र और अहीन दोनों प्रकृति वाला होता है ।

§क§ एकाह

जिन सोम यागों में केवल एक दिन तीनों सवनों में सोम को समर्पित किया जाता है । उन्हें "एकाह" कहा जाता है । इन यज्ञों में तैयारी

के दिवस 6 दिन भी लग जाते हैं, चूँकि इनमें सोमाहुति केवल एक ही दिन दी जाती है। इसलिए इन्हें एकाह में वर्गीकृत किया गया है।

§1§ अग्निष्टोम

अग्निष्टोम[1] सोम संस्था के यज्ञों में प्रमुख तथा समस्त यज्ञों की मूल प्रकृति है। यह एकाह है। इसमें अन्तिम स्तोम अग्निष्टोम प्रयुक्त है। इसीलिए इसे अग्निष्टोम कहा जाता है। इसके अनुष्ठान काल अनिश्चित हैं। समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाले इस यज्ञ में जब ज्योति: स्वरूप वाला विराज छन्द प्रयुक्त होता है, तब इसे ही ज्योतिष्टोम कहते हैं। त्रिवृत, पंचदश, सप्तदश और एकादश स्तोम के इसमें प्रयुक्त होने से इस अग्निष्टोम को ही चतुष्टोम कहते हैं। इस यज्ञ में पशु याग का भी प्रमुख स्थान होता है।

मुख्य अग्निष्टोम यज्ञ के प्रारम्भ होने के एक दिन पूर्व ही ऋत्विज्, वरण, शाला निर्माण, दीक्षाकर्म, पत्नी संयाज, कृत्य तथा दीक्षणीयेष्टि से सम्बन्धित औद्ग्रमण"होम किया जाता है। दूसरे दिन प्रायणीयेष्टि सोमक्रयण,

---

1- द्रष्टव्य - शतपथ ब्राह्मण 3/1/1 से 4/4/5 तक जैमिनीय 1-66=364 पंचविंश ब्राह्मण 6 से 9वें अध्याय तक। ऐतरेय 1-1-3-40 कौषीतकि 7-1 से 16/9 तक।

आतिथ्येष्टि और तानूनप्त्र कृत्यों को करने के उपरान्त यजमान अवान्तर दीक्षा ग्रहण करता है । तदुपरान्त प्रवर्ग्येष्टि और उपसदेष्टि के कृत्य किये जाते हैं । दूसरे, तीसरे और चौथे दिन भी इसकृत्य को करते हैं । तीसरे दिन सौमिक महावेदी निर्माण के कृत्य किये जाते हैं - चौथे दिन के मुख्य कृत्य हैं - सोम को हविर्धान मण्डप में लाना और "वसतीवरी" जल को वेदी के पास लाकर रखना । इसी दिन अग्नि और सोम के लिये पशुयाग किया जाता है । यह प्राय: निरूढ पशुबन्धयेष्टि के ही समान होता है ।

पाँचवाँ दिन "सुत्या" दिवस कहलाता है । इसीदिन सोम को पीसकर रस निकालते हैं । यही प्रमुख दिवस होता है । प्रहर रात्रि रहे यजमान और ऋत्विज् उठकर अग्नि पर समिधा रखकर देवताओं के लिए प्रातरनुवाक् पढ़ते हैं । इसी समय इन्द्रहरिवन्तादि के लिये पुरोडाशा हुतियाँ दी जाती है ।

तदनन्तरदाधि धर्मीरूप याग, उपांशु सवन, महाभिषव, सम्बन्धी कृत्य किये जाते हैं । इसी सोम से अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, शुक्रामन्थिन्, आग्रयण, उक्थ्य त्रतु, और ऐन्द्राग्न के लिए ग्रह भरे जाते हैं । इनसे इनके अधिकारी देवों को आहुति देकर पुन: भरकर रख देते हैं । एक वहिष्पवमान तथा चार आज्यस्तोत्र पढ़े जाते हैं । इन्द्राग्नि के लिये ग्यारह पशुओं का आलभन दिया जाता है ।

"माध्यान्दिन सवन" के कृत्य भी प्रात: सवन की ही भाँति होते हैं । दिन के इस सवन में शुक्रामन्थिन्, आग्रायण, दो मरुत्वतीय और उक्थ्य ग्रहों से आहुतियाँ दी जाती है । माध्यान्दिन पवयमान स्तोत्र तथा चार पृष्ठस्तोत्र तथा मरुत्वतीय,

निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसिन, तथा अच्छावाक् शस्त्रों का पाठ किया जाता है । पशु पुरोडाश हुतियाँ दी जाती हैं । यजमान स्वर्ण, वस्त्र, गौ, और अश्व इस चतुर्थी रूपा दक्षिणा को देता है । तदनन्तर महत्वतीयादि तीन चषकों, माहेन्द्र, और अति ग्राह्यों से आहुतियाँ दी जाती हैं ।

सायं सवन के कृत्य आदित्य ग्रह निवेदन से प्रारम्भ होता है । शेष ग्रह निवेदन सामान्य अन्तरों सहित प्रातः सवन के समान होता है । इस सवन में आर्भव पवमान और अग्निष्टोम स्तोत्र तथा वैश्व देव और अग्नि मारुत शस्त्र का पाठ किया जाता है ।

तदनन्तर हारियोजन चषक से आहुति देकर अवभृथेष्टि करते थे । इसमें वरुण के लिये आहुति मैत्रावरुण के लिए अनुबन्ध्या गो का आलभन किया जाता है । तत्पश्चात् उदवसानीयेष्टि की जाती थी, और दक्षिणा देने के साथ सम्पूर्ण अग्निष्टोम कृत्य समाप्त हो जाता था । इसमें कुल 12 स्तोत्र और 12 शस्त्र तथा चार स्तोम त्रिवृत, पंचदश, सप्तदश, एकादश प्रयुक्त होते थे ।

ज्योतिष्टोम के अन्य स्वरूप

गोपथ ब्राह्मण में सोम संस्था के यज्ञों के सात यज्ञ बतलायें गये हैं- अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशि, वाजपेय, अतिरात्र, और आप्तोर्याम । अग्निष्टोम ही इन सब यज्ञ की मुख्य प्रकृति है । सामान्य स्तोत्र और शस्त्रों के घटाव और बढ़ाव के द्वारा एक नवीन सोम यज्ञ की उत्पत्ति हो जाती है । ये सभी एकाह थे ।

§2§ उक्थ्य[1] -

स्वरूपत: यह अग्निष्टोम यज्ञ के समान होता है । सायं सवन में तीन उक्थ्य स्तोत्र तथा तीन मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसि और अच्छावाक् शस्त्रों का अधिक पाठ किया जाता है । इन्द्राग्नि के लिए एक अज की बलि दी जाती है ।

3- षोडशी[2] -

यह भी ज्योतिष्टोम स्वरूपवाला सोमयाग है । इसमें उक्थ्य के यज्ञ के समान ही तीनों सवन के स्तोत्र और शस्त्र होते हैं सायं सवन में एक सोलहवाँ षोडशी स्तोत्र व शस्त्र का अधिक पाठ किया जाता है । एक अवि के लिए बलि देते हैं ।

4- अत्यग्निष्टोम -

षोडशी के साथ इसका निकट का सम्बन्ध होता है । यह एक प्रकार का अग्निष्टोम है । अग्निष्टोम के बाद जो उक्थ्य स्तोत्र और शस्त्रों का तथा षोडशी में षोडशी स्तोत्र और शस्त्र का पाठ किया जाता है, इसी का नाम अत्यग्निष्टोम है ।

5- अतिरात्र[3] -

इसमें षोडशि संस्था के ही समान स्तोत्र और शस्त्र होते हैं ।

1- द्रष्टव्य ऐतरेय ब्राह्मण 3/49, कौषीतकि 16/11

2- " ऐतरेय 4/1-6, कौषीतकि 17/1-4 शतपथ 4/5/3 और आगे

3- " पंचविंश ब्राह्मण 20/1-9 त्रिवृद्बहिष्पवमानं ------------ अतिरात्रेण -----------प्राणमभ्युदेति ।

केवल रात्रि के तीन पर्याय पढ़ जाते हैं। प्रत्येक पर्याय में चार रात्रि स्तोत्र और चार शस्त्र अधिक होते है। ये स्तोत्र और शस्त्राणि इन्द्र से सम्बन्धित होते हैं। दूसरे दिन प्रातः अश्विनी कुमारों के लिए दो अयूप बनाये जाते हैं। तथा एक सन्धि स्तोत्र एवं एक अश्विन शस्त्र भी पढ़ा जाता है। इसमें कुल 29 स्तोत्र व इतने ही शस्त्र पढ़े जाते हैं। इसमें सरस्वती के लिए एक अजा का आलभन किया जाता है।

6- आप्तोर्याम[1] -

यह अतिरात्र से मिलता जुलता है। आप्तोर्याम में तीनों सवन त्रिरात्रि पर्यायों और सन्धि स्तोत्र के बाद चार आप्तोर्याम् स्तोत्र व चार आप्तोर्याम् शस्त्र अधिक पढ़े जाते हैं। अग्नि इन्द्र, विश्वेदेव और विष्णु के लिये चार ग्रह अधिक अर्पित किये जाते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल तक चलने के कारण इसे अहीन याग मानते हैं। इस प्रकार इसमें 33 स्तोत्र एव 33 शस्त्र पढ़े जाते हैं। इसमें एक सहस्त्र से अधिक गौ दक्षिणा में दी जाती है, व होता को एक अश्वतरी रथ दिया जाता है।

7- वाजपेय[2] -

इसे अग्निष्टोम का ही एक प्रकार कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें षोडशि पर्यन्त कृत्य किये जाते हैं। परन्तु कुछ विशिष्ट कृत्यों के अनुष्ठान के कारण यह एक स्वतन्त्र याग भी कहलाता है। षोडशी स्तोत्र व शस्त्र के उपरान्त

1- विकृद् हिऽपवमानं ----------------आप्तोर्यामत्वम् । ताण्ड्य 20/3

2- सप्तदश उक्थ्य --------वाजपेय ------------------------------
---अतिक्रामति । ताण्ड्य महाब्राह्मण 18/6-7

एक सत्रहवाँ वाजपेय नामक स्तोत्र व एक शस्त्र का भी "होता" पाठ करता है । सम्राट पद की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले इस यज्ञ में देवान्न रूप सोम का विशेष रूप से पान किया जाता है । इसे शरद् ऋतु में सम्पन्न किया जाता है । इसमें एक सुत्या दिवस, प्रायः दीक्षा दिवस और तीन उपसद दिवस होते हैं । इसके सभी स्तोत्र सप्तदश स्तोत्र वाले होते हैं इस प्रकार सत्रह दिन लेने के साथ साथ यह एक वर्ष तक ले सकता था । एक सुत्यादिवस होने के कारण इसकी गणना एकाह में ही की जाती है । इसमें सत्रह का बड़ा महत्त्व होता है । 17 उपांशु आदि ग्रह 17 सवनीय पशु 17 सोम व 17 सुरा ग्रह तथा 17 अरत्निलम्बा यूपप्रयुक्त होता है ।

इस यज्ञ के मुख्य कृत्य माध्यन्दिन सवन से प्रारम्भ होते हैं । एक वीर सत्रह बाणों को छोड़ता है, और अन्तिम बाण जिस स्थान पर गिरता है । वहाँ एक शंकु गाड़ देते है । यह आजि प्रदेश कहलाता है । यजमान के रथ मे तीन अश्व जोड़े जाते हैं । तथा अन्य रथों में चार-चार के क्रम से सोलह अश्व जोते जाते हैं । इन्हें पहले 172 शरावों में रखे नैवार चरू को सुँघवाते हैं । रथ के चक्र पर खड़े ब्रह्मा द्वारा वाजि नामक सामगान के साथ सत्रह दुन्दुभियाँ एक साथ बजायी जाती है, और आजि प्रारम्भ होती है । इस कृत्रिम आजि में यजमान को विजयी बनाया जाता है । फिर चमसाध्वर्यु सोमपात्र से आहुतियाँ देते हैं और वाजिसृप् लोग वेदि के दक्षिण भाग में जाकर सोम पीते हैं । तत्पश्चात् यजमान व उसकी पत्नी "स्वर्गा रोहण" कृत्य को करते हैं । फिर सप्तदश नैवार

चरु के शरावों से प्रजापति के लिए एवं सप्तदश हविष्य अन्नों के बने अग्नि स्विष्टकृत के लिये आहुतियाँ दी जाती हैं । सत्रह वाजप्रसवायाहुतियों के उपरान्त शेष अन्न रस से यजमान का अभिषेक किया जाता है । यजमान वशाप्रचार और उज्जितिहोमादि के कृत्य करता है । और मंगल कामना सहित यज्ञ के कृत्य समाप्त होते हैं ।

अन्य एकाह याग[1]

अग्निष्टोम सब सोम यज्ञों की प्रकृति है । इसी से कामना विशेष की पूर्ति के लिए यज्ञ की असंख्य विकृतियाँ बन जाती है । इन एकाह यागों में एक सुत्यादिवस एक या अनेक दीक्षा दिवस तथा बारह उपसद दिवस होते हैं । इस प्रकार के यज्ञों का पंचविंश व जैमिनीय ब्राह्मण में विशेष रूप से उल्लेख हुआ है । ये अग्निष्टोम संस्था सोमयाग होते हैं । स्तोम क्रम के भेद से ये यज्ञ नाना रूप फल देने वाले हो जाते हैं ।

ज्योति गौ आयु स्तोम स्वतन्त्र रूप से एकाह है । परन्तु ये षड्ह और सत्र में भी प्रयुक्त होते हैं । सजातियों में श्रेष्ठता पाने के लिये "अभिजित्" और समस्त विश्व पर अधिकार पाने के लिए विश्वजित् का अनुष्ठान किया जाता है । विश्वजित् यज्ञ में यजमान अपना सर्वस्व दान देता है या सहस्त्र

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण 16 से 19 वे अध्याय तक

दक्षिणा देता है । इस यज्ञ में मुख्य कृत्य करने और बलि देने के उपरान्त यजमान तीन रात वन में उदुम्बर वृक्ष के नीचे, तीन रात्रि निषादों तथा अन्य तीन रात्रियों में स्वजातियों के मध्य रहता है । भिक्षावृत्ति से प्राप्त भोजन और मृत्तिका पात्र मे जलग्रहण का निषेध है ।

सब कुछ जीतने के बाद "महाव्रत"[1] एकाह करते हैं इसका सत्र में भी अनुष्ठान किया जाता है ।

"अग्निष्टोम संस्था वाले चार प्रकार के "साहस्त्रा"[2] एकाहों का उल्लेख मिलता है । इनके नाम हैं ज्योति सर्वज्योति, विश्व ज्योति और अग्निष्टोम संस्था श्रेष्ठता पाने के लिए इन्हें करते हैं ।

अग्निष्टोम संस्था वाले छः साद्यस्का[3] नामक एकाहों का उल्लेख आया है । प्रथम दो का कोई नाम नहीं मिलता है । शेष चार के नाम इस प्रकार है ।

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण ।6/7 सर्वस्य महाव्रतं पृष्ठम्------तुष्टुवान: ।

2- अथैष ज्योति: ----------------------------प्रतितिष्ठति।

अथैष सर्वज्योति:----------------------------प्रतितिष्ठति ।

अथैष विश्वज्योति----------------------------तत्पशून्दधाति।"

ताण्ड्यमहाब्राह्मण ।6/8-1।

3- अथैषोऽङ्गिरसामनुक्री: ------------------------यज्ञस्यप्रतितिष्ठति

अथैष विश्वजिच्छिल्प: -------

अनुक्री, विश्वजिच्छिल्प, श्येन और एकत्रिक । प्रथम साद्यस्का एकाह के कृत्य शेष के लिये प्रकृति का काम करता है । इन एकाहों का अनुष्ठान क्षेत्र में होता है । खानिदान इसकी वेदी है । मेथी (एल की लकड़ी) इसका यूप है । हाथियों में दूध रखकर पिलाने से जो आनन्द उत्पन्न होता उसी से आहुति देते हैं । इसी अनुष्ठान के फलस्वरूप रोग दूर होते हैं । बलऔर शक्ति की प्राप्ति होती है और जादू होने टोटके के प्रभाव नष्ट होते हैं ।

चार प्रकार के व्रात्य[1] स्तोमों का उल्लेख आया है - ये प्रत्यक्षत: ब्राह्मण समाज में उन व्यक्तियों के प्रवेश के लिये हैं, जो आर्य होते हुए भी अद्विजों के मध्य निवास करते हुए कई कारणों से अपना द्विजत्व रूप खो देते हैं । यह एक गण याग है व्रात्य स्तोम में द्वितीय वाला उक्थ्य संस्था का और शेष अग्निष्टोम संस्था के होते हैं ।

अग्निष्टुत[2] नामक चार प्रकार के एकाहों का उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में हुआ है । अश्लील वाणी बोलने वाले व्यक्ति इस एकाह को प्रायश्चित स्वरूप करते हैं । यह स्वरूपत: ज्योतिष्टोम है ।

1- देवा वै स्वर्गं ---------------------------------निर्मुच्यन्ते ।
अथैष षट षोडशी स्तोमा-व्रात्या -----------------यजेरन ।
अथैष कनिष्ठा सन्तो व्रात्या ------------------यजेरन ।
अथैष शमनीचा ---------व्रात्या ---------------यजेरन ।
ताण्ड्यमहाब्राह्मण 17/1-4

2- योऽपूतं इव स्यादग्निष्टुता -----------आप्नोति ।
ताण्ड्यमहाब्राह्मण 17/5/9

नाना कामनाओं की पूर्ति के लिए अनेकों एकाह क्रतुओं के अनुष्ठान का उल्लेख मिलता है-जैसे ग्राम कामी" प्रजापतेर पूर्व" पौरोहित्य एवं मुख्तव कामी" वृहस्पति सव स्वर्ग प्राप्ति एवं आरोग्य की इच्छा वाला "सर्वस्वार" या शुन कर्णस्तोम" ग्राम या पशुकामी तथा शत्रु के विनाश का इच्छुक अपहव्य" स्वर्गकामी "क्रतुपेय" अनडुह लोमकों की प्राप्ति की इच्छा वाला "दूणाशा" विश्व का प्रिय बनने तथा पुष्टि की कामना के लिये वैश्य लोग" वैश्य सव" ग्राम एवं पशुकामी दीर्घ रोगी तीव्र सुत नामक एकाह क्रतु के विशेषों का अनुष्ठान करते हैं । ये सभी एकाह अग्निष्टोम संस्था से सम्बन्धित हैं । इनमें से सर्वस्वार एकाह क्रतु में यजमान श्वास खींचकर लेट जाता है और उसके नाक के समीप स्तोमादि का पाठ किया जाता है । "क्रतुपेय" में दीक्षित केवल घी पीकर रहता है । इसमें यजमान अपने सगोत्रीय को औदुम्बर काष्ठ का बना सोम पात्र प्रदान करता है । "तीव्रसुत" में गो गायों का दूध दुहकर आहुति देते हैं और अन्त में इन्हें दक्षिणा में दे दिया जाता था ।

1- प्रजापति ----------------------------एवं वेद ।

स एष वृहस्पति सवो --------------------आत्मन धत्ते ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण 17/10-17 18/1-5

राजसूय[1] -

राज्याभिषेक से सम्बन्धित यह एक दीर्घकालिक यज्ञ है । एक सुत्या दिवस वाला होने से इसकी गणना एकाह में की जाती है । इसे वाजपेय यज्ञ के बाद किया जाता है । इसमें यजमान का क्षत्रिय होना आवश्यक होता है । यजमान फाल्गुन प्रतिपदा को दीक्षा लेता है । इसमें अभिजात वर्गीय राज कर्मचारी भी सम्मिलित होते हैं । दीक्षा के उपरान्त अनुमति के लिए पुरोडाश की आहुतियाँ दी जाती हैं, फिर आग्रयणेष्टि करके महीने के 15वें दिन से एक साल तक चातुर्मास्य यज्ञ की आहुतियों का अनुष्ठान आरम्भ होता है । अमावस्या और पूर्णिमा के दिनों के बीच की आहुतियाँ या तो दर्श और पौर्णमास आहुतियों से या सूर्य और चन्द्रमा को दी जाने वाली आहुतियों से पूरी की जाती है अन्त में शुनासीरीय पर्व के कृत्य करने के उपरान्त दिन में इन्द्र तुरीय कृत्य और रात्रि में पंचावत्तीयायी या पंचवातीय आहुतियाँ तथा अपामार्ग होम द्वारा यजन करते हैं फिर त्रिषयुक्तादि याग, एकादश रत्नियों के गृह पर हवियाँ देने उपरियाग और दीक्षणीययाग से सम्बन्धित कृत्य किये जाते हैं । यजमान के राजा होने की घोषणा करके नाना प्रकार के संगृहीत जलों से उसको स्नान कराकर उसका विधिवत् राज्याभिषेक संस्कार किया जाता है ।

1- अग्निष्टोमं प्रथमाहरति -------------यद्वै राजसूयेन ---प्रतिष्ठायै

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 18/8-10

अभिषेक की समाप्ति पर रथारोहण, संसृपा हवियों से सम्बन्धित दशपेय के कृत्य किये जाते हैं । इस प्रकार मुख्य कृत्य समाप्त हो जाते हैं । फिर चरुहोम, द्वादश, प्रजा आहुतियाँ, केशवपनीय, सौत्रामणी (चरक) के कृत्य किये जाते हैं ।

सौत्रामणि का उपनिषदों में उल्लेख हुआ है । परन्तु चरक सौत्रामणि का राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत अनुष्ठान किया जाता है । इसमें अश्विन कुमारों के लिए एक श्वेत अज, सरस्वती के लिए अवि तथा इन्द्र सौत्रामणि के लिये ऋषभ का आलभन करते हैं । अध्वर्यु परिस्रुत ग्रहों से आहुति देकर पी जाता है । अवशिष्ट परिस्रुत को छिद्रों वाले पात्र में भरकर शिक्य में रखकर टाँग देते हैं । सवितृ वरुण और इन्द्र के लिए पुरोडाशाहुतियाँ दी जाती है । दक्षिणा में नपुंसक ऋषभ या "अश्वतरी" देते हैं ।

अन्त में उदयसानीयेष्टि के साथ राजसूय यज्ञ के कृत्य समाप्त किये जाते हैं । इसमें एक सुत्या दिवस है । इसीलिएएकाह कहलाता है । परन्तु अन्य अनेक इष्टियों के मिल जाने केकारण यह दो वर्षों तक चलने वाला एक ही दीर्घकालिक यज्ञ है ।

द्वन्द्व सोमयाग -

ताण्ड्य महाब्राह्मण में द्वन्द्व सोम याग नाम से अभिहित अनेक

---

x।- अथैष राट् विराट् औपराट् पुनस्तोम चतुष्टोम उद्भिदबलभिद्-------
-------प्रतितिष्ठति

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 19/1-13

यज्ञों का उल्लेख मिलता है। इनमें एक को करके दूसरे को करना अत्यन्त आवश्यक होता है। "राट विराट" नामक द्वन्द्व सोमयाग राजसूय के ही समान राजनैतिक समस्याओं से सम्बन्धित है"राट" को राज्यकामी यजमान करता है। इसको करने से राज्य से वंचित राजभ्राता, राजपुत्र, पुरोहितादि अष्टवीरों को राज्योपलब्धि होती है। तथा "विराट" का अन्नकामी अनुष्ठान करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक द्वन्द्व हैं-जैसे औपशद पुनस्तोम, दो चतुष्टोम, उद्भिद्वलभिद्, दो अपचितो, दो अग्निस्तोम ऋषभ और गोसव। इन द्वन्द्वों में से "औपशद का प्रजाकामी" पुनस्तोम, का अयोग्य होने पर भी प्रभूत दक्षिणा पाने वाला पुरोहित चतुष्टोम का पशुकामी यजमान अनुष्ठान करते हैं -उद्भिद् वलभिद् नामक दो क्रतुओं को पशुकामी यजमान करता है। "अपचिति" नामक क्रतु के दो प्रकारों को पूजा का इच्छुक व्यक्ति करता है। इसी प्रकार मनुष्यों का अधिपति बनने के लिये" ऋषभ तथा स्वराज्य की प्राप्ति के लिये गोसव नामक द्वन्द्व सोम एकाह क्रतु को यजमान करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक एकाहों का उल्लेख मिलता है जैसे मरुतस्तोम, इन्द्रस्तोम, इन्द्राग्नि स्तोम इत्यादि।

1- अथैष मरुतस्तोम ------------------55------- एवं वेद।

2- अथैष पन्चदश इन्द्रस्तोम ------------------------दधाति।

अथैष इन्द्राग्न्यो -----------------------------प्रतितिष्ठति।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 19/14-19

अहीन याग

एक से अधिक रात्रियों तक चलने वाले यज्ञों को "अहीन" कहते हैं । अहीन यज्ञ के कई रूप होते हैं । जिनमें एक दिन से अधिक और बारह दिन तक सवन दिवस होते हैं । दीक्षा और 12 उपसद दिन आदि को लेकर ये एक महीने से ऊपर नहीं पहुँच पाते हैं । अहीन यज्ञों की संख्या बहुत बड़ी है । अधिकांश यज्ञ अपने सर्वप्रथम अनुष्ठान कर्ता के नाम से अभिहित हुए हैं । ये सभी यज्ञ पूर्व वर्णित अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अति रात्र और अप्तोर्याम् संस्थाओं से ही सम्बन्धित हैं । इनके स्तोमों के नाम और स्वरूप पूर्ववत् हैं । परन्तु इन स्तोमों के क्रम के उलटफेर से ये यज्ञ विभिन्न स्वरूप वाले हो जाते हैं, फलत: विभिन्न फलों को भी देते हैं । इनमें जैसे-जैसे सुत्यादिवस बढ़ते हैं वैसे-वैसे दीक्षा दिवस घटते जाते हैं । जैसे एकरात्रिक में सोलह दीक्षा, बारह उपसद और एक सुत्या-दिवस होता है । उपसद् दिवस नहीं घटाये जाते हैं । पंचविंश तथा जैमिनीय ब्राह्मण में इस प्रकार के यज्ञों का विशेष रूप से उल्लेख आया है ।

एकरात्रिक[1] -

ये क्रतु एकरात्रिक होने पर भी दूसरे दिन प्रात:काल तक चलते हैं, इसीलिए इनकी गणना एकाहों में न करके अहीन के अन्तर्गत किया जाता है ।

1- त्रिवृद्बहिष्पवमानं ------------ज्योतिष्टोम:, सर्वस्तोम, तदप्तोर्याम्नो-ऽप्तोर्यामत्वम्, नवसप्तदशो नाऽतिरात्रेण विषुवताऽतिरात्रेण गोष्टोमेना-ऽतिरात्रेण, आयुष्टोमेनाऽतिरात्रेण, अभिजिताऽतिरात्रेण, विश्वजिताऽतिरात्रेण
त्र ताण्ड्यमहाब्राह्मण 20/1-10

इनके नाम इस प्रकार हैं §1§ ज्योतिष्टोम §2§ सर्वस्तोम §3§ अप्तोर्याम §4§ नवसप्तदश अतिरात्र §5§ विषुवत् §6§ गोष्टोम §7§ आयुष्टोम §8§ अभिजित् §9§ विश्वजित् §10§ चार एक स्तोम वाले त्रिवृतादि अतिरात्र। ये सभी क्रतु शत्रुदमन, राज्यापहरण, पशु प्राप्ति की कामना इत्यादि कामनाओं को प्रदान करने वाले हैं ।

द्विरात्रिक[2] -

ये यज्ञ दो दिन और दो रात्रियों तक चलने वाले होते हैं । इस प्रसंग में तीन क्रतुओं अंगिरस, चैत्ररथ कापिवन का उल्लेख आया है । इनका अनुष्ठान करने से नष्ट सम्मान, पशुप्रजा और समृद्धि की प्राप्ति होती है ।

त्रिरात्रिक[3] -

ये यज्ञ तीन रात्रियों तक चलते हैं इस प्रकार के 60 यज्ञों का उल्लेख मिलता है- §1§ गर्ग §2§ अश्व §या अश्वमेध§ §3§ वेद §4§ छन्दोमापवमान §5§ अन्तर्वसु §6§ पराक । इनमें से वेद त्रिरात्र" का राज्यकामी छन्दोभापवमान तथा "अन्तर्वसु" त्रिरात्र का पशुकामी तथा पराक" त्रिरात्र का स्वर्गकामी अनुष्ठान करते हैं ।

1- ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः पूर्वमहः सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तरम्---अंगिरसं स्वर्गं---चैत्ररथं -------कापिवन ----------------------यजते ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 20/11-13

2- त्रिवृत्प्रातस्सवनं ----------------गर्गत्रिरात्र अश्वत्रिरात्र--------वेदत्रिरात्र-छन्दोमपवमानं, अन्तर्वसु पराकं-------प्रतितिष्ठति ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 20/14 से 21/8 तक

""गर्ग" त्रिरात्र एक महान अहीन यज्ञ है । यह यजमान को तीनों लोकों में प्रतिष्ठित करता है । इसमें एक सहस्त्र गौओं को तीन दिन में विभक्त करके दक्षिणा में देते हैं । इसमें तीन सुत्या दिवसों के कृत्यों के उपरान्त अर्थात् यज्ञारम्भ करने के दिवस के तेरहवें दिन दोपहर में शावर्ली[1] होम किया जाता है । रात्रि में अत्यन्त तड़के वन में जाकर यजमान "शबर्ली -शबर्ली-ऐसा कहकर पुकारता है । यदि कुत्ते और गदहे के अतिरिक्त कोई अन्य पशु इसका उत्तर देता है । तो शुभ लक्षण माना जाता है ।

"अश्व त्रिरात्र" अश्वमेध[2] के नाम से भी प्रसिद्ध है । यह एक वर्ष से अधिक चलने वाला यज्ञ है, परन्तु इसमें केवल तीन सुत्या दिवस होने के कारण इसकी "त्रिरात्रे" क्रतुओं में गणना की जाती है । चित्रा नक्षत्र में चन्द्र रहने पर या वसंत के पश्चात् या फाल्गुन पूर्णिमा के पाँच सात दिन पूर्व ही से अश्वमेध यज्ञ के आरम्भिक कृत्य प्रारम्भ कर दिये जाते हैं ।

प्रथमदिन ऋत्विज् वरण, ब्रह्मौदन पाक सम्बन्धी कृत्य होता है । पत्नियों सहित वेश भूषा में यजमान यज्ञशाला में प्रवेश कर पूर्णाहुति होम करता है। गृहपत्य सदन में समीप अश्व को बाँधने के कृत्य किये जाते हैं । सूतग्रामणी

1- वाग्वे शबर्ली होम --------------------------स्वाहा ।

ता०महाब्राह्मण 21/3

2- प्रजापतेर्वा -------------अश्वत्रिरात्र ---------------सृजन्ति

ताण्डयमहाब्राह्मण 21/4

उद्गातादि उस अश्व को जल से अभिसिक्त करते हैं । दूसरे दिन प्रात: आहवनीयाग्नि में यजमानादि पाँच आहुतियाँ देता है । फिर यज्ञीय अश्व को चार सौ सशस्त्र राजपुत्रों के साथ एक वर्ष की अवधि के लिये छोड़ा जाता है । इसके बाद एक वर्ष तक सावित्रेष्टिप्रक्रमहोम, धृति होम और पारिप्लवाख्यान की कथाओं का आश्रवण किया जाता है ।

एक वर्ष बाद अश्व के पुन: लौट आने पर यजमान फिर दीक्षा ग्रहण करता है, फिर 12 दीक्षा, 12 उपसद, एवं 3 सुत्या दिवस के कृत्य किये जाते हैं । वर्षपर्यन्त होने वाली सावित्रेष्टि प्रजापति के लिए एक पशु का आलम्भन किया जाता है । प्रथम सवन दिवस वैशाख की पूर्णिमा को होता है । इसमें 21 यूपों में 21 सवनीय पशु बाँधे जाते हैं । द्वितीय सवनदिवस महत्त्वपूर्ण होता है । इसदिन यज्ञीय अश्व के हिनहिनाने के साथ उद्गीथ प्रारम्भ होता है, फिर अश्व को स्नान करवाकर रानियाँ सजाती हैं । उसे रात्रि का अवशिष्ट हविष्य प्रदान किया जाता है। यदि वह नहीं खाता है तो जल में फेंक देते हैं । अश्व के सम्पूर्ण शरीर को रस्सी से घेरकर उन-उन स्थानों से गई हुई रस्सी से यूपों में बँधे पशुओं को बाँधते हैं । इन पशुओं की संख्या विभिन्न ग्रन्थों में 317 या 349 अथवा 609 तक पहुँच गयी है, फिर इन पशुओं के चारों ओर अग्नि घुमाकर इन्हें छोड़ देते हैं । तत्पश्चात् शामिता घोड़े का वध करके उसे चादर से ढँक देते हैं । रानियाँ उसकी परिक्रमा करती हैं । राजमहिषी उस अश्व के साथ औपचारिक रूप से शयन करती हैं । इसी समय ब्रह्मा और कुमारी आदि के मध्य कुत्सित संवाद होता है । घोड़े तथा अन्य बलि पशुओं को काटा जाता है, उसकी वपा

को भूनकर उससे आहुति देकर अश्वमेध करते हैं । अश्व के अंगों की आहुति आदि देने के उपरान्त वनस्पति यागादि करते हैं । तृतीय दिवस की अलियों के उपरान्त अवभृथेष्टि होती है । इसमें विकृतांगी पुरुष को जल में खड़ा करके उसके सिर पर आहुति देते हैं । विशेष रूपा दक्षिणा दी जाती है ।

पाश्चात्य विद्वान ओल्डेनबर्ग महोदय के विचार से इस यज्ञ का अर्थ योद्धाओं द्वारा देवता इन्द्र के लिए एक तेज एवं शक्तिशाली घोड़े की बलि देना है, जिससे यज्ञ कर्ता आभिचारिक शक्ति प्राप्त कर सके वस्तुत: यह यज्ञ अभिचार रूप में यजमान में दिव्यशक्ति को प्रदान करने वाला है ।

चतुरात्र[1] -

चार रात्रिपर्यन्त चलने वाले ये यज्ञ अतिरात्र संस्था से सम्बन्धित है । लोग इनमें से चतुर्वीर" नामक क्रतुक पुत्रप्राप्ति की कामना से यजन करते हैं । धन प्राप्ति के लिए जमदग्नि, का तथा भ्रातृव्यों पर विजय पाने के लिए "संजय" नामक "चतुरात्र" का यजन किया जाता है ।

पंचरात्र या पंचाह[2] -

ये अहीन यज्ञ पाँच रात्रियों तक चलते हैं । अन्न और प्रजारूप फल की प्राप्ति के लिए अभ्यासंगा" पंचाह का अनुष्ठान करते है । अन्तर्महाव्रत" नामक क्रतु की अहीन तथा सत्र दोनों में गणना की जाती है । गवामयन "सत्र में यह अन्त में होता है । इनमें से पंचशारदीय[3] नामक पंचाह विशेष महत्त्वपूर्ण है । निरन्तर पाँच वर्ष शरद ऋतु के दिन में इसके कर्म किये जाते हैं । इसमें

1- चतुर्विंशा:----चतुर्वीर---जमदग्नि:--वशिष्ठ:

वृहत्संख्या में सवनीय पशुओं का आलभन किया जाता है ।

पाँच सुत्या दिवस वाला होने से पुरुषमेध[1] की पंचाहों या पंचरात्र में गणना की जाती है । इसमें 13 दीक्षा 12 उपसद और 5 सुत्या दिवस होते हैं । उपसद दिवस को यूप में 21 पशु बाँधे जाते हैं । तैत्तिरीय ब्राह्मण में पुरुष मेध के बलि प्राणियों की तालिका आयी है । पशुओं के चारों ओर पर्यग्निकरण के उपरान्त छोड़ दिया जाता है । अन्त में विश्वेदेव और वृहस्पति के लिये 11 अनुबन्ध्या गौओं का आलभन किया जाता है । उदवसानीयाहुतियों के साथ कृत्य समाप्त होते हैं । प्रभूत दक्षिणा प्रदान के साथ यज्ञ समाप्त होता है । तदनन्तर दो नारायणसूक्त के दुबारा पाठ के द्वारा वह पुनः ग्राम में वापस भी रह सकता है ।

षडरात्र[2] -

इसमें तीन त्रिककुद, पृष्ठ्य तथा पृष्ठयावलम्ब या अभ्यासङ्ग्य नामक षडहो का उल्लेख आया है । इसमें से पृष्ठयाषडह का सत्र में भी प्रयोग होता है ।

1- शतपथ - 13/6/1-2

2- पृष्ठ्य षडह: त्रिककुद् अभ्यासङ्ग्य:------------------------------
-----------------अभिजित्यै ताण्ड्य-- 22/1-2

सप्तरात्र[1] -

सात प्रकार के सप्तरात्रिक क्रतुओं का उल्लेख मिलता है-सप्तर्षि, प्रजापति, छन्दोमपवमान, जमदग्नि, ऐन्द्र, जनक तथा पृष्ठस्तोम का उल्लेख आया है। इन यज्ञों का अनुष्ठान अन्न पशु प्रजा की कामना से करते हैं ।

अष्टरात्र[2] -

देवत्व प्राप्ति के लिए अष्ट रात्र क्रतु किया जाता है ।

नवरात्र[3] -

अमरत्व तथा प्रभूत पशु सम्पदा की प्राप्ति के लिए दो प्रकार के नवरात्रिक अहीन क्रतु किये जाते हैं ।

दशरात्र[4] -

दशरात्र के सम्बन्ध में चार प्रकार के क्रतुओं का उल्लेख मिलता है । सभी प्रकार के भयों से रहित होने के लिए त्रिककुप्- प्रजापति के लिए कौसुरु विन्द" पशुकामी "छन्दोमा तथा शत्रु पर विजय पाने की इच्छा वाला यजमान "देवपुरं नामक दशरात्रिक क्रतु का अनुष्ठान करते हैं ।

1- पंचविंश ब्राह्मण - 22/4-10

2- पंचविंश ब्राह्मण - 22/11

3- पंचविंश ब्राह्मण - 22/12-13

4- पंचविंश ब्राह्मण - 22/14-17

सर्वमेध[1] -

सर्वमेध नामक क्रतु दशरात्र है । इसमें दश सुत्या दिवस होते हैं । इसके करने से अन्न तथा श्रेष्ठ्यादि परमता प्राप्त होती है । इसके दसों दिन एक विशिष्ट कृत्य से सम्बन्धित होते हैं-जैसे अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वैश्वदेव नामक देवताओं से सम्बन्धित होता है । पाँचवाँ दिन आश्वमेधिक और छठाँ दिन पुरुष मेधिक होता है । इसदिन पुरुष का आलभन करते हैं । सातवाँ दिन अप्तोर्याम दिवस होता है । समस्त प्रकार की सोमेष्टि की प्राप्ति के लिए इसे करते हैं इस दिन वपा तथा सर्वान्नों की आहुति देते हैं । आठवें तथा नौवें दिन त्रिणव तथा त्रयस्त्रिंशस्तोमवाले उक्थ्य दिवस का तथा दसवें दिन सर्वजित् का अनुष्ठान करते हैं । इस यज्ञ को करने से यजमानके लिए कुछ भी अनुपलब्ध नहीं रह जाता है । इसकी दक्षिणा में भूमि दी जाती है ।

एकादशाह[2] -

ग्यारह दिन के सुत्या दिवस का अनुष्ठान जिसमें चलता है एवं उसे एकादशाह कहते हैं । इस प्रकार के पुण्डरीक" नामक क्रतु का स्वराज्य एवं समृद्धि के लिये किये जाने का उल्लेख मिलता है ।

1- शतपथ ब्राह्मण 13/7/1

2- पंचविंश ब्राह्मण 10/3/3-5

सत्र

त्रयोदश रात्र से लेकर सहस्त्रसंवत्सर तक के यागों को सत्र कहते हैं । इनमें भी त्रयोदशरात्र से शतरात्र तक के यज्ञों को रात्रि सत्र,कहते हैं और उसके बाद वालों को केवल "सत्र" कहते हैं । द्वादशाह तो सत्र एवं अहीन दोनों रूपों वाला होता है ।

द्वादशाह[1] -

द्वादशाह यज्ञ दो प्रकार का होता है । सत्र रूप और अहीन रूप । सत्रात्मक को केवल ब्राह्मण कर सकते हैं । उसमें भी अहिताग्नि एवं अनुष्ठिताग्निष्टोम संस्था वाले द्वादशाह सत्रात्मक में सत्रह से 24 तक व्यक्ति अधिकारी होते हैं । इसमें सबयजमान ही होते हैं, और सबको फल मिलता है । परन्तु इसमें कोई दक्षिणा नहीं होती है । सबके यजमान होने पर भी सप्तदश यज्ञ में एक गृहपति होता है । और अन्य ब्रह्मादि का कार्य करते हैं । चतुर्विंशति पक्ष में सोलह व्यक्ति ऋत्विज् का कार्य करते हैं । शेष गृहपति का कार्य करते हैं । पंचविंश तथा कौषीतकि ब्राह्मण में अत्यन्त विस्तार से द्वादशाह के प्रत्येक दिनों के कृत्य और उनमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों छन्दों स्तोमो आदि का विवरण दिया गया है । सत्रात्मक द्वादशाह ही समस्त सत्रों का आदर्श है ।

1- ताण्ड्य ब्राह्मण 10-15 वे अध्याय तक ।

अहीनात्मक द्वादशाह में एक या दो अथवा अनेक यजमान रहते हैं । इसमें अग्निष्टोम के समान अध्वर्यु आदि ऋत्विज् ही कार्य करते हैं । अतः इनमें दक्षिणा ही दी जाती है । दक्षिणा समान रूप से सब को मिलती है ।

पंचविंश ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण में "त्रयोदश रात्र" से लेकर शतरात्र तक के यज्ञों का सविस्तार उल्लेख आया है । नाना प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के लिये इन क्रतुओं का अनुष्ठान किया जाता है । उक्त ब्राह्मणों में प्रयुक्त होने वाले स्तोमो, सामों एवं प्रत्येक दिवस की अनुष्ठान विधि का उल्लेख किया गया है । इन रात्रि सत्रों में एक बात समान यह है कि इनके प्रारम्भ और अन्त में अतिरात्र के कृत्य अवश्य किये जाते हैं । इनके मध्य में पूर्व-वर्णित एकाह और अहीन दिवसों के सांस्कारिक कृत्यों का अनुष्ठान भी किया जाता है । इनमें से अधिकांश क्रतुओं की फल प्रतिष्ठा, पूर्णायु, प्रजा अन्न, पशु और धन रूप फल की प्राप्ति है ।

इन सत्रों में "चतुर्दशरात्र सत्र" का वे लोग अनुष्ठान करते हैं । जिसमें संकल्प, विवाह और उदक के सम्बन्ध में मीमांसा होती है "एकविंशति रात्रि सत्र के द्वितीय प्रकार के करने से ब्रह्मवर्चस[1] की प्राप्ति होती है । इसका अनुष्ठान ग्रीष्म ऋतु में ही किया जाता है । अन्य किसी काल में करने से चर्म रोग हो जाने की सम्भावना कही गयी है । "एकोनपंचाशत" सत्र एक अत्यन्त

1- ता० ब्रा० 23/16

महत्त्वपूर्ण सत्र है । इसको "त्रिवृत" सत्र भी कहते हैं । इसके सात प्रकारों के प्रचलन का उल्लेख मिलता है । इसके प्रथम प्रकार के अनुष्ठान से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । द्वितीय प्रकार के अनुष्ठान से देव तथा मानुष लोकों की प्राप्ति होती है । त्रिवृत के तृतीय प्रकार के अनुष्ठान से सुगन्धियों से अभ्यंजन की सौभाग्य प्राप्ति, चतुर्थ से सिद्धियों की, पंचम से सामान्य लोगों में श्रेष्ठता की, षष्ठम् में प्रतिष्ठा एवं सप्तम् से ओज रूप फल की प्राप्ति निर्दिष्ट है । शतरात्र के अनुष्ठान से यजमान को धन एवं पूर्णायु का लाभ होता है ।

सत्रों के द्वितीय प्रकार को सांम्वत्सरिक" कहते हैं । एकवर्षीय सत्रों में "गवामयन" सबसे प्रसिद्ध है । और यही समस्त सांम्वत्सरिक सत्रों की प्रकृति है ।

गौओं द्वारा अनुष्ठित होने से यह सत्र "गवामयन"[1] कहलाता है । यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध सत्र है । शतपथ[2] ब्राह्मण में अत्यन्त विश्लेषणात्मक ढंग से बताया गया है कि किस कृत्य को करने से किस देवता का सायुज्य एवं सलोकता प्राप्त होती है । सम्पूर्ण गवामयन सत्र में 361 दिन लगते हैं ।

1- पंचविंश 4 और 5, ऐतरेय 4 अध्याय से 5/25 तक, कौषीतकि 19 से 30 अध्याय जैमिनीय 371-442, षड्विंश 1-4, गौणरूप से प्राय: सभी ब्राह्मणों में उल्लेख है ।

2- शतपथ ब्राह्मण 12/1/3/1 और आगे ।

इस सत्र के अनुष्ठान के लिए माघ अथवा फाल्गुन मास में दीक्षा ली जाती है[1]। माघ मास की अमावस्या से या चैत्र शुक्ल पक्ष द्वितीया से इस सत्र के लिए दीक्षित होते हैं[2]। एक अन्य मत से चैत्र पूर्णिमा को दीक्षा ली जाती है। यह सबसे निर्दोष दिवस होता है। दीक्षा लेने के दस दिन बाद से मुख्य सत्र सम्बन्धी अनुष्ठान होते हैं। इसमें आरम्भ के दिन लेकर बारह दीक्षा और बारह उपसद दिवस होते हैं। इस प्रकार चौबीस दिन होते हैं। आरम्भ के दिन ही इष्ट का पशु एवं उखा सम्भरण, कृत्य होते हैं। तब अन्तिम उपसद के दिन अग्नि और सोम के लिए पशु का अनुष्ठान करके उसी दिन से सुत्या के कृत्य प्रारम्भ होते हैं।

इसमें कृत्यों का अनुष्ठान इस प्रकार है। अतिरात्र (प्रायणीय) चतुर्विंश दिवस, प्रथम से पंचम मास तक प्रतिमास क्रमशः चार अभिप्लव और एक षडह एकाह और अभिजित् एकाह के अनुष्ठान कृत्य किये जाते हैं। सातवें मास में तीन स्वरसाम दिवस, विश्वजित् एक पृष्ठ्य और तीन अभिप्लव षडह के कृत्य किये जाते हैं। आठवें से ग्यारहवें मास तक एक पृष्ठ्य और चार अभिप्लव षडह के कृत्य किये जाते हैं। बारहवें मास में तीन अभिप्लव षडह आयु तथा गोष्टोम द्व्यह द्वादशाह के दस दिन, महाव्रत दिवस तथा अतिरात्र (उदयनीय) के कृत्य किये जाते हैं।

1- ऐतरेय ब्राह्मण 4/26

2- कौषीतकि 11/3

गवामयन सत्र में साम दिवस को सूर्य के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त बारहवें मास में किये जाने वाले "महाव्रत" दिवस के कृत्यों का यज्ञ में महत्त्व है तथा ये अत्यन्त रोचक विधि से मनाये जाते हैं। महाव्रत एकाह, अहीन तथा सत्र तीनों रूप वाला है इसका वर्णन इसके पूर्व किया जा चुका है। सत्रात्मक महाव्रत दिवस के कृत्यों का ताण्ड्य ब्राह्मण में गवामयन सत्र के प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेख आया है। कीथ महोदय के विचार से यह स्पष्टतः मकर संक्रान्ति का उत्सव है, न कि कर्क संक्रान्ति का जैसे कि हिलेब्रान्ट महोदय का विचार है, उस समय (मकर संक्रान्ति के अवसर पर) सूर्य को बलवान बनाना एक आवश्यक कर्तव्य होता था।

इस दिन ब्रह्मौध किया जाता है। भूमि दुन्दुभि बजायी जाती है सम्भवतः यह दुःस्वप्नों को दूर हटाने के लिए किया जाता है, जो कि सूर्य की शक्ति को उलट देने का प्रयत्न कर सकते हैं। होतृ आकाश में सूर्य के मार्ग को प्रदर्शित करने के लिए तथा इस पर चलने के निमित्त उसे शक्ति प्रदान करने के लिए एक झूले पर बैठा या जाता है। और उसे झुलाया जाता है। आच्छादित मार्जालीय वेदी में एक मागध तथा पुंश्चलू के मध्य उर्वरत्व के अभिप्राय से कर्मकाण्डीय अभिप्राय से यौन संसर्ग तक किया जाता है। दीक्षितों की निन्दा की जाती है। इसके अतिरिक्त एक आर्य और शूद्र के मध्य चर्मवेष्ठित मण्डलाकार आदित्य के प्रतिभान के लिए कृत्रिम युद्ध किया जाता है। उसमें औपचारिक रूप से आर्य को विजयी बनाया जाता है। राजन्य लोग ओज तथा बल की कामना से कवच धारण

कर वेदी की परिक्रमा करते हैं । सबसे अन्त में महाव्रत दिवस का श्येन पक्षी से तुलना करते हुए पंचविध स्तुति की जाती है । इस स्तुति के उपरान्त यजमान की पत्नियाँ अपघाटिला (वाद्य विशेष) पर उपगान करती है । तथा शत तन्त्रीक वीणा बजायी जाती है । कुछ स्त्रियाँ जलपूर्ण कुम्भों को कमर पर रखकर मार्जलीय वेदी की परिक्रमा करती हुई सामगान करती हैं । गवामयन सत्र की वेदी श्येनाकार होती है ।

गवामयन सत्र के अतिरिक्त अनेकों सत्रों का उल्लेख मिलता है । ये यज्ञ एक वर्ष से लेकर शत और सहस्त्र वर्षों तक चलने वाले होते हैं । गवामयन की प्रकृति से मिलता जुलता "आदित्य के सत्र" का उल्लेख आया है । इसके अतिरिक्त स्वर्ग प्राप्ति के लिए "दृतिवातवतो" का सत्र, कुण्डपायिनों का सत्र का अनुष्ठान किया जाता है[1] । "सप्ररोचनो" का सत्र का अनुष्ठान तीन वर्ष तक चलता है । तथा यह समस्त ऋद्धियों को प्रदान करने वाला है । लोग ब्रह्मवर्चस, ओज, अन्नाद्य एवं वीर्य की प्राप्ति के लिए द्वादश वर्षों तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं[2] । दशवीर पुत्रों की प्राप्ति के लिए छत्तीस वर्ष तक चलने वाले तथा सौ वर्षों तक चलने वाले यज्ञों का उल्लेख आया है ।[3] समस्त अन्नाद्यों की प्राप्ति के लिए एक सहस्त्र दिन तक चलने वाले "सहस्त्ररात्र" सत्र का अनुष्ठान किया जाता है ।[4] ।

1-अतिरात्रश्चतुर्विंश-----------------------आदित्यानामृध्ये---दृतिवात वतो----सर्वर्धिसाधनं कुण्डपायिनां--------सप्ररोचनं-----तयोश्चतो---एतदुपया-
ताण्ड्य 25/1-5

2-त्रयस्त्रिवृत:------------------------------प्रजापतेर्द्वादशसंवत्सरम्------
---------------------------आसते----ताण्ड्यमहाब्राह्मणे 25/6

3- नवत्रिवृत:----------शाक्त्यानां-----------सम्वत्सरं ।
पन्चाशति-----------शतसंवत्सरं ।। ताण्डयमहाब्राह्मण । 25/7-8

4- अतिरात्र: सहस्रमहान्यतिरात्रोऽग्ने-------------------------
---------------------सहस्रासाव्यं---------प्रतितिष्ठन्ति ।
ताण्ड्यमहाब्राह्मण 25/9

गवामयन के ही समान "सारस्वत सत्र" भी अत्यन्त प्रसिद्ध है । इस यज्ञ के तीन प्रकारों का उल्लेख मिलता है - मित्रावरुण योरनम्, इन्द्राग्ने- योरयनम् अर्यमणोरयनम्[1] । सारस्वत सत्र की दीक्षा उस स्थान पर होती है । जहाँ पर सरस्वती नदी लुप्त हुई है । इस यज्ञ में सरस्वती एवं दृषद्वती नामक नदियों के संगम पर चरु से निर्वपन करते हैं । यदि कोई इस सत्र का मध्य में विच्छेद करना चाहे तो यह प्लदा पार श्रवण प्रदेश को खोज लेता है और वहाँ सहस्र गौवों की दक्षिणा देता है ।

दीर्घकालिक सत्रों में आत्यन्तिक मुक्ति के लिए "दार्षद्वत" ऋद्धि पाने के लिए "तुरायण" सर्पभय से हीन होने के लिए "सर्प सत्र" तथा प्रजाप्राप्ति के लिए त्रिसंवत्सर सत्र का अनुष्ठान किया जाता है ।[2] समस्त प्रकार की मनोकामनाओं की प्राप्ति के लिए "प्रजापति" नामक सहस्त्र संवत्सर तक चलने वाले यज्ञ का उल्लेख आया है । समस्त विश्व का स्वामित्व पाने के लिए सहस्त्र संवत्सर तक चलने वाले "विश्वसृजामयन" यज्ञ का उल्लेख मिलता है ।[3]

1- मित्रावरुणयोरयनम् ------------------ऐन्द्राग्न्योरयनं---------
अर्यम्णोरयनम् ----------------------संव्याधाय । ताण्ड्यमहाब्राह्मण। 25/10-12

2- संवत्सरं ब्राह्मणम्-------- दार्षद्वत-----तुरायणं------ सर्पाणां-----
त्रिसंवत्सरं-----एतदुपयान्ति । ताण्ड्यमहाब्राह्मण 25/13-16 ।

3- ताण्ड्यमहाब्राह्मण
पञ्चपञ्चाशत--विश्वसृजां सहस्त्रसंवत्सरम् ।
ताण्ड्यमहाब्राह्मण 25/17-18

इन शत से सहस्त्र वर्षों तक चलने वाले सत्रों के विषय में उपलब्ध विवरण पर ध्यान देने से मन में आशंका उत्पन्न होती है कि इन यज्ञों का अनुष्ठान किस प्रकार सम्भव है । एक व्यक्ति की पूर्णायु शत वर्षों की मानी जाती है । यदि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् वह इन यज्ञों का अनुष्ठान अधिक से अधिक 70-75 वर्षों तक ही कर सकता है । अतः इन शत एवं सहस्त्र वर्ष वाले यज्ञों के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था रही होगी । सम्भवतः जैसा कि सारस्वत सत्र के सम्बन्ध में प्रचलित है, उसी का अनुसरण इन प्रसंगों में होता होगा । अवश्य ही इन सत्रों का अनुष्ठान लेने वाले जब यज्ञ समाप्त करना चाहते थे । तो एक या सौ गायों के मध्य ऋषभ को छोड़ देते थे और जब वे बढ़ते बढ़ते सहस्त्र हो जाते तब अपने यज्ञ को समाप्त कर देते । इस विधि में ही अनेकों वर्ष लग जाते रहे होंगे । अवश्य यही विधि इस सम्बन्ध में प्रचलित रही होगी । अन्यथा एक-एक यज्ञ में दो तीन पीढ़ियाँ तक लग जायेंगी और इसका वहाँ निर्देश भी नहीं है ।

अग्नि चयन

सोमयज्ञ में अग्नि वेदी के चयन का विशेष महत्त्व होता है । इसका आधान जन साधारण के लिए सम्भव नहीं है । उत्तर वेदी के निर्माण से अग्नि चयन का सम्बन्ध है । शतपथ ब्राह्मण में अग्नि चयन के प्रसंग का सविस्तार उल्लेख किया गया है । इस संस्कार के प्रमुख आचार्य शाण्डिल्य कहे गये हैं । शतपथ ब्राह्मण के चार अध्यायों में इसी का वर्णन किया गया है ।

प्रो० एगलिंग महोदय के विचार से यह विस्तृत कृत्य एक साधारण कृत्य नहीं है । यह आदि विराट् पुरुष के शरीर विच्छेप द्वारा ब्रह्माण्ड रचना के पूर्वतः प्राप्त विचारों को कर्मकाण्ड में साकार करने का पुरोहितों का ठोस प्रयास है जो कि अपनी पूर्ति के लिए अग्नि वेदी की रचना, जोकि ब्रह्माण्ड का प्रतीक है, तथा सृष्टि सम्बन्धी यज्ञ जो कि सदैव आवृत होता रहता है । इस विचार में दार्शनिक सिद्धान्तों का साकारीकरण है ।

सोमयाग में इसका चयन आवश्यक है । पूर्व की ओर विशाल उत्तर या महावेदी का चयन किया जाता है । उसी में आहवनीयाग्नि को रखकर होम किया जाता है । यह वेदी अत्यन्त विशाल होती है । हाथ ऊपर की ओर करके खड़े हुए पुरुष के सात गुना लम्बी वेदी होती है । सम्पूर्ण वेदी पश्चिम से पूर्व 36 प्रक्रम लम्बी होती है । 24 प्रक्रम सामने तथा 30 प्रक्रम पीछे से लम्बी होती है । कुल 90 प्रक्रम भूमि लगती है । इसी प्रकार 101 पुरुषों के बराबर

लम्बी चौड़ी वेदी भी बनायी जा सकती है, जो व्यक्ति अग्नि चयन करना चाहता है । वह फाल्गुन पूर्णिमा के दिन पौर्णमासेष्टि करके अग्निचयन प्रारम्भ करता है । इसमें प्रथम दिन इष्ट का निर्माण के अंगभूत पशु का आलभनादि अनुष्ठान कृत्य होते हैं । पाँच पशुओं का आलभन किया जाता है उनके सिरों को वेदी में चुना जाता है, और धड़ों को जल में डाल देते हैं । इसी स्थान के जल से ईंटों व अग्निपात्र को बनाया जाता है ये पशु हैं-मनुष्य, अश्व ऋषभ, अवि और अज । इन पशुओं की स्वर्ण अथवा मिट्टी की आकृति भी बनाकर चयन की जा सकती है[1] । परन्तु पंच पशुओं के शीर्षों को चयन करने के विचार को अधिक मान्यता दी गयी है । यह सब कृत्य फाल्गुन पूर्णिमा को करते हैं ।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष की अष्टमी के दिन उखा सम्भरण कृत्य करते हैं । अमावस्या के दिन दीक्षा लेते हैं । फिर इष्ट का निर्माण सोमक्रयण, उखापात्र निर्माण किया जाता है चौदह प्रकार की विशिष्ट चिन्हों वाली 11170 ईंटें बनायी जाती हैं जिसमें 360 यजुष्मती एवं शेष लोक म्पृणा ईंटें कहलाती हैं । एक वर्ष तक यजमान उखाहरण, वनी वाहन, वात्सो प्रस्थान के कृत्य करता है फिर दूसरे वर्ष अग्नि चयन किया जाता है सम्पूर्ण अग्नि वेदी की चिति पाँच स्तरों में बनायी जाती है इस कार्य में एक वर्ष लगता है शतपथ ब्राह्मण में सविस्तार विधिवत् बतलाया गया है वेदि को श्येनाकार बनाया जाता है इसके अतिरिक्त सदस गार्हपत्य निवृति और आहवनीय वेदियों को भी बनाते हैं ।

1- शतपथ ब्राह्मण 6/2/1/27-28

उत्तर वेदि के पाँच स्तरों की स्थापना के उपरान्त इसे सब तरफ से मिट्टी से ढँककर यजमान जंगली तिल व अर्क पत्रों से रुद्र के लिए 425 आहुतियाँ देता है ये आहुतियाँ चिति के समीप पड़े कंकड़ पत्थरों पर दी जाती है फिर वह इन कंकड़ों को बटोर कर जलपात्र में रखकर दक्षिण पश्चिम की ओर फेंक देता है यह एक प्रकार का अभिचार है कि हमारे दुख शत्रुओं को प्राप्त हों।

फिर वेदि पर अग्नि की औपचारिक स्थापना धूम धाम के साथ की जाती है। सफेद बछड़े वाली काली गाय के दूध से स्वयम्भातृष्टका पर आहुति देते हैं, और अग्नि को प्रज्ज्वलित करते हैं। तदनन्तर अनेक आहुतियाँ जैसे वैश्वानर, वायुसम्बन्धी, सम्पाति सम्बन्धी, 372 आहुतियाँ अग्नि के लिए दी जाती है। अवशिष्ट दूध से यजमान का अभिषेक करते हैं। तदनन्तर वह वाजप्रसवीय, वातहोम पार्थ और राष्ट्रभृत होम करता है। राजसूय, वाजपेय, सोमादि जिस याग के पूर्व चयन किया जाता है। इनमें से प्रत्येक के लिए आहुत्यादि का भिन्न क्रम होता है।

अग्निचयन करने वाला यजमान पक्षी का मांस नहीं खाता और दीक्षित के नियमों का पालन करता है।

यज्ञों के प्रयोजन

व्यक्ति कोई भी कार्य करता है तो उसका कोई न कोई प्रयोजन होता है जिससे वह अपनी कार्यसिद्धि करता है इसी प्रकार ब्राह्मण काल में जितने भी यज्ञ किये जाते थे उनका भी कोई न कोई प्रयोजन होता था ताण्ड्य ब्राह्मण में वर्णित प्रमुख यागों अग्निष्टोम, वाजपेय अश्वमेध और राजसूय यज्ञ का प्रयोजन यहाँ दिया जा रहा है ।

अग्निष्टोम

अग्नि को ही अग्निष्टोम माना जाता है । अग्निष्टोम का निर्वचन किया गया है, कि इससे अग्नि की स्तुति की जाती है । इसलिए अग्निष्टोम कहा जाता है । अग्नि के पूजा से जिस-जिस प्रयोजन की सिद्धि होती है, वे सभी अग्निष्टोम के अन्तर्गत आते हैं । इसीलिए इस अग्नि को ब्रह्म[1] ब्रह्वर्चस[2] ताण्ड्य महाब्राह्मण में आत्मा[3] और वीर्य[4] और प्रतिष्ठा[5]

1- कौषीतकि ब्राह्मण 21/5

2- तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/7/1/1

3- ताण्ड्य ब्राह्मण 19/5/11

4 - ताण्ड्य ब्राह्मण 4/5/21

5- कौषीतकि ब्राह्मण 25/14

के नाम से जाना जाता है । ताण्ड्य ब्राह्मण में यह वर्णन आया है कि अग्निष्टोम के यजन से देवों ने भूलोक पर विजय पायी थी[1] । यही स्वर्ग को देने वाला कहा गया है[2] । जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अग्निष्टोम सोम यागों में प्रथम है- इसीलिए इसे यज्ञमुख भी कहा गया है[3] यजमान को सब इसी से मिलता है सोमयागों को सम्पन्न करने का अधिकारी यही होता है इसलिए इसे यज्ञ की माता[4] और ज्येष्ठ यज्ञ[5] कहा गया है ज्योति स्वरूप इस अग्निष्टोम का यजन करने वाला प्रकाशमय पुण्य लोक को प्राप्त करता है ।[6]

संहिताओं में अग्निष्टोम के प्रयोजन की अपेक्षा उनकी विधियों पर प्रकाश डाला गया और तब प्रयोजन अलग-अलग रूप से वर्णित है शतपथ ब्राह्मण में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है ।

अग्निष्टोम के विभिन्न प्रयोजन के अतिरिक्त विधियों एवं क्रियाओं का भी प्रयोजन वर्णित है । अग्निष्टोम के दीक्षा संस्कारों का प्रयोजन यजमान को गर्भ में स्थित शिशु के रूप में दिखाना है जिस योनि यज्ञस्थल है दीक्षा लिए हुए यजमान गर्भ है, जरायु के रूप में नीचे बिछा कृष्णाजिन है ऊपर ओढ़ा हुआ वस्त्र उल्ब है और नाभि[7] के रूप में कटि में बँधी मेखला है । काठक संहिता में

1- ताण्ड्य ब्राह्मण 9/2/9,20/1/3तैत्तिरीय 12/5/6
2- ताण्ड्य ब्राह्मण 4/2/11
3- मैत्रायणी संहिता 4/4/10, तैत्तिरीय 1/8/7/1ताण्ड्यब्राहमण 18/8/1कौषीतकि 19/8
4- ताण्ड्य ब्राह्मण 20/11/8, मैत्रायणी संहिता 3/4/4
5- ताण्ड्य ब्राह्मण 6/3/8
6- ताण्ड्य ब्राह्मण 19/11/11
7- मैत्रायणी संहिता 3/6/7,

प्रायणीयेष्टि का प्रयोजन स्वर्ग प्राप्ति बताया गया है कुछ स्थानों पर इसका प्रयोजन दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करवाना है[1]। 3 दिन तक उपसद विधि के अनुष्ठान द्वारा तीनों लोकों में स्थिति प्राप्त की जाती है।[2]

इस तरह अग्निष्टोम के अनेक प्रयोजन बताये गये हैं। परन्तु इस यज्ञ का प्रयोजन प्राणि के उत्पन्न होने तथा इसके प्राणों, विविध शक्तियों और क्षमताओं से संयुक्त होने की स्थिति को प्रदर्शित करता है।

वाजपेय याग

वाजपेय यज्ञ की गणना सोमयागों में की जाती है। सायणाचार्य ने इस शब्द के दो निर्वचन किये हैं (1) वाजो देवान्न रूप: सोम: पेयो यस्मिन्यागे स वाजपेय इत्येकं निर्वचनम्। (2) यस्मादेतेन यज्ञेय देवा: वाजं फलरूपमन्यमाप्तु-मैच्छंस्तस्मादन्न रूपो वाज: पेय: प्राप्यो येन स वाजपेय इत्यपरनिर्वचनम्।।[3]

इन दोनों निर्वचनों से वाज का अर्थ सोम रूप अन्न बताया गया है शतपथ में वाजपेय, अन्नपेय के रूप में वर्णित है।[4]

1- मैत्रायणी संहिता 3/7/1

2- मैत्रायणी संहिता 3/8/1

3- तैत्तिरीय संहिता भाष्य 2/88

4- शतपथ ब्राह्मण 5/1/3/3

वाज को बहुत से ग्रन्थों में अन्न,[1] सोम[2], ओषधी[3] और पशु[4] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है इन सब वस्तुओं के उपयोग से उत्कृष्ण वीर्य की प्राप्ति होता है। वाज को वीर्य भी कहा गया है।[5]

वाजपेय यज्ञ को राज्य की इच्छा वाला ब्राह्मण या राजन्य ही कर सकता था।[6]

वाजपेय का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि वाजपेय को करने वाला अन्न[7], स्वर्गलोक[8] प्रजापति[9], और सब कुछ[10] प्राप्त लेता है।

1- ताण्ड्य ब्राह्मण 13/6/13, 15/11/12, 18/6/8,

2- मैत्रायणी संहिता 1/11/5, ताण्ड्य 1/3/2

3- तैत्तिरीय 1/3/7/1

4- ऐतरेय 5/8

5- शतपथ ब्राह्मण 3/3/4/7

6- मैत्रायणी संहिता 1/11/5, तैत्तिरीय 1/3/2 मानव श्रौत सूत्र 7/1/1/1

7- शतपथ ब्राह्मण 5/1/1/3

8- ताण्ड्य ब्राह्मण 18/7/1

9- ताण्ड्य ब्राह्मण 18/6/4

10- शतपथ ब्राह्मण 5/1/1/8-9

ब्राह्मण ग्रन्थों में वाजपेय को, अन्न और बल अर्थ दिया गया है । अतएव शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से इस यज्ञ का प्रयोजन वीर्य अर्थात् जीवनी शक्ति की उत्कृष्टता को प्राप्त करना है ।

राजसूय यज्ञ

राजसूय यज्ञ की सबसे प्रमुख घटना राज्याभिषेक है । इसकी पुष्टि "राजा सूयते अभिषिच्यते अस्मिन् याने इति: राजसूय: । से होती है और सभी क्रियायें सहायक होती हैं । अत: इस यज्ञ का प्रयोजन हुआ, राज्य की प्राप्ति । राज्य की कामना करने वाले को राजसूय का अनुष्ठान करने को कहा गया है ।[1]

अश्वमेध यज्ञ

अश्वमेध यज्ञ का कर्ता कौन है - इसका निर्धारण हो जाने के बाद ही इसके प्रयोजन का पता चल सकता है । अधिकतर साहित्यों के अनुसार अश्वमेध यज्ञ को दिग्विजयी सम्राट ही कर सकता था । कात्यायन श्रौत्र सूत्र प्रत्येक राजा के लिए इसका अनुष्ठान करने को कहता है ।[2] लेकिन आपस्तम्ब में कहा गया है कि एकछत्र शासन करने वाला राजा ही इस यज्ञ को कर सकता है

1- मानव श्रौत्र सूत्र 9/1/1। तैत्तिरीय संहिता भाष्य 3/856-57 में उद्धृत वौधायन और आपस्तम्ब सूत्र

2- यज्ञ तत्त्व प्रकाश पृष्ठ 115 ।

ब्राहमण ग्रन्थ केवल राजा से इसका सम्बन्ध जोडते हैं ऐसा प्रतीत होता है । शतपथ[1] में यह कहा गया है कि ग्रीष्म काल में इसका अनुष्ठान करने पर यह क्षत्रियों का हो जायेगा इसलिए वसन्त में शुरुआत हो जानी चाहिए क्योंकि तब ब्राहमण इसका यजमान होगा ।

अश्वमेध का मेध शब्द मेधृ हिंसासंगमनयो: से उत्पन्न है । यह शब्द अश्व का हिंसन करने वाले या अश्व का संगमन करने वाले यज्ञ का द्योतक है ।

अश्व शब्द की उत्पत्ति और निर्वचन करते हुए कहा गया है । कि प्रजापति की आँख सूजकर फैलकर दूर जा पड़ी उसी निस्सृत आँख से अश्व बना । अत: अश्वयत् सूजकर फैल गयी ऐसी वस्तु से उत्पन्न होने के कारण अश्व बना ।[2] टुओश्वि वृद्धौ धातु से अश्वकी निष्पत्ति मानी गयी है किन्तु दूसरी जगह अशूङ व्याप्तौ से भी इसकी व्युत्पत्ति समझायी जा गयी है । पहले निर्वचन में प्रजापति से अश्व की उत्पत्ति बतायी गयी है । दूसरी से प्रजापति को ही अश्व कहा गया है । इस यज्ञ के द्वारा देवों ने प्रजापति की विच्छिन्न आँख को पुन: स्थापित किया था ।[3]

अश्वमेध द्वारा प्रजापति को सब प्रकार से पूर्ण बताया गया है ।[4] यह यज्ञ सब चीजों की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है ।[5]

1- शतपथ ब्राहमण 13/4/1/2-3

2- ताण्ड्य महाब्राहमण 21/4/2, तैत्तिरीय 1/1/5/4,

3- ताण्ड्य ब्राहमण 21/4/2

4- तैत्तिरीय संहिता 5/3/12 शतपथ 13/3/1/1

5- तैत्तिरीय 3/8/16

सूर्य और चन्द्रमा को अश्वमेध कहा गया है इन दोनों से इस अश्वमेध का सम्बन्ध जोड़कर इसको इस सृष्टि की गतिशीलता का प्रतीक बताया गया है । सूर्य रूप से अश्वमेध साल भर चलता है । और चन्द्रमा रूप से प्रतिमास होता है ।[1]

राष्ट्र को भी अश्वमेध कहा गया है यह यज्ञ राष्ट्र की उन्नति की कामना से किया जाता है । कमजोर राजा को इस यज्ञ को नहीं करना चाहिए क्योंकि शक्तिशाली शत्रुओं द्वारा घोड़ा पकड़ा जा सकता है । जिससे यज्ञ के भंग का पाप हो जायेगा ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अश्वमेध अनेक रूपों में वर्णित है । इसी तरह इसके प्रयोजन भी अनेक हैं ।

यज्ञीय कर्मकाण्डों का वर्णन ब्राह्मण साहित्य का मुख्य वर्ण्य विषय है । फलतः वह इस प्रकार के विवरणों से परिपूर्ण है । इनका हर एक दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्व है । प्रस्तुत अध्ययन में यज्ञ के स्वरूप का विभिन्न महत्त्वपूर्ण दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । यज्ञ उस काल के जीवन का मुख्य अंग था । यज्ञ तत्सम्बन्धी अभिचारादि दैनिक जीवन में व्यापक रूप से घुल मिल गये हैं यही कारण था कि नाना प्रकार की साधारण से साधारण इच्छा की पूर्ति के लिए स्त्री और पुरुष अभिचार प्रयोगों को करते थे । श्रौत और स्मार्ताग्नि में यज्ञों का अनुष्ठान होने से अग्नि के अनुसार हविः सोम और पाक यज्ञों के रूप में हम इनका वर्गीकरण किया गया है । श्रौताग्नि से सम्बन्धित हवि और सोम सम्बन्धी यज्ञों का स्वरूप अत्यन्त विशाल है ।

1- शतपथ ब्राह्मण 11/2/5/4

ये यज्ञ अत्यन्त दीर्घकाल तक चलने के वाले और व्ययसाध्य हैं । किसी सामान्य व्यक्तियों के लिए इनका अनुष्ठान दुर्लभ है। यज्ञप्रक्रिया इतनी दुरूह, क्लिष्ट एवं अभिचारों से परिपूर्ण हैं कि गृहस्थ यजमान इन्हें नहीं कर सकता और वह पुरोहितों के हाथ का खिलौना बना रहा है । पाक यज्ञों का अनुष्ठान उसकी सामर्थ्य में है इन्हें वह स्वयं अथवा एक पुरोहित के द्वारा करवा सकता है दैनिक जीवन में नाना प्रकार के अभावों की उपलब्धि उसे चेष्टा करने के लिए प्रेरित करती है । बड़े-बड़े हवि एवं सोमयज्ञों के अनुष्ठानों से भी इस प्रकार के मनोकामनायें पूरी होती थी परन्तु सामान्य लोग विभिन्न कामेष्टियों के अनुष्ठ द्वारा अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करते हैं इनका स्वरूप बड़े यज्ञों की तरह नहीं होता है परन्तु इनमें अग्नि की स्थापना करने से उसमें हवि इत्यादि दी जाती है इस सभी प्रकार के सोम यज्ञों की विधियों का संक्षिप्त रूप से वर्णन भी किया गया ।

इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से ताण्ड्यमहाब्राह्मण में उपलब्ध यज्ञों पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यज्ञ उस युग के नवजीवन का प्राण था । उसके अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने इस लोक में भी एवं सौभाग्य की प्राप्ति एवं मृत्युपरान्त स्वर्ग में उसे स्थान दिलाने वाला यज्ञ ही था । इसके अतिरिक्त यही यज्ञ विधियाँ परवर्ती समस्त श्रौत एवं गृह्य सूत्रों के प्रतिपाद्य विषय हैं ।

पन्चम अध्याय

वर्ण व्यवस्था

किसी भी सामाजिक व्यवस्था में "वर्ण व्यवस्था" का विशेष महत्त्व होता है । भारतीय समाज के लिए यह मेरुदण्ड का काम करती है । वर्ण व्यवस्था का उद्भव ऋग्वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुका था । "वर्ण" शब्द मनुष्यों के एक वर्ग को द्योतित करता है । ऋग्वेद में "वर्ण शब्द" रंग या ज्योति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[1] । इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में यह मनुष्यों के एक वर्ग को व्यक्त करने के लिए भी प्रयुक्त हुआ है । अनेक स्थलों पर दासों एवं आर्यों में त्वचा के रंग के आधार पर विभेद किया गया है । परन्तु यह व्यवस्था दो रंगों तक ही सीमित है । ब्राह्मणों में "महाव्रत के प्रसंग में "शूद्र" तथा आर्य के बीच एक नकली युद्ध का उल्लेख किया गया है इसमें ब्राह्मण को "दिव्य वर्ण" और शूद्र को असुर वर्ण का कहा गया है[2] ।

"वर्ण" शब्द संस्कृत के "वृञ् वरणे" अथवा वरी" धातु से हुआ है । जिसका अर्थ होता है चुनना या वरण करना । वर्ण शब्द से तात्पर्य किसी विशेष व्यवसाय को चुनने या अपनाने से है ।

ऋग्वेद के आरम्भिक काल में वर्ण व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थी लेकिन ऋग्वेद के दसवें मण्डल के "पुरुष सूक्त" में सर्वप्रथम वर्ण की उत्पत्ति

1- ऋग्वेद 1/73/7, 2/3/5, 9/97/5

2- ताण्ड्य ब्राह्मण 5/5/14, तैत्तिरीय 1/2/6/7

और विभाजन का वर्णन मिलता है । विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य, तथा पद से शूद्र की उत्पत्ति बतायी गयी है ।[1] यह सिद्धान्त प्रतीक अर्थ में भी उपयुक्त है । जिस तरह शरीर के इन अंगों का महत्त्व है, उसी प्रकार समाज में इन वर्णों का बड़ा महत्त्व है । समस्त समाज को पुरुष का रूपक दिखायागया है, और उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया गया है । इस रूपक से यह ध्वनित होता है कि जिस प्रकार शरीर के सब अंग एक दूसरे से जुड़े होते हैं। उसी प्रकार चारों वर्ण एक दूसरे से जुड़े हुए हैं ।

ऋग्वेद का वर्ण व्यवस्था की तरह ही ब्राह्मणों में भी इसका वर्णन मिलता है । ताण्ड्यब्राह्मण[2] में प्रजापति से चारों वर्णों से सृष्टि बतलायी गयी है । इसमें प्रजापति के मुख से ब्राह्मण की, हृदय एवं बाहुओं से क्षत्रिय की मध्य भाग से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति से सृष्टि का उल्लेख मिलता है।

ताण्ड्य ब्राह्मण के इस वर्णन से कार्य विभाग सिद्धान्त की पुष्टि होती है । उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट होता है कि सर्वसाधक यज्ञ की सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति ने अपने मुख से त्रिवृत स्तोम, गायत्री छन्द, अग्नि देवता वसन्त ऋतु और ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि की थी । मुख से उत्पन्न ब्राह्मण मुख से वीर्य कर्म, स्वाध्याय, प्रवचन आदि सामर्थ्यपूर्ण कर्म कर सकते हैं । बाहु से उत्पन्न क्षत्रिय बाहुबली है । मध्य भाग से उत्पन्न वैश्य पूर्वोत्पन्न वर्णों का उपजीवनीय होता है । चरणों से उत्पन्न शूद्र सब की सेवा करता है ।

1- ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
   उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ।। ऋग्वेद।0/90/2

2- तस्माद् ब्राह्मणोमुखेन ------स उरस्त एव बाहुभ्यां------ समध्यत एवं प्रजनन---------तस्मात्पादावनेज्यन्नति वर्द्धते पत्तो हि सृष्टः । ताण्ड्य महाब्राह्मण 6/1/6-।।

शतपथ ब्राह्मण[1] में ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र, चार वर्ण का वर्णन है "वर्ण" शब्द जाति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मणों में जो ब्राह्मण हुए वह हुताद हुए जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हुए, वह अहताद् हुए। प्रथम तीनों वर्णों का समाज में विशेष महत्त्व था।

ब्राह्मण -

ऋग्वेद में मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति मानी गई है - ब्राह्मण साहित्य में भी इसका वर्णन मिलता है।[2] ब्राह्मण साहित्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय को विशेष स्थान प्राप्त था। अन्य दोनों का स्थान गौण था। पंचविंश[3] ब्राह्मण में ब्राह्मण को क्षत्रिय से आगे एवं वैश्य क्षत्रिय को उसका अनुगामी बताया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण[4] में यद्यपि राजसूय यज्ञ के समय ब्राह्मण भी राजा की अभ्यर्थना करता था तो भी इस असामान्य स्थिति की इतनी सावधानी से व्यवस्था की गयी है, कि उससे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है ताण्ड्य[5] ब्राह्मण में कहा गया है कि क्षत्रिय एवं ब्राह्मण पूर्ण समृद्धि के लिए एक दूसरे का सहयोग करते थे। इसी ब्राह्मण में अन्यत्र कहा गया है कि यदि कोई ब्राह्मणों को सताता था तो निश्चय ही उसका शीघ्र पतन हो जाया करता था। इस बात की पुष्टि अन्य ब्राह्मणों से भी हुई है।[6]

1- शतपथ ब्राह्मण 5/5/4/9
2- ताण्ड्य ब्राह्मण 6/1/6-7
3- तस्माद् ब्राह्मणोमुखेन वीर्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः ताण्ड्यब्राह्मण 6/1/6
4- ऐतरेय ब्राह्मण
5- [illegible] राजा च पुरोहितश्च यजेयाताम्। ताण्ड्यब्राह्मण 19/17/4
6- ताण्ड्य ब्राह्मण 18/10/8, तैत्तिरीय 1/7/2/6, शतपथ ब्राह्मण 13/1/5/4

ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मण की जातिगत पवित्रता ही इनके वास्तविक ब्राह्मणत्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका किये जाने से उन्हें मुक्त कर देती है ।

ब्राह्मणों के 6 कार्य बताये गये हैं । वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना ।[1] श्रीमद् भागवत में "शम् दम, तप्, शौच, क्षमाभाव, आर्जव {सरलता} ज्ञान विज्ञान, तथा आस्तिकता को ब्राह्मण का स्वाभाविक कर्म कहा गया है ।[2] समाज में इनका सबसे महत्वपूर्ण स्थान था। क्षत्रिय से ऊँचा स्थान था[3] । इसी के कारण ब्राह्मण को सभी वर्णों की पत्नियाँ रखने का अधिकार था । पीछे कहे गये कर्मों के अतिरिक्त विपत्ति पड़ने पर वह क्षात्र धर्म स्वीकार कर सकता था जीविकोपार्जन के लिए वह कृषि और वाणिज्य के कर्म अपना सकता था ।[4] मांस, मदिरा आदि ब्राह्मणों के लिए वर्जित था ।

1- अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
   दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानाम कल्पयत् ।। मनु 1/88,

2- शमो दमस्तप: शौच क्षान्तिरार्जवमेव च ।
   ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।। गीता 18/42

3- ब्रह्म हि पूर्व क्षत्रात् । ताण्ड्य ब्राहमण 11/1/2

4- कृषि वाणिज्ये वाऽस्वयं कृते-गोमिल धर्मसूत्र 10/5/6
   कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्/ मनु {10/82}

अन्त में यही कहा जा सकता है कि ब्राह्मण को आपात काल में भी अपने सदाचार सम्बन्धी गुणों को नहीं छोड़ना चाहिए ।

देवताओं में ब्राह्मणत्व की कल्पना -

ताण्ड्य ब्राह्मण में देवताओं में भी चातुर्वर्ण्य की कल्पना की गयी है । अग्नि को देवताओं में ब्राह्मण मानते हैं ।[1] इसके अतिरिक्त इनकी सोम से भी तुलना की गयी है ।[2]

यज्ञों में दक्षिणा रूप में इन ब्राह्मणों को प्रभूत धन धान्य, वस्त्राभूषण, पशु प्रदान किये जाने के बहुल संकेत मिलते हैं ।[3] अपने दाता के साथ विश्वास घात करने वाले पुरोहित को मृत्यु दण्ड भी दिया जा सकता है ।[4]

क्षत्रिय -

ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान क्षत्रिय का था । "क्षत्रिय" शब्द का शाब्दिक अर्थ है रक्षा करने वाला ।[5] क्षत्रिय के स्थान पर "राजन्य" शब्द मिलता है ।[6] ऋग्वेद में क्षत्रियों को बाहुओं से उत्पन्न बताया गया है ।

1- ताण्ड्य ब्राह्मण 15/4/8 आग्नेयी पृथिव्याग्नेयो ब्राह्मण ----स्तुवतेस्तोमः।

2- ताण्ड्य ब्राह्मण 23/16/5 सोमो वै ब्राह्मणः पशवः -----अक्रत ।

3- ताण्ड्यब्राह्मण 1/7-8

4- ताण्ड्य ब्राह्मण 14/6/8

5- क्षदति" क्षद संवरणे" सौत्रःष्ट्रन । उणा० 4/159

6- बाहू राजन्यः कृतः । ऋग्वेद 10/90/12

ब्राहमण साहित्य में भी क्षत्रिय के सम्बन्ध में कहा गया है । ताण्ड्य महाब्राहमण[1] में क्षत्रिय की उत्पत्ति प्रजापति के हृदय और बाहुओं से मानी जाती है । ये भुजाओं से उत्पन्न हुए थे । इस लिए क्षत्रियों को अपने भुजबल पर बड़ा घमण्ड होता था । जातक साहित्य में क्षत्रिय शब्द पुरानी आर्य जाति के उन कुलीन सदस्यों का द्योतक है, जो इस जाति के विजय अभियानों का नेतृत्व करते थे । मैकडानल और कीथ महोदय के अनुसार "क्षत्रिय" शब्द का आशय आंग्ल इतिहास के "बेरन्स" जैसा ही है ।[2]

क्षत्रिय के प्रधान कर्तव्य थे । प्रजा की रक्षा करना दान देना, यज्ञ करना, वेदाध्ययन करना, तथा विषयों में आसक्त न होना ।[3] गीता में शौर्य, तेज, धैर्य, चातुर्य, युद्ध क्षेत्र से पलायन न करना, दान और ईश्वर भाव क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म बताये गये हैं ।[4]

1- ताण्ड्य ब्राह्मण 6/1/8 स उरस्त एवं बाहुभ्यां ------सृष्टः ।

2- वैदिक इन्डेक्स 1/22/5

3- प्रजानाम् रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः । मनु 1/89

4- शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।। गीता 18/43

संकट काल में क्षत्रिय वैश्य वर्ण का कर्म अपना सकता था ।[1] मनु ने भी वैश्य कर्म अपनाने को कहा है । युद्ध में जीती हुई सारी वस्तुएं क्षत्रिय शासक की होती थी ।

देवताओं में क्षत्रियत्व की कल्पना-

ब्राह्मण काल में देवताओं में क्षत्रियत्व की कल्पना की गयी है। आदित्य, सोम, प्रजापति, मित्रवरुण एवं इन्द्र देवताओं की क्षत्रिय से तुलना की गयी है । ये सब जितने पराक्रमी देवता माने गये हैं । उस सब में क्षत्रिय वर्ण के होने की कल्पना की गयी है । इससे ब्राह्मण काल में क्षत्रिय के सामाजिक महत्त्व का पता चलता है ।

वैश्य -

ऋग्वेद में "विश्" शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से समूह के अर्थ में आया है[2] जैसे देवीनामविशाम्, दार्शनिक पुरुषसूक्त के वर्ण व्यवस्था को सूचित करने वाले मन्त्र में "वैश्य" का प्रयोग किया गया है ।[3] जिस प्रकार शरीर में मध्य भाग का महत्त्व है, ठीक उसी प्रकार समाज में वैश्य का महत्त्व था । क्यों कि आर्थिक स्थिति इनकी अच्छी होती थी । ये व्यापार करते थे ।

1- राजन्यो वैश्यकर्म । प्राण संशये राजन्यो कर्मादर्दीत् तेनात्मानं रक्षेत् ।
गौतम धर्मसूत्र 7/26

2- ताई विशो न राजानं वृणाना वीभत्सवो अप वृत्रादतिष्ठन् ।ऋग्वेद 10/124/8

3- उरुतदस्य यद् वैश्यः । ऋग्वेद 10/90/12

ब्राह्मण साहित्य में भी वैश्यों का वर्णन है । ताण्ड्य ब्राह्मण[1] में प्रजापति से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति बतायी गयी है । वैश्य प्रजापति के मध्य भाग से उत्पन्न हुआ है । प्रजापति के प्रजनन भाग से उत्पन्न होने के कारण ही दूसरों से उपभुक्त होता हुआ भी वह नष्ट नहीं होता ।

वैश्य ब्राह्मण कालीन भारतीय समाज के मेरूदण्ड थे। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वैश्य के ऊपर आश्रित होते थे । सामाजिक दृष्टिकोण से वैश्य का स्थान तृतीय था, फिर भी शूद्र की तरह वह शिक्षा एवं धर्म के क्षेत्र में अधिकार च्युत नहीं था । इनके प्रमुख कर्म थे अध्ययन करना, यज्ञ करना और दान देना ।[2] बाद में वैश्यों ने शिक्षा से ध्यान हटा लिया और व्यापार में अधिक ध्यान दिया। कौटिल्य ने भी अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वैश्यों का कर्म बताया है ।[3]

वैश्य को भी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की तरह संकट काल में दूसरे कर्म को अपनाने को कहा गया है । संकट काल में वैश्य शस्त्रग्रहण कर सकता था । गो, ब्राह्मण और वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य को शस्त्र ग्रहण करने को कहा गया है।[4]

1- अत स मध्यत एव प्रजनन------सृष्टः/ताण्ड्य ब्राह्मण 6/1/10

2- वैश्यस्थस्याध्ययनं यजनं दानं । अर्थशास्त्र 3/7

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वाणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेव च ।। मनु0 1/90

3- वैश्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च। अर्थशास्त्र 3/7

4- गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा वर्णानां वापि संकरे । गृह्णीयातां विप्र विशौ शस्त्रधर्मं व्यपेक्षया । बौधायन धर्मसूत्र 2/2/90 ।

देवताओं में "वैश्यत्व की कल्पना-

ब्राह्मण साहित्य में देवताओं में चातुर्वर्ण्य की कल्पना करते हुए वैश्यदेव एवं मरुतों को वैश्य की श्रेणी में माना गया है । जिन देवताओं में वैश्यत्व की कल्पना की गयी है वे सभी प्राय: गणप्राय देवता हैं । विश्वेदेवा 13 संख्या का दल और मरुत 49 संख्या का गण है । सम्भवत: वैश्य मिलकर ही धनोपार्जन में समर्थ होते थे, अत: उन्हें गण की आवश्यकता होती थी । इसीलिए गणप्राय देवताओं में ही वैश्यत्व की कल्पना की गयी है ।

वैश्य बहुपशुमान् होता था । उसकी समृद्धि पशुओं पर निर्भर होती थी ।[1] धार्मिक क्षेत्र में भी वैश्यों को अधिकार प्राप्त थे । प्राय: वह सभी यज्ञों को कर सकता था । वह वर्षा ऋतु में अग्न्याधान करता था ।[2]

शूद्र -

समाज में शूद्रों की स्थिति निम्नतम थी । ऋग्वेद में केवल एक बार "शूद्र" शब्द का प्रयोग हुआ है, वह भी "पुरुष" सूक्त के वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी मन्त्र में ।[3]

ब्राह्मण साहित्य में भी शूद्र का वर्णन मिलता है ।

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण 18/4/6 एतद्वै वैश्यस्य समृद्धं यत्पशव: पशुभिरे न समर्द्धयति ।

2- ताण्ड्य महाब्राह्मण 6/1/10

3- ~~[illegible]~~ । ऋग्वेद 10/90/12 ~~पद्भ्यां शूद्रोऽजायत~~ ।
पदभ्यां शूद्रोऽजायत

ताण्ड्य महाब्राह्मण में प्रजापति के चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति बतलायी गयी है "इसलिए पैर को धोता हुआ, अधिक वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, पैरों से ही उत्पन्न हुआ है[1]। शतपथ में कहा गया है कि जो अज्ञानी है, वह श्रम से ही अपना जीवन निर्वाह कर सकता है।[2] तैत्तिरीय में "श्रम रूप ही शूद्र है, ज्ञान हीन ही शूद्र है[3]। ऐसा कहा गया है। पैरों से उत्पन्न होने के कारण सेवा करना इनका मुख्य कर्तव्य माना गया है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में देवताओं में पूषन् (पृथिवी) देवता को शूद्र वर्ण का माना गया है। लेकिन यह नितान्त परवर्ती काल की कल्पना है। ब्राह्मण काल में देवसमाज में वर्गानुसार वर्गीकरण करने पर भी ऋषि लोगों ने पूषन् में शूद्रत्व की कल्पना नहीं की।

पिक महोदय शूद्र को मूलतः एक ऐसी विशिष्ट जाति मानते हैं। जिसके अन्तर्गत आक्रामक आर्यों द्वारा पराजित अनेकहीन जातियों के सदस्य आ गये। मैक्डानल और कीथ भी पिक के विचार से सहमत हैं।

ब्राह्मण साहित्य में शूद्र शब्द परिवार के दासों के लिए ही केवल प्रयुक्त नहीं हुआ है। वरन् आर्य और अनार्यों के भेद को प्रकट करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रसंग में शूद्रों की त्वचा के रंग एवं रहन सहन

1- तस्मात्पादावनेज्यन्नाति वर्द्धते पत्तो हि सृष्टः। ताण्ड्य ब्राह्मण 6/1/11।

2- तपो वै शूद्रः। शतपथ ब्राह्मण 13/6/2/10

3- असुर्यः शूद्रः। तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/2/6/7

के साथ आर्यों की तुलना की गयी है ।[1] शूद्रों के लिए "असुर" शब्द का प्रयोग मिलता है ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में उल्लेख आया है कि अनु पशुमान एवं समृद्ध होने पर भी शूद्र को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था । क्योंकि कोई देवता उसके लिये उत्पन्न नहीं हुआ है, इसीलिए शूद्र दास के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था उसको श्रेष्ठ जनों का पाद प्रक्षालन करना पड़ता था । शूद्र भी अन्य वर्णों की तरह अवध्य माना गया था ।[2]

शूद्रों के बौद्धिक क्षेत्र में क्या अधिकार थे इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । वेद का अध्ययनकरने का शूद्रों को अधिकार नहीं था । परन्तु ब्राह्मणों में प्राप्त संकेत से इस मत का खण्डन हो जाता है ऐतरेय[3] में "कवष एलूष" को "दासीपुत्र" एवं ताण्ड्य[4] ब्राह्मण में "वत्स" को "शूद्र पुत्र" माना गया है । ये दोनों ही विद्वान थे और इन्हें अन्य ब्राह्मणों ने दासी एवं शूद्रा पुत्र होने के कारण यज्ञों से तिरस्कृत करके निकाल दिया था । इससे यह

1- शूद्रार्यौ चर्म्मणि व्यायच्छेते तयोरार्यं वर्णमुज्जापयन्ति

ताण्ड्य ब्राह्मण 5/5/14-16

2- पत्त एव प्रतिष्ठाना--------------व्यूहन्ति ।

ताण्ड्यब्राह्मण 6/1/11-12

3- ऐतरेय 2/19

4- वत्सश्च -------------शूद्रापुत्र इति -------------------
-------------------अवरुन्धे ।

ताण्ड्यब्राह्मण 14/6/6

पता चलता है कि शूद्रों को अध्ययन का अधिकार था । लेकिन धार्मिक दृष्टि से सम्मान नहीं था यज्ञ को छोड़कर अन्य सभी अवसरों पर शूद्रों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था ।

<u>दास दासी</u> -

दास दासी की प्रथा प्राचीन काल से थी । धर्म तथा वर्ण की विभिन्नता रहने पर भी ये दास लोग आर्यों के ही समान प्रतापी तथा सम्पत्ति शाली थे । सम्भवतः आर्यों में ही जो लोग वैदिक धर्म में विश्वास नहीं करते थे । सभ्यता की दौड़ में पिछड़े हुए थे । वे असभ्य होने के कारण नगरों से दूर अरण्यों और पहाड़ी प्रदेशों में जाकर रहते थे । जंगलों में धूप में रहने के कारण इनका रंग काला पड़ गया था । इन्हें ही दास कहा जाता था इन दासों और आर्यों में युद्ध होता था । दास भी वीर होते थे । अधीनता न स्वीकार करने के कारण कुछ दास तो मार डाले जाते थे, जो बचते थे, उनको आर्य दास बना लिया करते थे ।

ताण्ड्य[1] ब्राह्मण में सत्रों में "महाव्रत दिवस" को संकेतात्मक रूप में आर्य और शूद्र के मध्य एक कृत्रिम युद्ध करवाया जाता है, जो ऐसा होता था कि आर्य ही जीते ।

1- देवा वैस्वर्ग ---------------------------------- ब्रात्या

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 14/6/6

व्रात्य -

ताण्ड्य ब्राहमण के अनुसार जातिबहिष्कृतों अर्थात् व्रात्यों के चार प्रकार बतलाये गये हैं §1§ हीन-जिनका निम्न एवं दलित के रूप में वर्णन है । §2§ जो किसी पाप के कारण जातिबहिष्कृत हो जाते थे । इन्हें निन्दित कहा जाता था । §3§ जो आरम्भिक अवस्था में ही प्रत्यक्षतः जाति बहिष्कृतों के बीच में रहने के कारण जाति बहिष्कृत हो जाते थे । §4§ ऐसे वृद्ध व्यक्ति जो नपुंसक हो जाने के कारण जाति बहिष्कृतों के बीच रहने लगते थे ।

इनमें से प्रथम कोटि वाले व्रात्य महत्त्वपूर्ण व्रात्य माने जाते थे । संस्कार हीन होने के कारण ये द्विजों की सेवा करते थे । ये अनार्य नहीं थे । ये अदीक्षित होते हुए भी दीक्षितों की भाषा बोलते थे । इस प्रकार ये आर्य ही कहे जाते थे । ये ब्रहमचर्य का पालन नहीं करते थे और न ही विद्याध्ययन किया करते थे ।[1] निर्दिष्ट संस्कारों के द्वारा ये ब्राहमण समुदाय में सम्मिलित भी हो जाते थे ।

ब्राहमण साहित्य में इनकी वेशभूषा एवं जीवन के सम्बन्ध में भी संकेत मिलते हैं ताण्ड्य महाब्राहमण[2] में एक उपलब्ध संकेत के अनुसार व्रात्यों में अपरिष्कार्य व्यक्ति को पीटने की भी व्यवस्था थी । व्रात्य लोग उष्णीश बाँधते थे, एक 'कोड़ा' एक प्रकार का धनुष अपने पास रखते थे,काले श्वेत दो रंग के चमड़े

1- ताण्ड्य ब्राहमण 17/1-9

2- ताण्ड्यमहाब्राहमण 17/1/14

का या काले रंग का परिधान ग्रहण करते थे । इनके पास पटरों से ढकी एक गाड़ी {फलकास्तीर्ण} होती थी । लाल किनारी वाले परिधान ग्रहण करते थे गले में निष्कों की माला ग्रहण करते थे ।[1]

ऐसा मालूम होता है कि जिस प्रकार वर्तमान भारतीय समाज में जन्म से जाति के निर्धारण का प्रचलन है, फिर भी नौकरियों में नियुक्ति का आधार योग्यता मानी गयी है न कि जाति, ठीक इसी तरह प्राचीन कालमें जन्म से और कर्म से जाति का निर्धारण होता रहा होगा, कर्म करने की दृष्टि से उस समय चार वर्ण थे और आज भी सरकारी नौकरियों में चार प्रकार के कर्मचारी दिखायी पड़ते हैं {प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी, और चतुर्थ श्रेणी । जैसे किसी भी जाति का अधिकारी {प्रथम श्रेणी कर्मचारी} क्यों न हो सभी लोग उसका आदर करते हैं उसी प्रकार उस समय में ब्राहमण सर्वथा पूज्य था । निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि गुण के ऊपर आश्रित वर्ण व्यवस्था आज भी प्रचलित है, केवल शब्दों में हेर फेर हो गया है ।

1- ताण्ड्य ब्राहमण 17/1/14-15

आश्रम व्यवस्था

मनुष्य जीवन के चार लक्ष्य बताये गये हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों लक्ष्यों का सेवन किस तरह सम्भव है आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत् इसका समाधान बताया गया है ।

आश्रम शब्द आङ्‌·पूर्वक श्रमु धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से बनता है । मनुष्य अपने जीवन में श्रम करके विभिन्न आश्रमों के कार्य को सम्पन्न करता है । वह अनवरत् परिश्रम करता रहता है । आलस्य नहीं करता, हमेशा सजग रहता है । अपने सम्पूर्ण जीवन काल में वह कार्य ही करता है । मनुष्य इन्हीं आश्रमों से होकर अपनी जीवन यात्रा को पूरा करता था ।

ब्राहमण साहित्य में जीवन 3 भागों में बाँटा था, प्रत्येक भाग को आश्रम कहते थे । आश्रम व्यवस्था का उद्‌भव उत्तर वैदिक काल मे हुआ था ऐसा विचार कई विद्वानों ने दिया है । डा० रीज डेविड्स के विचार से यह व्यवस्था बुद्ध काल के पूर्व की नहीं मानी जा सकती, क्योंकि उपनिषदों में चारों आश्रमों का उल्लेख नहीं हुआ है । इससे आश्रम व्यवस्था का उत्तर वैदिक काल में उद्‌भव होने की पुष्टि होती है । ऋग्वेद में ब्रहम्चारी,[1] गृहस्थ,[2] और मुनि

1- ब्रहमचारी चरति वे विषद: विष: स: देवान: भवत्येकमंगम् । ऋग्वेद 10/109/5

2- ब्रहमा चासि गृहपतिश्च नो दमे । ऋग्वेद 2/1/2

या यति"[1] शब्दों का प्रयोग मिलता है । उत्तर वैदिक काल में व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को चार भागों में विभाजित करने का संकेत मिलता है ।[2] उपनिषदों में भी "आश्रम" सूचक शब्दों का प्रयोग हुआ है । श्वेताश्वतर[3] उपनिषद् में श्वेताश्वतर ने ब्रह्मज्ञान की चर्चा आश्रम नियमों से ऊपर उठ जाने वाले लोगों से की थी । इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है, कि आश्रम व्यवस्था का निर्माण कार्य उत्तर वैदिक काल से प्रारम्भ हो चुका था । यह व्यवस्था सूत्रकाल में पूरी तरह से विकसित हो चुकी थी । विभिन्न आश्रमों के नियम इत्यादि तय किये गये ।

यजुर्वेद[4] में 100 वर्षों तक जीने की अभिलाषा व्यक्त की गयी है आयु मनुष्य की सौ वर्ष मानते हुए 25-25 वर्षों के चार भाग किये गये ।

1- येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ । ऋग्वेद 8/3/9

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 18/1/9

2- शतपथ ब्राह्मण, ऐ0ब्रा035/2, तैत्तिरीय सं06/2/75

3- तपः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म,
ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमंपवित्रं
प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम् ।। श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/21

4- कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । यजुर्वेद 40/2

इससे भी चार आश्रमों के होने की पुष्टि होती है ।

1- ब्रह्मचर्य - विद्यार्थी जीवन का काल ।

2- गृहस्थ - धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति का काल ।

3- वानप्रस्थ - सांसारिक जीवन से विरक्ति का काल ।

4- सन्यास आश्रम - मोक्ष प्राप्ति का काल ।

धर्मसूत्रों[1] में आश्रमों के चार होने का उल्लेख है । रामायण[2] और महाभारत[3] में चार आश्रम बताये गये हैं ।

विद्या के लिए ब्रह्मचर्य, सबके पालन के लिए गृहस्थ, इन्द्रियों के दमन के लिए वानप्रस्थ और मोक्ष-सिद्धि के लिए सन्यास आश्रम की व्यवस्था की गयी थी । ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्णों के लिए तीन ही आश्रम थे । सन्यासआश्रम केवल ब्राह्मणों के लिए था । ब्रह्मचर्य और गृहस्थ शब्द का उपयोग सभी साहित्यों में मिलता है । वानप्रस्थ और सन्यास के लिए अन्य कई नाम भी मिलते हैं । इन सब विवरणों से स्पष्ट होता है कि आश्रम चार थे जो उत्तर वैदिक काल से पूर्व मध्ययुग में स्थापित हो चुके थे ।

1- ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानसः । गौतमधर्मसूत्र 1/3/2

2- चतुर्वर्णमाश्रमाणां । रामायण 106/22

3- पूर्वमेव भगवता ब्राह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता धर्मसंरक्षणार्थमाश्रमाश्चत्वारो-ऽभिनिर्दिष्टाः । महाभारत, शान्तिपर्व 192/8

1- ब्रह्मचर्य -

"ब्रह्मचर्य" शब्द दो शब्दों के योग से बना है-ब्रह्म और चर्य । {ब्रह्म महानता मे, चर्य= विचरण का भाव} महानता में विचरण करना । लेकिन इसशब्द का व्यावहारिक अर्थ है, उपस्थ संयम अर्थात् वीर्यरक्षा[1] । इन दोनों अर्थों में सम्बन्ध है । समुचित शारीरिक स्वास्थ्य के अभाव में मानसिक क्षमता का विकास नहीं हो पाता और स्वास्थ्य का प्रमुख घटक है । वीर्य । वीर्य को शतपथ[2] ब्राह्मण में "ब्रह्मतेज कहा गया है । आयुर्वेद[3] में वीर्य को भोजन का अन्तिम सारतत्व बताया गया है । आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में साठ गुने खून के बराबर । इस प्रकार वीर्य का महत्त्व बताया गया है । वीर्य रक्षा से ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध है ।

यह आश्रम जीवन के प्रथम 25 वर्षों तक का माना जाता है । यह वेदाध्ययन का काल है ।[4] वेद को ब्रह्म भी कहा गया है इसके अध्ययन का व्रत ब्रह्मचर्य और अध्ययनकर्ता को ब्रह्मचारी कहा गया है ।[5]

1- ब्रह्मचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः । योगसूत्र 2/30 ।

2- वीर्यं वै भर्गः । शतपथ ब्राह्मण ।

3- रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान् मेदस्ततोऽस्थि च ।

अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रम् -----------। अष्टांग हृदय शा0स्था03/296

4- विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात् 4/4।

5- ब्रह्म वेदस्तदध्ययनार्थं व्रतं तदपि ब्रह्म । तच्चरतीति ब्रह्मचारी

{काशिका 8/3/86}

ब्राहमण साहित्य में चारों आश्रमों की स्थिति के विषय में संकेत मिलते हैं । परन्तु कर्मकाण्ड प्रधान साहित्य होने के कारण ब्रहमचर्य एवं गृहस्थ आश्रम की विशेष प्रतिष्ठा कही गयी है । शतपथ[1] ब्राहमण में ब्रहमचर्य शब्द का प्रयोग हुआ है । अन्य ब्राहमण ग्रन्थों में ब्रहमचर्य एवं ब्रहमचारी धर्म का सविस्तार उल्लेख मिलता है । ताण्ड्य महाब्राहमण में भी ब्रहमचर्य आश्रम का वर्णन है ।

"उपनयन"[2] (यज्ञोपवीत) संस्कार के माध्यम से ब्रहमचर्याश्रम प्रारम्भ होता है । "उपनयन" शब्द दो शब्दों के योग से बना है उप(समीप) और नयन (ले जाना) । इस संस्कार के पश्चात् ब्रहमचारी को गुरु के समीप ले जाया जाता था । आपस्तम्ब[3] धर्मसूत्र में कहा गया है कि ब्राहमण का बसन्त ऋतु में उपनयन करना चाहिए, क्षत्रिय का ग्रीष्म में, और वैश्य का शरद् ऋतु में उपनयन करना चाहिए । इस संस्कार के पश्चात् ब्रहमचर्य आश्रम प्रारम्भ होता था ।

ब्रहमचारी के लिए बड़ी कठोर दिनचर्या तय की गयी थी । इसके पीछे कारण यह था कि ब्रहमचारी को कुछ और सोचने का मौका न मिले क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर होता है ऐसे समय में सद्विचार मन में नहीं उठते ऐसी स्थिति ब्रहमचारी के लिए नहीं होनी चाहिए । मनु के अनुसार ब्रहमचारी

1- शतपथ ब्राहमण 1/5/4

2- ताण्ड्य महाब्राहमण 17/1-4

3- वसन्तो ग्रीष्मश्शरदित्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण । आपस्तम्ब धर्मसूत्र 4/10/4

सूर्य की उपासना करने के पश्चात् भिक्षा माँगता था, केवल दो बार सायं और प्रात: ही भोजन कर सकता था ।[1] ब्रहमचारी के लिए नृत्य, गायन, वादन, इत्र गन्ध, माला, जूता, छाता, अन्जन, हास परिहास, नग्न स्त्री को देखना, स्त्री को मुख से सूँघना, उसकी कामना करना, और उसका अकारण स्पर्श करना मना था । सत्य बोलना, अहंकार न होना और गुरु के पहले सोकर उठना अनिवार्य बताया गया था । इस प्रकार ब्रहमचारी के लिए विहित विभिन्न कर्मों का निषेध पूर्णतया शास्त्रीय है ।

आश्वलायन[2] श्रौत सूत्र में समानं ब्रहमचर्यम्" और अथर्ववेद[3] के उल्लेख "ब्रहमचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" से ज्ञात होता है कि स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान रूप से ब्रहमचर्य आश्रम आवश्यक था । जो लोग आजीवन ब्रहमचारी होते थे । उन्हें नैष्ठिक ब्रहमचारी एवं नारियों में ब्रहमवादिनी कहा जाता था । गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करने तक जो ब्रहमचारी हुआ करते थे उन्हें उपकुर्वाण ब्रहमचारी कहा जाता है ।

अथर्ववेद में ब्रहमचर्य का महत्त्व बताया गया है और इससे सम्बन्धित एक सूक्त भी है जिसमें 26 मन्त्र हैं ब्रहमचर्य को अमरत्व प्राप्ति का साधन बताया गया है ।[4] ब्राहमण ग्रन्थों में ब्रहमचर्य को सबसे बड़ा व्रत तथा

1- मनु0 2/48

2- आश्वलाय श्रौत सूत्र । 4/15/24

3- अथर्ववेद 11/3/15/18 ।

4- ब्रहमचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत । अथर्ववेद 1/5/19

उत्तम बल कहा गया है ।[1]

गृहस्थाश्रम -

आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता था । क्योंकि सभी आश्रम इसी पर आश्रित होते थे ।[2] समावर्तन संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मचारी का विवाह होता था । इसी के साथ गृहस्थ आश्रम की शुरूआत होती थी। गृहस्थ का अर्थ होता है -पत्नी को प्राप्त करने वाला।[3] ईट, पत्थर और चूने से बना हुआ भवन नहीं अपितु आपितु गृहिणी को गृह कहा गया है ।[4] तैत्तिरीयोपनिषद[5] में वेदाध्ययन के पश्चात् समावर्तन संस्कार के समय स्नातक को वंश परम्परा अविच्छिन्न रखने का निर्देश दिया गया है, जो व्यक्ति इस गृहस्थ आश्रम को नहीं अपनाता था उसे समाज में बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता था ।[6] धर्म सूत्रों के अनुसार प्राचीन काल में एक ही आश्रम गृहस्थ आश्रम था ।[7]

1- ब्रह्मेणु वे ब्रह्मचर्यम् ब्रह्मवर्यम् परम बलम् ।

2- यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
   तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः । मनु 3/77

3- कृतदारपरिग्रहो गृहस्थः गृहशब्दस्य दारवचनत्वात् । कुल्लूक भट्ट मनु 3/2

4- न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते ।

5- प्रजातन्तुं मृहन्मिन्त मा व्यवच्छेत्सीः तैत्तिरीयोपनिषद ।

6- अधीतः स्नात्वा गुरुभिरनुज्ञातेन खट्वारोढव्या । य इदानीमतोऽन्यथा-
   करोति स उच्यते खट्वा सोढोऽयम् जाल्मः । महाभाष्य 2/1/26 ।

7- तेषाम गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् । बौधायन धर्मसूत्र 2/6/29

गायत्री मन्त्र द्वारा की जाने वाली प्रार्थना में कहा गया है कि आयु बल, प्रजा, पशु कीर्ति धन और दुखों से मुक्ति मानव की स्वाभाविक इच्छायें हैं[1]। इन सब को बिना गृहस्थ हुए पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए ऋग्वेद में गृहस्थ आश्रम स्वीकार करने को कहा गया है -"किसी से विरोध न करो, गृहस्थाश्रम में रहो, पूर्ण आयु प्राप्त करो, पुत्र पौत्रों के साथ खेलते हुए आनन्द पूर्वक अपने घर में रहो और घर को आदर्श रूप बनाओ।"[2]

ताण्ड्य ब्राह्मण में गृहस्थ के लिए "गृहपति" का उल्लेख है[3]। इसी में एक और स्थान पर गृहस्थ के लिए "गृहमेधिन" शब्द मिलता है।[4] छान्दोग्य ब्राह्मण में भी वैवाहिक मन्त्रों में उल्लेख मिलता है-कि वर वधू के हाथों को ग्रहण करके कहता है कि भग, अर्यमा, सविता पुरन्ध्रि, इन देवताओं ने तुझ कन्या को मुझे गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए दिया है।[5] शतपथ ब्राह्मण में गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है गृह की प्रतिष्ठा मानते थे।[6]

1- स्तुतामया वरद वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्राविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोके।
अथर्ववेद 19/11

2- इहैव स्तं मा वि यौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।। ऋग्वेद 10/85/42

3- गृहपतेस्तु वागपदासुका भवति तद्यन्मध्ये----भवति। ताण्ड्यब्राह्मण 23/1/4

4- यदाऽग्निहोत्र------गृहमेधिन्-----------------आप्नोति।
ताण्ड्य ब्राह्मण 17/14/1

5- छान्दोग्य ब्राह्मण 1/2/16

6- शतपथ ब्राह्मण- 1/9/3/19, 1/1/19

गृहस्थ आश्रम में रहकर गृहस्थ विभिन्न कर्तव्यों का निर्वाह करता था । व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक आदि विभिन्न कर्मों को वह करता था । मनु के अनुसार गृहस्थ दस धर्मों का सेवन किया करता था। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य, और क्रोध त्याग ।[1] मनुष्य धर्म इसलिए अर्जित करता था, क्योंकि परलोक में माता, पिता, पुत्र, भार्या, सहायता के लिए नहीं रहते थे । वहाँ अपना किया हुआ धर्म ही काम आता था । अतिथि की सेवा गृहस्थ का परम कर्तव्य माना गया है, केवल अपने लिए भोजन बनाना निन्दनीय माना जाता था । अतिथि को देव माना जाता था ।[2]

सोलह संस्कारों में से प्रमुख दस संस्कार गृहस्थ आश्रम में सम्पन्न किये जाते हैं । समावर्तन संस्कार के सम्पन्न होने के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था । विवाह करके व्यक्ति गृहस्थ बनता था । इसके पश्चात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण एवं कर्णवेध संस्कार गृहस्थ आश्रम में ही सम्पन्न किये जाते थे । संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति के जीवन को शुद्ध, पवित्र और सुसंस्कृत बनाया जाता था।

1- धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। मनुस्मृति 6/92

2- अतिथिदेवो भव । तैत्तरीय संहिता 2/1।/2/2

इस प्रकार सिद्ध होता है कि लगभग सभी संस्कारों का गृहस्थ आश्रम से सम्बन्ध था ।

जन्म होते ही मनुष्य के ऊपर तीन ऋण हो जाते थे । देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण । जब तक मनुष्य इन तीनों ऋणों से मुक्त नहीं हो जाता था तब तक उसका जीवन सफल नहीं माना जाता था ।[1] वेद का अध्ययन कर लेने से देव ऋण यज्ञादि करने से ऋषि ऋण और सन्तान उत्पन्न कर देने से पितृ ऋण से मुक्ति मिल जाती थी । इसलिए यज्ञ सम्पादन, प्रजोत्पत्ति एवं अध्ययन गृहस्थ के अनिवार्य कर्तव्य माने गये ।

गृहस्थ के लिए यज्ञ करना आवश्यक बताया गया है । क्योंकि गृहस्थ दैनिक जीवन में जो कार्य करता है । उसमें अनजान में कुछ हत्यायें हो जाती है । उन्हीं के प्रायश्चित के लिए पाँच यज्ञ बताये गये हैं । शतपथ ब्राहमण में गृहस्थ के लिए पाँच यज्ञों के नाम इस प्रकार है - ब्रहमयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, और नृयज्ञ ।[2] तैत्तिरीय आरण्यक[3] में भी इन पाँच यज्ञों का वर्णन है ।

1- ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ।। मनु० 6/35

2- पन्चैव महायज्ञः । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो, मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रहम यज्ञ इति । शतपथ ब्राहमण ।।/5/6/।

3- पन्च वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते सतति संतिष्ठते देवयज्ञः पितृ यज्ञो भूतयज्ञो मनुष्य यज्ञो ब्रहमयज्ञ इति । तैत्तिरीय आरण्यक 2/10

ब्रहमचर्य आश्रम में लोग स्वार्थी हो जाते हैं । स्वार्थ से परार्थ की ओर उन्मुख होने का पाठ गृहस्थाश्रम में ही सीखा जाता है । गृहस्थाश्रम कर्मभूमि है, और त्रिवर्ग {धर्म, अर्थ, काम} को इसी में प्राप्त किया जाता है । गृहस्थ आश्रम का मूल उद्देश्य था, धर्म, सन्तान और काम की उपलब्धि । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि गृहस्थ आश्रम विभिन्न कार्यों के निर्वाह के लिए उपयुक्त एवं उत्तम आधार था ।

3- वानप्रस्थ आश्रम -

"वानप्रस्थ" का शाब्दिक अर्थ है "वन की ओर प्रस्थान । वैदिक साहित्य में वानप्रस्थ शब्द नहीं मिलता । वानप्रस्थ के लिए "वैखानस" शब्द का प्रयोग मिलता है ।

ताण्ड्य[1] महाब्राहमण में वैखानस का वर्णन मिलता है । वैखानस लोग इन्द्र के प्रिय थे । सूत्र साहित्य में वैखानस शब्द काप्रयोग वानप्रस्थ अर्थ में मिलता है । उस समय वैखानस नामक एक शास्त्र चलता था । जिसमें वानप्रस्थियों के लिए नियम लिखे गये थे । गौतम[2] धर्मसूत्र में वैखानस का प्रयोग वानप्रस्थ के लिए हुआ है । परवर्ती वेदान्त सूत्र में वैखानस को तीसरा आश्रम कहा गया है ।

1- वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य ----------------------------

-------------------अवरुन्धे स्तोमः । ताण्ड्यमहाब्राहमण ।4/4/7

2- ब्रहमचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानसः । गौतमधर्मसूत्र 3/2

वानप्रस्थ का समय 50 से 75 वर्ष तक माना गया है । इसके पहले व्यक्ति गार्हस्थ कर्तव्यों को पूरा करता था । पूरी तरह से सुख भोगता था । फिर सांसारिक मोहमाया को त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम की ओर मुड़ता था । मनु ने कहा है कि "जब गृहस्थ के बाल पकने लगें, शरीर पर झुर्रियाँ पड़ने लगे तथा उसके पौत्र हो जाय तब उसे अरण्य का आश्रय लेना चाहिए ।[1] गृहस्थ आश्रम में गाँवों में उपलब्ध भोज्य पदार्थों, तथा भौतिक सम्पत्ति को त्याग कर पुत्र के ऊपर परिवार का भार छोड़कर पत्नी को पुत्र के हाथों सौंप कर अकेले या पत्नी सहित जंगल की ओर प्रस्थान करना चाहिए ।[2] वृद्धावस्था में परिवार से व्यक्ति उसी तरह अलग हो जाता है जैसे पका हुआ फल वृक्ष से स्वयं टपक पड़ता है । स्वयं को अलग करने की प्रवृत्ति आ जाती है । व्यक्ति घर पर रहते हुए मोह माया को त्याग, नहीं सकता । ऐसी स्थिति में गाँव से बाहर रहते हुए ही मोह इत्यादि त्याग सकता था । वानप्रस्थ जीवन न अपना वाले को पापकर्मी कहा गया है ।[3] वानप्रस्थ प्रत्येक द्विज गृहस्थ के लिए अनिवार्य

1- गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वली पलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् । मनु06/2

2- सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा । मनु 6/3

3- यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थो न जायते ----------
-----------पाप कृन्नरः । विष्णु पुराण 3/18/37

माना गया था । बौद्ध एवं जैन साहित्य से भी पता चलता है कि वन में एकान्त में रहने से व्यक्तित्व का विकास, ज्ञान प्राप्त होता था ।

वानप्रस्थ का दैनिक जीवन अत्यन्त कठोर बनाया गया था । वान प्रस्थी (प्रात: दोपहर सायं) तीनों समय में स्नान एवं सन्ध्या करता था, मृगचर्म या छाल पहनता था । भूमि पर सोता था। मांस भक्षण निषिद्ध था। कन्दमूल, फल, शाक आदि का भोजन करता था । सदैव वेद का अध्ययन करता रहता था । यथासम्भव दान देता था दान ग्रहण नहीं करता था पाँचों यज्ञों का अनुष्ठान करता था, वर्षा ऋतु में आकाश के नीचे खुले स्थान पर रहता था, हेमन्त में गीला कपड़ा पहनता था इस तरह वानप्रस्थ का जीवन बड़ा ही कठोर था । महाभारत में कहा गया है । कि ब्रह्मचर्य, क्षमा, शौच, वानप्रस्थी के सनातन धर्म हैं । इनका पालन करने पर वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।[1] वानप्रस्थी को बाल दाढ़ी और नाखून नहीं कटाना चाहिए ।

वानप्रस्थ में प्रविष्ट व्यक्ति नवयुवकों का मार्ग-दर्शन करता था । बालकों को शिक्षा देता था । वानप्रस्थ के लिए भोजन में जिन चीजों का प्रावधान किया गया है, उससे शारीरिक स्वास्थ्य तथा सत्वगुण की वृद्धि होती है जो इस

1- ब्रह्मचर्य क्षमा शौचं तस्यधर्म: सनातन: ।
एवं स विगते प्राणे देव लोके महीयते ।। महाभारत, अनुशासनपर्व ।4।

समय में आवश्यक थी । आधुनिक काल के चिकित्सक भी 50वर्ष के बाद संयम के साथ रहने, सुपाच्य भोजन करने और प्राकृतिक वातावरण में ज्यादा रहने की सलाह देते हैं ।

स्त्रियों के लिए वानप्रस्थ उतना आवश्यक नहीं माना गया जितना कि पुरुषों के लिए । स्त्रियों के मन के उपर निर्भर करता था वह अपने पति के साथ वानप्रस्थ में प्रवेश करें या पुत्र के साथ रहते हुए गृहस्थ जीवन वितायें[1]। वैदिक युग में भी स्त्रियां अपना जीवन साधना में व्यतीत करती थी । भगवान शिव की प्राप्ति की लिए हिमालय पुत्री पार्वती ने कठोर तपस्या की थी । किन्तु ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं । साधारणतया स्त्रियाँ अपना सम्पूर्ण जीवन गृहस्थाश्रम में ही व्यतीत करती थी ।

वानप्रस्थ आश्रम मोक्षके मार्ग को दिखाता था व्यक्ति को साधना की ओर प्रेरित करता था । इस आश्रम में व्यक्ति कठोर तपस्या करके गृहस्थाश्रम के सुख वैभव को भूलता था । वानप्रस्थी पारिवारिक कर्तव्यों से मुक्त होकर भी अतिथियों की सेवा से सम्बन्धित सामाजिक कर्तव्यों को करता था । इस काल को सेवानिवृत्ति का कालकहा जा सकता है क्योकि गृहस्थाश्रम समाप्त होने पर व्यक्ति की आयु 50 वर्ष की हो जाती थी ऐसी स्थिति में ब्रहमचर्य समाप्त करके

1- पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा । मनुस्मृति 6/3
सकलभार्यासमन्वितो वनं प्रविवेश । विष्णु पुराण 4/2/129

नवयुवकों का वर्ग गृहस्थ बनने के लिए आ जाया करता था नवयुवकों को प्रौढ़ों से अधिक शक्ति होती है ऐसी स्थिति में नवयुवक उनका स्थान लेते थे और गृहस्थ वानप्रस्थ में प्रवेश करता था ।

संन्यास आश्रम -

आश्रम व्यवस्था का अन्तिम पड़ाव सन्यास आश्रम था। आश्रम व्यवस्था में अन्तिम आश्रम होने के कारण यह 75 वर्ष से 100 वर्षों तक माना जाता था । ब्राह्मण साहित्य में संन्यास शब्द का चतुर्थाश्रम अर्थ में प्रयोग का सर्वथा अभाव है । संन्यास का दो स्थलों पर प्रयोग मिलता है । परन्तु अभीष्ट आश्रम अर्थ में नहीं । वैदिक साहित्य में "यति" शब्द का उल्लेख चतुर्थाश्रम के लिए हुआ है ।[1] संन्यास के लिए भिक्षु,[2] यति,[3] परिव्राजक[4] शब्दों का प्रयोग मिलता है । सूत्र काल में सन्यास और भिक्षु शब्द का प्रयोग मिलता है ।[5]

1- येनायतिभ्यो भृगवेधने हिते येन प्रस्कण्दभाविथ । ऋग्वेद 8/3/9

2- गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः । वायु पुराण 59/25, गौतमध0सू0 1/3/2

3- इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः---------उपहव्यः । ताण्ड्य महाब्राह्मण 18/1/9 13/4/7
रागिणां च विरागाणां यतीनाम् ब्रह्मचारिणाम्। वायुपुराण 104/12।

~~ताण्ड्य महाब्राह्मण 18/1/9, 13/4/7~~

4- ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थः परिव्राजक इति। बौधायन धर्मसूत्र 2/11/14

5- सप्तथ्या ऊर्ध्वं सन्यासमुपदिशन्ति। बौधायन धर्मसूत्र 2/10/5 अनिचयो भिक्षुः । गौतम धर्मसूत्र 2/10/5

संन्यास का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् रूप से त्याग या पूर्ण रूप से त्याग ।[1] प्राय: भौतिक पदार्थों का त्याग सन्यास माना जाता है लेकिन ऐसी बात नहीं है बल्कि यह राग द्वेष, मोह-ममता आदि आन्तरिक भावों का त्याग है । गीता में भगवान कृष्ण ने सन्यासी के विषय में कहा है कि जो न किसी से द्वेष करता है, और न ही स्नेह ।[2] लेकिन बौधायन धर्मसूत्र में कहा गया है। कि सत्तर वर्ष की अवस्था में सन्यास ग्रहण करना चाहिए ।[3]

प्राय: सभी ग्रन्थों में कहा गया है कि वानप्रस्थ के पश्चात संन्यास ग्रहण करना चाहिए । संन्यास की प्रमुख शर्त है - वैराग्य । इसलिए जब भी सांसारिक भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो जाय उसी समय संन्यासी वन जाना चाहिए ।[4]

ताण्ड्य महाब्राह्मण में भी यतियों का उल्लेख मिलता है इसके अनुसार इन्द्र ने यतियों को सालावृकों के सामने फेंक दिया था ।[5] ऐतरेय ब्राह्मण

1- सम्यक् न्यास: प्रतिग्रहाणां सन्यास: । बौधायन ध०सू० 10/।

2- ज्ञेय: स नित्यसन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति । गीता 5/3

3- सप्तत्या ऊर्ध्वं सन्यासमुपदिशन्ति । बौधायनधर्मसूत्र 2/10/6

4- यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् । जाबालोपनिषद्

5- इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्य:-----उपहव्य:

ताण्ड्यमहाब्राह्मण 18/1/9, 13/4/7,

में यतियों को लाल मुँह वाला कहा गया है।[1] पंचविंश में कहा गया है कि एक वृहदागिरि उन तीन यतियों में से था जिन्हें इन्द्र ने सालावृकों को दिया था परन्तु वह किसी प्रकार बच गया और इन्द्र की शरण में चला गया।[2]

संन्यासी को एकाकी जीवन व्यतीत करना चाहिए। इन्द्रिय जय और भ्रमणशीलता संन्यासी के प्रधान गुण बताये गये हैं। अल्प भोजन एवं एकान्तवास से इन्द्रियों को विषयों से मोड़ा जाता था। संन्यासी को उतना ही भोजन करना चाहिए जितने से प्राण बचा रहे।[3] संन्यासी को किसी भी गाँव में एक दिन और नगर में पाँच दिन से अधिक नहीं रहना चाहिए। यह नियम इसलिए बनाया गया है जिससे संन्यासी फिर से मोहमाया में न फँसे।

संन्यासी समाज के लिए बड़ा उपयोगी होता था " वह आत्मवत् सर्वभूतेषु" का व्यवहार करते हुए अपने और पराये की भावना से ऊपर उठकर रहता था। समस्त संसार को अपना कुटुम्ब मानता था।[4]

1- ऐतरेय ब्राह्मण 7/28

2- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 8/1/4

3- यावत्प्राणाभिसन्धानां तावदिच्छेद भोजनम् -मत्स्य पुराण 40/5

4- अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

स्त्रियाँ सन्यास ग्रहण नहीं करती ऐसा प्राय: सभी विद्वान मानते हैं, क्योंकि स्त्रियों के संन्यासी होने पर अनेक सामाजिक,धार्मिक एवं नैतिक परेशानियों की सम्भावना थी, क्योंकि वे अपनी सुरक्षा स्वयं नहीं कर सकती थी स्त्रियाँ किसी भी उम्र में स्वतन्त्र नहीं मानी गयी है ।[1]

ताण्ड्य महाब्राह्मण में मुख्य रूप से गृहस्थ आश्रम का वर्णन मिलता है, क्योंकि ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ मीमांसा है । यज्ञों का सम्पादन गृहस्थ आश्रम में ही होता है । ब्रह्मचर्य आश्रम में उपनयन संस्कार सम्पन्न होता है ताण्ड्य[2] महाब्राह्मण में व्रात्यों के प्रसंग में उपनयन संस्कार का वर्णन आया है। वानप्रस्थ के लिए वैखानस का प्रयोग मिलता है और सन्यासी के लिए "यति"[3] शब्द का प्रयोग मिलता है ।

आश्रम व्यवस्था मानव के जीवन और व्यक्तित्व के उत्थान का महत्त्वपूर्ण आधार थी जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन आश्रम व्यवस्था के माध्यम से गतिशीलता को प्राप्त करता था । यह व्यवस्था पूर्व वैदिक काल के बाद की देन है इसे समाज के कुछ लोग स्वीकार करते तो कुछ लोग नहीं । ऋषि मुनि ही या कुछ शासक ही इस व्यवस्था का पालन कर पाते थे आश्रम व्यवस्था ऐतिहासिक रूप में समाज प्रचलित थी व्यावहारिक रूप में इसका प्रचलन नाम मात्र का था।

1- पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षतियौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।। मनुस्मृति 8/3

2- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 17/1-4

3- ताण्ड्य महाब्राह्मण 19/4/7

स्त्री समाज

भारतीय समाज में नारियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । प्राचीन काल से भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा विवादास्पद रही है, क्योंकि ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी जबकि ब्राहमण काल में ऐसी स्थिति नहीं थी इनको हीन समझा जा रहा था। ऋग्वेद में कहा गया है कि नव वधू गृह की समाज्ञी होती थी[1]। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी का आदर था, पुरुषों के समान मानी जाती थी स्त्रियों को कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में और माँ के रूप में हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित किया गया था । उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा निम्न थी । शिक्षा के क्षेत्र में पुरुष के समान स्थान था । ब्रहमचर्य धारण करते हुए शिक्षा ग्रहण करती थी ।[2] शिक्षित स्त्री पुरुषही विवाह के योग्य माने जाते थे ।[3] सूत्र एवं स्मृति काल में स्त्रियों की दशा दयनीय हो गयी थी । हर एक दृष्टि से उनकी दशा दयनीय हो गयी थी जन्म से मृत्यु तक वे पुरुषों के अधीन मानी गयी थी ।[4] पूर्व मध्ययुग में कन्या शक्ति"के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी । ब्राहमण साहित्य में स्त्रियों की दशा थोड़ा दयनीय हो गयी थी इसके पीछे परलोकवाद की भावना दृढ़रूप से

1- समाज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी अधिदेवृष ऋग्वेद 10/85/46

2- अथर्ववेद 11/5/18

3- शुक्लयजुर्वेद 8/1

4- पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति । मनु09/3

आर्यों के मन में जगह बना रही थी । उनको यह शंका होती थी कि यदि पुत्र नहीं होगा तो पिता का तर्पण कौन करेगा । गोपथ[1] ब्राह्मण में पुत्र का महत्त्व बताया गया है पुत्र को "पु" नामक नरक से तारने वाला बताया गया है । ब्राह्मण साहित्य में यज्ञों का ही वर्णन है । यज्ञों में परलोकवाद की धारणा अन्तर्निहित है । पंचविंश[2] में कहा गया है कि यज्ञों से प्राप्त परिणामों से प्रजारूप फल की प्राप्ति होती है । पत्नी रूप में या विवाहिता के रूप में स्त्री को बड़ा सम्मान प्राप्त था । ब्राह्मण साहित्य में पुरुष को तब तक पूर्ण नहीं माना जाता था जब कि उसका विवाह न हो जाय । शतपथ[3] में पुरुष को अर्ध माना गया है, जब उसके पास पत्नी हो जाती है तब वह पूर्ण माना जाता था । विवाह आनन्द की वस्तु न होकर आवश्यक कर्तव्य हो गया था । पितृ ऋण से मुक्ति पुत्र पैदा करने के पश्चात् ही होती थी । विवाह में पिता को पूर्ण अधिकार था| शतपथ[4] में उल्लेख है कि नेत्र विहीन च्यवन भार्गव के साथ विवाहित सुकन्या ने पति की निन्दाकरने वाले अश्विनी कुमारों से कहा था कि मेरे पिता ने मुझे जिसे दिया था उसी के साथ जीवन यापन करूँगी । विवाह

1- गोपथ ब्राह्मण 1/1/2

2- ताण्ड्य महाब्राह्मण 21/9

3- शतपथ ब्राह्मण 5/1/6/10

4- साहोवाच यस्मै मां पिताऽदान्नैवाहं तं0जीवन्तं हास्यामीति ।

शतपथ ब्राह्मण 4/1/5/9

के समय कन्यायें वयस्क होती थी । ब्राहमण काल में बहुविवाह की व्यवस्था थी लेकिन पुरूष की बहुविवाह करते थे पुत्र प्राप्ति ही इसका मुख्य उद्देश्य था। राजा लोग नियमित रूप से चार विवाह किया करते थे ।[1]

स्त्रियाँ स्वभाव से भावुक होती थी इसलिए पुरूषों के जाल में फँस जाती थी और अवैध सम्बन्ध हो जाते थे । इसी से वर्ण संकर जातियाँ बनी, भ्रूण हत्या महान पाप समझा जाता था । ऐतरेय ब्राहमण में कहा गया है कि प्रजापति ने अपनी पुत्री के साथ संभोग करना चाहा कुछ लोग ऊषा को प्रजापति की पुत्री मानते हैं यम यमी भाई बहन थे । ताण्ड्य[2] महाब्राहमण में आयी कथा से यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि यमी यम की बहन थी, या यम की पत्नी ।

ऋग्वैदिक काल की तरह ही ब्राह्मण युग में भी पर्दा प्रथा न थी ऐतरेय[3] ब्राहमण में श्वसुर से पुत्रवधू को लज्जा करने का संकेत मिलता है । ताण्ड्य[4] महाब्राहमण के अनुसार महाव्रत दिवस को स्त्रियाँ कमर पर कलश रखकर नृत्य एवं गायन करती थी । स्त्रियाँ सभा में उपस्थित हो कर वार्ता करती थीं एवं विचारों का आदान प्रदान करती थी । पाणिनि ने "असूर्यम्पश्या" शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है जिस स्त्री को सूर्य भी नहीं देख सकता था ।

1- शतपथ ब्राहमण ।3/4/1/8

2- एतेन वै यमोऽनपज------------------यामने नुण्दुबान: ।

ताण्ड्य महाब्राहमण ।1/10/22

3- ऐतरेय ब्राहमण 3/32

4- ~~ताण्ड्य महाब्राहमण 5/6/~~
तां पत्न्यो अपघाटिला--------------------कुर्वन्ति ।

ब्राह्मण युग में कन्या को दुखरूपा माना गया है फिर भी लालन पालन और शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था । घरेलू वातावरण में ही इन्हें यह सब करना पड़ता था । पाकशास्त्र का अध्ययन इन्हें कराया जाता था । छान्दोग्य[1] में वर्णित वैवाहिक मंत्रों को वरवधू स्वयं पढ़ते थे । ऐतरेय[2] में वर्णन है कि पुत्रियाँ शिक्षिका होती थीं । इससे स्पष्ट है कि स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं ।

समाज स्त्री वर्ग को सुन्दर रूप में देखना चाहता था । उत्तम कन्या के गुणों के विषय में कहा गया है कि कन्या को गौरवर्ण, निर्मल कान्तियुक्त, तरुणी एवं सुरूपा, कार्य करने में कुशल, सुकृत्यवती, एवं पुंसवसामर्थ्यवती होनी चाहिए क्योंकि रूपवती स्त्री ही पुरुषों की प्रिया और भावप्रवण होती हैं ।[3] शतपथ ब्राह्मण में स्त्रियों की शारीरिक आकृति का उल्लेख हुआ है, "पीछे से चौड़ी जंघों वाली और मोटी श्रोणी वाली स्त्री प्रशंसा के योग्य मानी जाती थी ।

स्त्रियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप था बहुपत्नी वालों की पत्नी बनना था । सपत्नियों से पीड़ित होने पर वशीकरण मन्त्र का उपयोग करने का वर्णन ब्राह्मण साहित्य में हुआ है ।

1- छान्दोग्य 1/2/1

2- ऐतरेय ब्राह्मण 5/29

3- शतपथ ब्राह्मण 3/5/1/11

स्त्रियों को पुरुषों की अर्धांगिनी एवं सह-धार्मिणी माना जाता था। पति के साथ उसका शारीरिक ही नहीं वरन् आध्यात्मिक सम्बन्ध भी माना जाता था। धार्मिक अनुष्ठान बगैर पत्नी के नहीं होता था। ताण्ड्य[1] महाब्राह्मण में राजयज्ञ के द्वारा निर्वासित राजा पुनः अपने पूर्व स्थान को प्राप्त कर लेता था। इस दृष्टि में महिषी की अष्टवीरों में गणना की गयी है तथा वह यज्ञ में भाग लेती थी।

सती प्रथा समाज में कब प्रारम्भ हुई यह निश्चित नहीं है पूर्व वैदिक एव उत्तर वैदिक ग्रन्थों में सती प्रथा का प्रसंग आया है ऋग्वेद[2] में एक स्थान पर एक मन्त्र को लेकर मतभेद है कि उसमें अग्ने शब्द का प्रयोग हुआ है या अग्रे शब्द का। इसका अर्थ है "कि स्त्री अपने मृत पति के शव के साथ लेटती थी। तत्पश्चात् उसे सम्बोधित किया जाता था, नारी उठो, पुनः इस संसार में आओ। उत्तर वैदिक युग में इस प्रथा का प्रचलन था गृह्यसूत्रों में सती प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। सतीप्रथा का पुनः प्रचलन चौथी सदी ई०पू० के पश्चात किसी समय व्यवहारमें आया।

नारी के प्रति हिन्दू समाज का व्यवहार उत्तरोत्तर कठोर होता गया। उत्तर वैदिक काल से पुरुष का स्त्री के प्रति अविश्वास की

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण 5/6/8

2- इया नारी रविधवा: सपत्नीराजनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवो नर्यीवा: सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्ने।। ऋग्वेद 10/18/7

भावना अड़ती गयी । उसे हीन एवं निम्न भावना से देखा जाने लगा । महाभारत[1], मनुस्मृति,[2] पद्मपुराण[3] इत्यादि ग्रन्थों में स्त्रियों की कड़ी आलोचना की गयी । बौद्ध युग में भी इनकी दशा निम्न थी । इसीलिए प्रारम्भ में स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति नहीं थी । नारी में सब अवगुण ही नहीं थे, उनमें अनेकानेक गुण थे।समाज में देवी और श्री के रूप में आदृत और सम्मानित थी ।

उपलब्ध संकेतों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि स्त्रियों की दशा उन्नत थी, सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक अधिकारों से सम्पन्न ताण्ड्य ब्राह्मण युग की महिला प्राचीन भारत का एक आदर्श प्रतीक थी । यह युग नारी को रूढ़िवादिता के पाशों में आबद्ध करने वाला नहीं था, वरन् उसे प्रकृति के प्रांगण में स्वतन्त्रता पूर्वक साधिकार जीवन यापन करने का था ।

1- यदि जिह्वासहस्रं स्याज्जीवेच्च शरदां शतम् ।
अनन्यकर्मा स्त्रीदोषाननुक्त्वा निधनं व्रजेत ।। महाभारत ।2/76 ।

2- नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ।। मनुस्मृति ।9/14

3- स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति न प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ।। पद्मपुराण 49/9

आर्थिक स्थिति

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति अथवा समाज ही इहलोक की दैनिक चिन्ताओं को छोड़कर पारलौकिक विषयों पर चिन्तन कर सकता है। ब्राह्मण युग में वैदिक कालीन भारतीय समाज अपने विकास की प्रारम्भिक दशा को पार कर सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित रूप धारण कर रहा था। स्फुट रूप से उपलब्ध संकेतों के आधार पर उस युग में वर्तमान जिस आर्थिक व्यवस्था की झलक मिलती है उसके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ताण्ड्य ब्राह्मण युग की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त सुसंगठित थी। आर्थिक जीवन के दो भिन्न पहलुओं के दर्शन होते हैं। आर्थिक जीवन के विकास की प्रथम स्थिति में आर्यों में चिर पर्यटनशीलप्रवृत्ति का प्राधान्य था। आर्यों ने भारत में बड़े बड़े कबीलों में प्रवेश किया था। जिनमें से अनु, पुरु, द्रुह्यु, यदु और तुर्वस का ऋग्वेद में बहुलता से उल्लेख मिलता है। आर्यों ने ब्राह्मण युग आते-आते भारत की सुविस्तृत भूमि में अपने स्थायी निवास स्थान बना लिये थे। धीरे-धीरे से बसे हुए कबीले एक राज्य का रूप धारण करने लगे।

व्रात्य[1] एक घुमक्कड़ जाति थी यह न खेती करती थी और न यज्ञ ही। केवल इधर उधर घूमती हुई जीवन यापन करती थी। इनकी आजीविका का साधन पशुपालन था। पर्यटनशील प्रवृत्ति वाले लोगों को पशुपालन के अतिरिक्त

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण 17/1-4

और अन्य किसी आर्थिक व्यवस्था को अपना सकना सर्वथा असम्भव था ।

ग्राम ताण्ड्य ब्राह्मण युग की सबसे छोटी सामाजिक एवं राजनैतिक इकाई थी । ये ग्राम अधिकांशतः सुविस्तृत भूमि में या किसी नदी के तट पर बसे होते थे । जहाँ कृषि एवं पशु चारण की सुविधा सरलता से प्राप्त हो जाती थी नगर सभ्यता का विकास हो रहा था । यातायात के साधनों का प्रभूत विकास हो चुका था,, इसकी सहायता से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते थे । ब्राह्मण साहित्य में नगर[1] और "नागरिन्[2]" शब्द का प्रयोग मिलता है । जब कि ऋग्वेद के काल में नगरों की सभ्यता नही थी ।

कृषि -

प्रागैतिहासिक काल से ही भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है । कुछ लोग आर्य शब्द को स्वयं कृषिकर्मा व्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त करते थे । ऋग्वेद में प्रयुक्त आर्य शब्द विजेताओं के एक वर्ग अथवा जाति के रूप में उन्हें आदिवासियों से पृथक करता है । ताण्ड्य महाब्राह्मण में इसी भेद को प्रदर्शित करने के लिए आर्य और शूद्र के मध्य एक कृत्रिम युद्ध का यज्ञ के अवसर पर उल्लेख है । ऋग्वेद[3] में कृषि को महत्त्वपूर्ण समझने के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं । बाद

1- सामविधान 2/4/2, 5,6, गोपथ 1/1/23

2- जैमिनीयोपनिषद् 3/7/3/2

3- ऋग्वेद 10/34/13, 10/117/7

की परवर्ती संहिताओं, ब्राह्मण साहित्य में कृषि का बार-बार उल्लेख मिलता है । पंचविंश के अनुसार व्रात्य लोग खेती नहीं करते थे । जैमिनीय[1] ब्राह्मण में अनार्य असुरों द्वारा कृषि करने का उल्लेख मिलता है, ताण्ड्य[2] ब्राह्मण में साधस्क्रा नामक एकाह बोये हुए खेत और खलिहानों के मध्य होता था ।

ताण्ड्य ब्राह्मण युग में कृषि आर्यों की आर्थिक वृद्धि का प्रमुख साधन बन गयी थी । ब्राह्मणों का वर्ण्य विषय कर्मकाण्ड है फिर भी यत्र तत्र वर्षा के लिए प्रार्थना की गयी है जिससे अन्न अधिक हो । शतपथ[3] में कहा गया है । अन्न ही कृषि है। कृष्य भूमि पर खेती करने वाले का अधिकार होता था । ताण्ड्य[4] महाब्राह्मण में खेतों के स्वामी को क्षेत्रमि क्षेत्रपति" कहा जाता था । वाजपेय याग में क्षेत्रपति के लिए चरु निवेदित किया गया है ।

पशुचारण की भूमि के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता है । परन्तु इनका अस्तित्व अवश्य था क्योंकि हजारों गायें पाली जाती थी । ये चरायी कहाँ जाती रही होगी ।

राजा समस्त भूमि का अधिकारी होता था । राजा की ओर से यह भूमि कृषकों को खेती के लिए दी जाती थी । उसके बदले में वे कर देते थे । राजा भूमि को बेच नहीं सकता था, ऐसा करते समय उससे प्रजा से सलाह लेनी पड़ती थी ।

1- जैमिनीय ब्राह्मण 3/72
2- ताण्ड्य ब्राह्मण 16/12-16
3- शतपथ ब्राह्मण 7/2/2/6
4- वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे क्षेत्रपतये-------प्रतिगृह्णीते ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण 1/8/15

राजा तथा प्रजा के मध्य में ग्रामणी नामक अधिकारी होता था यह कर्मचारी ग्रामों को सुचारु रूप से प्रबन्ध करने के लिए रखा जाता था। लोग या तो राजा की इच्छा से या ग्रामीण जनता के सहयोग से ग्रामणी बनते थे। ताण्ड्य[1] महाब्राहमण में ग्रामणी की राजा के ग्यारह रत्निनों में गणना की जाती थी। राजा स्वेच्छा से ग्राम दान कर सकते हैं।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ताण्ड्य ब्राहमण काल में कृषि की उन्नति हुई। जुती हुई या अच्छी बोआई के योग्य भूमि को उर्वरा या क्षेत्र कहते थे।[2] जो कि वर्ष में दो फसलों को देने में समर्थ हो। खेत को क्षेत्र भी कहते थे।[3] कृषि के विषय में ज्ञान रखने वाले को "क्षेत्रज्ञ" कहते थे। खेतों में उगी घास को उसी स्थान पर जला देते थे। ऐसा करने से उत्तम फसल होती थी।[4] यही व्यवस्था कुछ स्थानोंपर आजकल भी है। शरद ऋतु में यवादिक की फसल पक जाती थी। फसल के पक जाने पर उसे काटकर बण्डलों में बाँधा जाता था। खलिहान में ले जाकर पीटा जाता था। ताण्ड्य[5] ब्राहमण में खलिहान का उल्लेख आया है।

1- अष्टावेक -------------भवत्यष्टौ वै वीरा -----------ग्रामणी-- ---------------------------------- अभिषिच्यते।
ताण्ड्‍ महाब्राहमण 19/1/4

2- उर्वरा वेदिर्भवत्ये अस्या वीर्यक्तमं वीयेयूर्येणैव यज्ञं समर्द्धयति।
ताण्ड्‍ महाब्राहमण 16/13/6

3- ताण्ड्य ब्राहमण 2/1/4

4- जर जरत कक्षो वा---वै जरतकक्षमग्निदर्द दहति------पशवो रमन्ते।
ताण्ड्य ब्राहमण 17/7/2

5- खल उत्तरवेदिरत्र----खलेआली यूपो-----------उत्कृषन्ति।
ताण्ड्यब्राहमण 16/13/7-8

ब्राह्मण काल में अकाल भी पड़ते थे । ताण्ड्यब्राह्मण में देवातिथि और उनके पुत्रों ने अन्नाभाव से पीड़ित होकर वन में प्रश्रय लेकर "उर्वास" नामक फलों को खाया था । अवश्य ही यह अन्नाभाव दुर्भिक्ष के कारण था । इस सम्बन्ध में इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है ।

सिंचाई -

कृषि की सफलता में सिंचाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है । अधिकांश लोग वर्षा के जल पर आश्रित रहते थे । वर्षा होने से खेती अच्छी होती थी । तैत्तिरीय में कहा गया है कि "जल ही कृषि का प्राण है ।[1] वर्षा की कामना से वहिष्पवमान सूक्त का पाठ करते थे ।[2]

अन्न -

ब्राह्मण साहित्य में अन्न के अर्थ में "धान्य" शब्द का प्रयोग मिलता है । उत्पन्न अन्न के दो भेद माने जाते थे । कृष्ट और अकृष्ट ।[3] भूमि कर्षण करके जो अन्न उत्पन्न किया जाता था उसे कृष्ट कहते थे, तथा जो अन्न बिना भूमि को जोते उत्पन्न किया जाता था उसे "अकृष्ट" कहते थे ।

1- अन्नं वा आपः । अद्भ्योऽन्नं जायते । तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/8/2/1

2- ताण्ड्य ब्राह्मण 6/10/15

3- विष्णेण ----------------------------अकृष्टपच्याश्च कृष्टपच्याश्च ।

ताण्ड्यब्राह्मण 6/9/9 ।

इस समय के प्रमुख अन्न "यव, व्रीहि, प्रियंगु इत्यादि थे । ताण्ड्य[1] ब्राहमण में माष अन्न का उल्लेख है । माष का अर्थ होता है उर्द, यह एक अन्न विशेष है । यह अन्न आज भी मिलता है । ताण्ड्य ब्राहमण में तिल का भी उल्लेख है । इससे अवश्य ही तेल निकाला जाता रहा होगा ।

वृक्ष -

वनों का बड़ा महत्त्व था ताण्ड्य ब्राहमण में कई वृक्षों का वर्णन किया गया है ।

§1§ उदुम्बर -

धार्मिक दृष्टि से इस वृक्ष का बड़ा महत्त्व था । पुंसवन संस्कार मेंगर्भ के तीसरे माह में उदुम्बर के फल का रस गर्भिणी के नासिकारन्ध्र में चुलाने की प्रथा थी । ताण्ड्य[2] ब्राहमण में उदुम्बर के वृक्षों का वन होने का उल्लेख मिलता है । इसकी लकड़ी से घरेलू तथा यज्ञीय साधनों के बनाये जाने का संकेत मिलता है । इसके द्वारा चमस[3] बनाया जाता था ।

इसके अतिरिक्त ताण्ड्य ब्राहमण में पीतु[4] दारु §देव दारु§

1- वरुणस्वा -------------------तिलभाषा--------प्रतिगृहीते ।

ताण्ड्य ब्राहमण 1/8/15

2- उदुम्बरे उसत्यूर्गुदुम्बर ऊर्जमेवाऽवरुन्धे । ताण्ड्यब्राहमण 16/6/4

3- सोमचमसो दक्षिणा-----------------अवरुन्धे। ताण्ड्यब्राहमण 18/2/10/1

4- अग्निर्वै देवानां -----------पीतुदार्वेतानि -----------तदभ्यन्जते ।

ताण्ड्यब्राहमण 24/13/5

वरण,[1] उर्वास[2] ≬ यह एक प्रकार ककड़ी या खरबूजा है ≬ पूतीका[3] ≬सोमलता के स्थान पर इसका प्रयोग होता है ≬ प्रमोधा[4] ≬ यह एक प्रकार का पौधा जो सोमरस बनाने के लिए सोमलता के स्थान पर प्रयोग होता है । ≬ इत्यादि अनेक वृक्ष और घासें थीं ।

इस प्रकार अध्ययन करने से पता चलता है कि ताण्ड्य ब्राह्मण काल में आर्थिक स्थिति अच्छी थी । कृषि की जाती थी केवल व्रात्य लोग ही खेती नहीं करते थे । हर एक दृष्टिकोण से ताण्ड्य महाब्राह्मण में आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी ।

1- अग्निर्व्वा --------------व्वरणशाखया---------तस्माद्वारवन्तीयं ।
ताण्ड्यब्राह्मण 5/3/9-10

2- ताण्ड्य ब्राह्मण 9/2/19

3- ताण्ड्य ब्राह्मण 8/4/1, 9/5/3

4- ताण्ड्य ब्राह्मण 8/4/1

वस्त्र और अलंकरण

भोजन की तरह वस्त्र भी मानव जीवन के लिए परमावश्यक है। वास्तव में यह सभ्यता का प्रतीक है । मानव ही एकमात्र वस्त्र धारण करने वाला प्राणी है । आज भी विश्व के कुछ भागों में आदिवासी लोग या तो नग्नावस्था में रहते हैं या तो वृक्षों के पत्ते इत्यादि धारण करते हैं । स्पेन्सर ने कहा है कि आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें शीतोष्ण से बचने के लिए तथा शरीर ढ़कने के लिए वस्त्रों की अपेक्षा नहीं है । वे इस कार्य को वृक्ष की छाल या पत्ते इत्यादि से चला लेते हैं । सर्वप्रथम वस्त्र धारण करने की कामना अलंकरण की प्रवृत्ति से उत्पन्न हुई है। क्रमशः शरीर को प्राकृतिक यातनाओं से बचाने के लिए वस्त्र कला का विकास हुआ ।

वस्तुतः प्राचीन वेश-भूषा के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान शून्यवत् है । साहित्यिक तथा पुरातत्व के साक्ष्यों के आधार से इस विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त होता है । सिन्धुघाटी के उत्खनन से इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । मोहन जोदड़ो में खुदाई के समय एक चाँदी के पात्र पर चिपके वस्त्र के कुछ टुकड़े मिले हैं । सिन्धु घाटी के उत्खनन में मूर्तियाँ एवं खिलौने भी प्राप्त हुए हैं जिनसे वस्त्र पहनने के ढंग इत्यादि विषयों पर प्रकाश पड़ता है । किन्तु वैदिक एवं ब्राहमण काल की वेशभूषा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन है साहित्यिक ज्ञान । संहिता, ब्राहमण, आरण्यक तथा उपनिषदों में भी इसका विवरण देखने को मिलता है ।

ताण्ड्य ब्राहमण के काल में आर्य वस्त्रों की उपयोगिता से परिचित थे और इसका महत्त्व बढ़ गया था । वस्त्रों के आविष्कार के संबंध में ब्राहमणों

में एक कथा आयी है जिससे पता चलता है कि वैदिक सभ्यता के आरम्भिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे । मनुष्य भी एक समय पहना करते थे । गाय की उपादेयता का ज्ञान देवताओं को भी था । अतः उन्होंने मनुष्यों के शरीर से गोचर्म अलग कर पुनः गायों को वापस दे दिया । खाल के बिना मनुष्य को बराबर चोटें लगा करती थी । इसलिए उनका खोया हुआ आवरण पुनः वापस देने के लिए देवताओं ने वस्त्र की सृष्टि की ।" इसी साहित्य में एक उल्लेख यह भी मिलता है कि राजरानियां सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करती थीं ।" ऐतरेय ब्राह्मण से विदित होता है कि "होता के द्वारा यजमान के लिए सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई स्त्रियों की कामना का उल्लेख पाया जाता है ।"

"ऊनी वस्त्र"-

ब्राह्मण साहित्य में इसके सम्बन्ध में स्पष्ट वर्णन मिलता है । ऊनी वस्त्रों को बनाने के प्रमुख साधन बाल वाले पशुओं "मेष" या "अवि" का वर्णन मिलता है ।"

अथर्ववेद[1] में "कम्बल" का उल्लेख मिलता है । "जैमिनीयोपनिषद"[2] में "शामूलपर्ण" का उल्लेख आया है । यह एक ऊनी वस्त्र होता था, जिसे रात्रि में धारण किया जाता था । मैक्डानेल" तथा "कीथ" महोदय के विचार से शामूल तथा ऋग्वेद में प्रयुक्त "शामूल्य" में समानता है" ।[3]

1- अथर्ववेद - 14/2/6/67

2- जैमिनीयोपनिषद - 1/38/4

3- वैदिक इण्डेक्स - 2/4/14

"खालों के वस्त्र" -

ब्राह्मण काल में लोग पशुओं की खाल का उपयोग करते थे यज्ञों के आलम्भन किये गये अइसख्यक पशुओं के चर्मों का वे लोग सदुपयोग करते थे। चमड़े की सफाई करने वाले चर्मण की गणना पुरुषमेध के बलि प्राणियों में की गई है।[1] इसकी पवित्रता एवं उपयोगिता से सम्बन्धित एक लघु कथा आयी है। कि यज्ञ की "आहुति" एक बार मृग का रूप धारण करके देवताओं से बचने के लिए भाग गई, देवतागण को जब इसका पता चला तो उन्होंने उसे पकड़कर उसकी खाल उतार लिया। उसी दिन से कृष्णाजिन पर दीक्षा दी जाने लगी एवं यज्ञ की आहुति के लिए धान्य भी उसी पर घोंटा जाने लगा।

ताण्ड्य ब्राह्मण[2] में उल्लेख आया है कि व्रात्यों के अधिनायक और उनके साथी दोहरे चमड़े पहनते थे, इनमें एक काला और दूसरा सफेद होता था। अथवा काला-श्वेत मिला हुआ होता था, जिसके दोनों किनारे लाल रंग के होते थे। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनके प्रयोग से यह मालूम होता है कि इनका प्रयोग वस्त्र रूप में होता था, परन्तु रंग के विषय में कोई भी विवरण नहीं मिलने से स्वभावतः कठिनाई होती है साथ साथ ठीक से यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वे वनस्पतियों के किन किन रेशों के बनते थे।

1- शतपथ ब्राह्मण 2/4/14

2- ताण्ड्य ब्राह्मण - 17/1/14-15

ताण्ड्य ब्राह्मण[1] में भी "होतृ" और "नेष्ट" नामक ऋत्विजों को "वरासी" नामक वस्त्र प्रदान करने का उल्लेख आया हुआ है । "पाण्डव" और "तार्प्य" वस्त्रों के प्रयोग का वर्णन भी मिलता है ।

कताई बुनाई की कला -

ब्राह्मण काल में लोग कताई बुनाई की कला से परिचित थे । कताई बुनाई का कार्य स्त्रियाँ करती थीं । "ताण्ड्य[2] ब्राह्मण" में कपड़ा बुनने वालियों के लिए "वमितृ" शब्द का प्रयोग मिलता है । तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] में बिनने के अर्थ में वयात" शब्द का प्रयोग मिलता है ।[4] उस युग में बुनने की कला में अत्यधिक उन्नति हो रही थी, ऊनी, सूती, रेशमी, सभी प्रकार के वस्त्र बुने जाते थे । नवीन वस्त्रों को "अहतवास" कहते थे ।"[5] यज्ञ आदि अवसरों पर अथवा विभिन्न अनुष्ठानों के अवसरों पर उसे पहना जाता था । नाना प्रकारके रंगों के वस्त्र बुने जाते थे । लाल"काले"सफेद वस्त्रों का वर्णन ब्राह्मणों में पाया जाता है ।[6] ताण्ड्य ब्राह्मण[7] में यह भी उल्लेख है कि व्रात्य लोग

1- ताण्ड्य ब्राह्मण - 18/9/6
2- ताण्ड्य ब्राह्मण -1/8/9
3- तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/6/4/1
4- शतपथ ब्राह्मण 14/9/4/12
5- ताण्ड्य ब्राह्मण 17/1/14
6- ताण्ड्य ब्राह्मण 17/1/15

लाल किनारी की धोती पहनते थे ।"

"सिले कपड़े -

ब्राहमण साहित्य में सिले कपडे तथा सिलने के साधनों के विषय में संकेत प्राप्त होता है । कपड़े को सुई से सिला जाता था ऐसा वर्णन मिलता है, पहनने की बात जहाँ आती है तो ब्राहमण साहित्य में यत्र-तत्र लोगों के दो वस्त्र धारण करने का विवरण प्राप्त होता है । अधोवस्त्र और अधिवास" यज्ञों को सम्पादित करते समय धारण की जाने वाली व्यवस्था से भी इसी प्रकार के वस्त्र पहने जाने का संकेत मिलता है । "नीवि" एक नीचे पहने जाने वाला वस्त्र होता था । सम्भवत: इसे कटिभाग पर धारण करते थे । इसे स्त्री-पुरुष दोनों ही पहनते थे । वस्तुत: अधिकांश स्त्रियां इसे धारण करती थीं । ब्राहमण ग्रन्थों में प्रघात, अभिवास भी प्रयोग में लाया जाता था । "उष्णीश" पहनने का बहुतायत से प्रचलन था । ताण्ड्य[1] ब्राहमण में भी इसका विवरण आया है । तथा ब्राहमण साहित्य में इसके बहुल प्रयोग मिलते हैं । "राजाओं तथा व्रात्यों के परिधाने के सम्बन्ध में इसका वर्णन मिलता है"। राजसूय तथा वाजपेय यज्ञों के अवसरों पर इसे राजा लोग पहना करता थे ।

ब्राहमण साहित्य में यज्ञीय वस्त्रों के भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग देवताओं के अधिकार होने का वर्णन भी मिलता है । इस उल्लेख में बिनाई से सम्बन्धित शब्दों का वर्णन भी मिलता है । सब देवताओं के अधिकार में होने के कारण अत्यन्त पवित्र एवं हर प्रकार की बाधाओं से हीन वस्त्र ही दीक्षित के उपयुक्त माना जाता था ।

1- ताण्ड्य ब्राहमण -17/1/14

राजाओं की वेशभूषा से सम्बन्धित विवरण भी ब्राहमण साहित्य में आया है । शतपथ ब्राहमण में सोम राजा के वस्त्रों का उल्लेख आया है । सम्भवतः वही तत्कालीन राजाओं का भी पहिनावा था[1] । राजसूय यज्ञ में अभिषेक के उपरान्त राजा एक सफेद ऊनी कपड़ा पहनता था । फिर ऊपरी भाग में अधिवास नामक वस्त्र खण्ड से अपना शरीर दबाता था । इसके बाद "उष्णीश पहनता था । रानियां खूब सज धज कर रहती थीं । मगर यज्ञों के समय स्त्रियों की वेशभूषा किस प्रकार की होनी चाहिए, इस सम्बंध में कोई संकेत नहीं मिलता है। परन्तु उनकी पोशाक में "दशना" का महत्व होता था, ऐसा ब्राहमण साहित्य में वर्णन आया हुआ है । यज्ञ के समय अध्वर्यु यजमान पत्नी की कमर में अर्थात् कटि भाग में अधिवासों के ऊपर "रशना" बाँधता था । "रशना" में गांठें भी लगाई जाती थीं । ऐसा वर्णन मिलता है ।

"व्रात्यों की वेश भूषा" के सम्बन्ध में भी ब्राहमण साहित्य में उल्लेख पाया जाता है । व्रात्यों की वेशभूषा के सम्बन्ध में "ताण्ड्य ब्राहमण[2] में "व्रात्य" प्रकरण में उल्लेख आया है, व्रात्य लोग आर्यों के समाज से वहिष्कृत थे । प्रायश्चित कर लेने पर ये पुनः आर्य समाज में सम्मिलित कर लिये जाते थे । व्रात्यों के "गृहपति" उष्णीश काला चमड़ा (कृष्ण संवासः) बकरे की एक सफेद और एक काली खाल पहनते थे"।

1- शतपथ ब्राहमण - 2/3/2/3

2- ताण्ड्य ब्राहमण- 17/1/14-15,

अलंकरण

मानव स्वभाव से ही प्रदर्शन का इच्छुक होता है । यह भावना संसार के प्रत्येक मनुष्य में चाहे वह सभ्य हो अथवा असभ्य दिखलाई पड़ती है । वनवासी जातियों से हम देखते हैं कि ये ढेर सारे गुजों और मूंगों की माला पहनने में ही अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन समझते हैं । कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने शरीरों पर तरह-तरह के चित्र, फूल इत्यादि गोदने अंकित करवाते हैं । कुछ तो ताड़ इत्यादि के पत्तों को अपनी कमर में लपेटने, अपने शरीर को तरह तरह के रंगों से चित्रित करने तथा केशों में पक्षियों के पंखों को लगाने ही अपना श्रृंगार समझते हैं । "अपराहन काल में घर की वृद्ध महिलाएं कुमारी लड़कियों को सुन्दर वेष-भूषा से सुसज्जित करके समाज में घूमने जाती थीं"।[1]

सौन्दर्य के साधन -

"केश विन्यास" का विवरण हमे ब्राहमण साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है । इस काल में लोग कंघी के प्रयोग से परिचित थे ।" कंघी की सहायता से सीमन्त (मांग) निकालने का भी उल्लेख पाया जाता है । तिल से तेल निकलने की विधि से भी वे लोग परिचित थे, यह भी सत्य है कि वे उसका प्रयोग करना भी जानते थे, "नापित" लोग बाल काटने का काम करते थे ।

1- तैत्तिरीय ब्राहमण - 1/5/3/3

स्नान क्रिया -

प्रायः गृहस्थ लोक ऋतु के अनुकूल जल से स्नान करते थे। इसमें सुगन्धियां भी डालते थे। परन्तु ऐसे जल से स्नान करना ब्रह्मचारी के लिए वर्जित था। समावर्तन संस्कार के समय इसे ऋतु के अनुकूल सुगंधित जल से स्नान कराया जाता था। "राजसूय यज्ञ में यजमान का अभिषेक संस्कार किया जाता था।"[1] "ताण्ड्य[2] ब्राह्मण" में उल्लेख आया है कि गुग्गुलादि सुगन्धियों को जल में पकाकर उससे स्नान किया जाता था "।

अंजन -

नेत्रों की सौन्दर्य वृद्धि एवं दोष आदि निवारण के लिए लोग नित्य अंजन का प्रयोग करते थे, ऐसा विवरण, ब्राह्मण ग्रंथों में पाया जाता है।" दीक्षित व्यक्ति के नेत्रों में अंजन लगाने की प्रथा थी।"[3] निश्चित रूप से जनसाधारण भी इसका प्रयोग करता था। "नेत्रों को अंजन से सजाने वाली स्त्रियों को आंजनीकारम" कहा जाता था।[4] अंजन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथाओं का भी वर्णन ब्राह्मण साहित्य में उपलब्ध होता है।

लेप -

स्त्रियां मुख पर सौन्दर्य वृद्धि के लिए लेप का प्रयोग करती थी। "स्थागर" नामक औषधि विशेष से मुख को सजाने का वर्णन भी पाया जाता है।

1- शतपथ ब्राह्मण- 5/3/5/1

2- ताण्ड्य ब्राह्मण - 24/13/4

3- ऐतरेय ब्राह्मण - 1/1,

4- तैत्तिरीय ब्राह्मण - 3/4/10/1,

तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] में उल्लेख मिलता है कि लोग केशों को कटवाकर, नाखूनों को कटवा कर, दाँतों को साफ करते थे। लोग दण्ड और उपानह धारण करते थे।

ब्राह्मण साहित्य में पैरों में पहने जाने वाले जूतों इत्यादि का भी विवरण मिलता है। "वराह के चमड़े के बने जूतों का संकेत मिलता है"[2]। "ताण्ड्य ब्राह्मण"[3] में फूलों की माला पहनने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। दर्पण के प्रयोग का वर्णन भी मिलता है। ब्राह्मण कालिक आर्य"आभूषण "प्रिय भी थे, ऐसा संकेत मिलता है। इस काल में लोग सुवर्ण चाँदी का प्रयोग जानते थे। वे लोग सोने चाँदी के आभूषण बनाना भी जानते थे। सुवर्ण को लवण से जोड़ते थे तथा उसके आभूषण बनाते थे। "ताण्ड्य ब्राह्मण[4] में सोने की माला के प्रयोग का भी संकेत मिलता है"। इससे प्रतीत होता है कि इस काल में लोग श्रृंगारिक क्रियाओं में इसका प्रचुर प्रयोग किया करते थे। शतपथ ब्राह्मण में सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित राजरानियों का उल्लेख पाया जाता है। एक अन्य जगह एक विशिष्ट प्रकार के आभूषण का भी विवरण मिलता है जिसे दीक्षित गले में धारण करता था। कृष्णाजिन में गूँथकर इसे गले में पहनते थे।

1- तैत्तिरीय ब्राह्मण - 3/8/1/2

2- शतपथ ब्राह्मण - 5/4/3/19

3- ताण्ड्य ब्राह्मण - 18/9/16

4- ताण्ड्य ब्राह्मण - 18/9/10

इसके अतिरिक्त काले श्वेत पशुओं के बाल में रूक्म को गूँथकर गले में धारण करते थे ।

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ताण्ड्य ब्राहमण युग में लोग स्वभावतः सुन्दर वस्त्राभूषण के शौकीन थे, अर्थात इन्हें ये बहुप्रिय थे । यद्यपि कर्मकाण्ड प्रधान ग्रन्थ होने के कारण अधिक संकेत नहीं मिलते हैं । तथापि उपलब्ध संकेत ही उनके वस्त्राकरण प्रियता एवं सुरुचि को बतलाने के लिए ही पर्याप्त हैं ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में दर्शन

दर्शन के स्रोत रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों का निश्चय के साथ मूल्यांकन कर सकना कठिन है, ब्राह्मण साहित्य कर्म काण्ड परक ग्रन्थ है । इनमें यज्ञ की क्रिया सम्बन्धी गूढ़ातिगूढ़ महत्वपूर्ण विषयों की विवेचना की गयी है । परन्तु इन्हीं विवेचनों के मध्य इतस्ततः स्फुट रूप में दार्शनिक संकेत अथवा वर्णन मिलते हैं । ड्यूसन महोदय के विचार से ब्राह्मण बहुत से स्थानों पर उच्च दार्शनिक विचा से भिन्न प्रतीत होते हैं जिसकी यज्ञ के क्रियाकलापों के वर्ण न के कारण अवहेलना की है ।

ताण्ड्य[1] महाब्राह्मण में अनेक स्थानों पर ब्रह्मवादी"शब्द का प्रयोग हुआ है । यह शब्द दार्शनिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ब्राह्मणों के युग में प्रजापति देवता को निर्विरोध रूप से सृष्टिकर्ता एवं परमदेव के रूप में माना जाता था । इस सम्बन्ध में अनेकों आख्यान आये हैं । प्रजापति को विश्व का श्रष्टा, शासक, रक्षक एवं नियन्ता रूप में स्वीकार किया गया है ताण्ड्य[2] महाब्राह्मण में ब्रह्म को विश्व का सृष्टा "हिरण्यमयन शकुन" रूप वाला कहा गया है । तैत्तिरीय[3] ब्राह्मण में परब्रह्म और सर्वव्यापक आत्मा में अभिन्नता दिखलायी गयी है । शतपथ[4] ब्राह्मण में सत्य को ब्रह्म माना गयाहै ।

1- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 20/16/62/,20/16/6,21/1/9

2- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 25/18/15

3- तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/12/9

4- शतपथ ब्राह्मण 10/6/3/1-2

मनुष्य में प्राण अर्थात श्वासों का आना जाना ही जीवन का चिन्ह है । शरीर में प्राण ही श्रेष्ठ हैं सभी जीव प्राण के रहने पर जीवित रहते हैं और प्राण के रहने पर मर जाते हैं । प्राण के द्वारा आत्मा की अभिव्यक्ति होती है सुप्तावस्था में समस्त इन्द्रियाँ प्राण में लीन हो जाती हैं परन्तु प्राण किसी में विलय को प्राप्त नहीं होता है ।[1] प्राण का स्थान अस्थियों में बतलाकर आत्मा के चारों ओर बताया गया है ।

जगत की सृष्टि के उपादानों में जल अग्नि इत्यादि को बताया गया है । लेकिन ये सब मूल कारण नहीं है, वरन् सहायक कारण है । शतपथ ब्राह्मण में जल से सृष्टि कही गयी है । प्रजापति की उत्पत्ति मानी गयी है । ताण्ड्य[2] महाब्राह्मण में जल को प्राण कहा गया है । इसी ग्रन्थ में एक जगह कहा गया है कि प्रजापति ने वाक् के साथ मैथुन किया ।[3] शतपथ[4] ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रजापति ने अग्नि रूप पृथिवी के साथ मैथुन किया ।

सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य में प्रजापति से जगत् की उत्पत्ति सिद्ध की गयी है ताण्ड्य[5] महाब्राह्मण में वर्णन आया है कि इस सृष्टि पर

1- ताण्ड्य महाब्राह्मण 10/4/4, शतपथ 3/2/2/23

2- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 9/9/4

3- ताण्ड्य महाब्राह्मण 20/14/4

4- शतपथ ब्राह्मण 6/1/1/8-10

5- ताण्ड्य महाब्राह्मण 4/1/4, 6/1/1/, 6/5/1, 7/5/1, 7/6/1, 10/3/1

प्रजापति ही अकेला था उन्होंने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ और मैं प्रजा को पैदा करूँगा । तैत्तिरीय[1] ब्राह्मण में प्रजापति के अधो से असुर और मुख से देवता की उत्पत्ति बतलायी गयी है । शतपथ[2] में उल्लेख है कि प्रजापति और ब्रह्म एक है ।

ब्राह्मण साहित्य में परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद के विषय में वर्णन मिलता है । ताण्ड्य[3] महाब्राह्मण में पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मनुष्य बार-बार जन्म लेता है ।

उपर्युक्त वर्णन के आधार यह कहा जा सकता है कि ताण्ड्य महाब्राह्मण में दार्शनिक विचारधारा का वर्णन हुआ है वैसे ब्राह्मण साहित्य कर्मकाण्ड से युक्त साहित्य है । परन्तु इसी में बीच में दर्शन की भी झलक मिलती है ।

1- तैत्तिरीय ब्राह्मण 2/2/9/5-8

2- शतपथ ब्राह्मण 13/6/2/8

3- ताण्ड्य महाब्राह्मण 6/9/18, 6/8/16

राजनैतिक स्थिति

वैदिक काल में राज्यशास्त्र विषयक ग्रन्थ न होने पर भी वैदिक वाङ्मय में इतस्ततः स्फुट वचन मिलते हैं । ऋग्वेद[1] में राज्य शास्त्र विषयक उल्लेख कम मिलते हैं । अथर्ववेद[2] में राज्यशास्त्र विषयक उल्लेख है । परन्तु उनका सम्बन्ध राजा से अधिक है । इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों का वर्ण्यविषय तो यज्ञ की विवेचना करना है किन्तु इसमें भी कहीं कहीं राज्य शास्त्र विषयक उल्लेख मिलते हैं । वे अल्प होते हुए भी ब्राह्मण साहित्य और ताण्ड्य ब्राह्मण के राजनैतिक संघटन के स्वरूप को बतलाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

राज्यशास्त्र का अध्ययन अति प्राचीन काल से होता था, सर्व प्रथम सुव्यवस्थित ढंग से इस विषय की विवेचना करने वाला ग्रन्थ कौटिल्य का अर्थशास्त्र है । ताण्ड्यमहाब्राह्मण में राज्याभिषेक तथा राज्यारोहण या उसके बाद किये जाने वाले वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है । इससे राजपद की प्रतिष्ठा कैसी थी राजकर्मचारी कौन थे इत्यादि का ज्ञान होता है ।

अधिकांशतः क्षत्रिय ही राजा होते थे । यही कारण था कि उनके लिए क्षत्र क्षत्रिय के साथ-साथ राजन्य विशेषण का प्रयोग मिलता है ।[3]

1- ऋग्वेद 10/191, 10/172, 10/166

2- अथर्ववेद 3/4-5, 6/88, 5/19

3- शतपथ ब्राह्मण 5/1/5/3

क्षत्रिय ही राजा होता था, क्योंकि उसका बल अपरिमित होता था। क्षत्रिय को राष्ट्र कहा गया है,[1] क्योंकि वह राष्ट्र का नायक होता है। प्रजापति[2] के बाहुओं से उत्पन्न होने के कारण यह बाहुबली होता था। और यही कारण था कि रक्षा में समर्थ क्षत्रिय को ही राजा माना जाता था।

यद्यपि राजा का पद आनुवंशिक था फिर भी सामान्यतः राजा के लिए शिक्षित एवं सुयोग्य होना भी आवश्यक था। युद्ध कला में निपुण होना उनका अनिवार्य गुण माना जाता था। सेना के साथ राजा को भी जाना पड़ता था।[3]

राजा यज्ञकर्ता हुआ करते थे। कुछ यज्ञों की विधियाँ इतनी विस्तृत, दक्षिणाएं इतनी अधिक होती थीं कि सामान्य जनता के लिए इन्हें कर सकना कठिन था। राजसूय, वाजपेय, पुरुषमेध, सर्वमेध, पशुमेध अश्वमेध यज्ञ तो केवल राजाओं के द्वारा ही करणीय है परन्तु गवामयन जैसे एक वर्ष तक चलने वाले यज्ञ का सम्पादन एवं व्यय राजाओं के अतिरिक्त सामान्य जनता के द्वारा किया जा सकना कठिन है।

राजा और पुरोहित में घनिष्ठ सम्बन्ध होता था। यद्यपि राजा समस्त प्रजा पर नियन्त्रण करता था लेकिन पुरोहित उसके शासन के अन्तर्गत

1- ऐतरेय ब्राह्मण 8/20

2- बाहोरि बाहुभ्यां वीर्यं य एव वेद। ताण्ड्यमहाब्राह्मण 6/1/9

3- ताण्ड्यमहाब्राह्मण 19/1/4

नहीं आता था ताण्ड्य महाब्राहमण में अष्टवीरों के अन्तर्गत पुरोहित की भी गणना की गयी है । पुरोहित का राजनीति के क्षेत्र में विशेष महत्त्व होता था । दश राजाओं के युद्ध में दिवोदास शत्रुओं से घिर गया था, उसके पुरोहित भरद्वाज ने उसकी रक्षा की थी ।

शासन प्रबन्ध -

ब्राहमण काल में राज्य कई भागों में विभक्त था । राज्य की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी कई ग्रामों के मिलने से जनपद बनता था । ताण्ड्य-महाब्राहमण में विश एवं राष्ट्र या जनपद की वृद्धि कामना से प्रतिपदों का निर्देश किया गया था । इस ब्राहमण में मगध, विदेह, कौशाम्बी, त्रिप्लदा, पारावत, खण्डव, इत्यादि राज्यों का वर्णन हुआ है ।

अधिकांश राज्यों में राजतन्त्र शासन प्रणाली का प्रचार था । राजा ही राज्य में सर्वेसर्वा, ~~सर्वसत्ता~~ सर्वसत्ता सम्पन्न होता था, उपलब्ध संकेतों से विदित होता है कि राजा राज्य के छोटे-बड़े सभी कार्योंकी देखभाल करता ~~था~~ था । उसकी सहायता के लिए एकादश रत्नियों का एक मण्डल होता था । ये रत्नी लोग विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे । राजाओं के पास चतुरंगिणी सेना हुआ करती थी । धनुष बाण उस प्रमुख शस्त्र होता था । ताण्ड्य ब्राहमण मे सुव्यवस्थित न्याय व्यवस्था का प्रचलन मिलता है । अन्त में यही कहा जा सकता है । कि उस समय की राजनैतिक व्यवस्था अत्यन्त सुसंगठित थी ।

उपसंहार

उपसंहार

"ताण्ड्यमहाब्राह्मण का समीक्षात्मक अध्ययन" विविध रूपों में किया गया । इस शोध प्रबन्ध के पहले अध्याय में वैदिक वाङ्मय का सामान्य परिचय दिया गया है, क्योंकि कोई व्यक्ति जब नया कार्य प्रारम्भ करता है, तो उसके बारे में प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करता है, तभी वह अपने कार्य को सही रूप में कर सकता है, इसीलिए शोध प्रबन्ध में वेद की व्युत्पत्ति "विद् ज्ञाने" धातु से मानते हुए इसका प्रारम्भ किया गया है । विद् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर वेद शब्द बनता है, जिसका अर्थ "ज्ञान" होता है । "वेद" शब्द व्यापक अर्थ में ईश्वरीय ज्ञान का बोधक है । प्राचीन काल में वेद का इतना महत्त्व था, कि लोग वेद की निन्दा करने वाले को नास्तिक कहा करते थे (नास्तिको वेदनिन्दकः), जबकि ईश्वर की सत्ता न मानने वाले भी आस्तिक कहे गये । वेद से प्राचीन काल के आचार विचार रहन सहन, तथा धर्म कर्म को समझने में सहायता मिलती है । वेद धर्म के मूल तत्वों के जानने का साधन है, (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्) ।

वेदों के काल के विषय में विभिन्न विद्वानों के मत दिये गये हैं । भारतीय तो वेद को अपौरुषेय, अनादि और नित्य मानते हैं । लेकिन प्रो० मैक्समूलर ने ऋग्वेद की रचना आज से 3200 वर्ष पूर्व मानी है । तिलक, अविनाश चन्द्र, पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भूगर्भ सम्बन्धी वैदिक तथ्य, शिलालेख से पुष्ट पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट इत्यादि के वेद के काल के सम्बन्ध मे मत दिये गये हैं।

चारों संहिताओं का परिचय दिया गया है । उसके पश्चात मन्त्र-ब्राह्मण के विषय में जानकारी दी गयी है । "मन्त्र" शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ बतायी गयी हैं । मन्त्र और ब्राह्मण में क्या सम्बन्ध है, इसको भी चित्रित किया गया है । आरण्यकों एवं उपनिषदों का अर्थ एवं प्रमुख उपनिषदों के नाम एवं उनके प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया गया है ।

ब्राह्मण साहित्य में ब्राह्मणों के काल के विषय में कोई संकेत नहीं मिलते हैं । भारतीय विद्वान भगवद्दत्त ब्राह्मण साहित्य को महाभारत के समकालिक मानते हैं । शतपथ आदि ब्राह्मणों में दौष्यन्ति, भरत, शतानीक, रघुनाला आदि, महाभारत के कुछ समय पहले के ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं । जन्मेजय परीक्षित इत्यादि के भी नाम मिलते हैं । महर्षि याज्ञवल्क्य जो ब्राह्मणों के संकलनकर्ता कहे गये हैं वे भी महाभारत कालीन थे । आचार्य तित्तिर, व्यासशिष्य जैमिनि भी महाभारत के समकालीन थे, और भी कुछ लोगों के विचार दिये हैं ।

वेदांग साहित्य का रचना काल 1500 ई0पू0 माना जाता है, सभी विद्वान इस विषय में एकमत हैं । वेदांग ज्योतिष ब्राह्मणों के बाद की रचना है, उपनिषदों की रचना वेदांगों से पूर्व हुई है, ब्राह्मण इनसे भी पूर्व की रचना है। अततः यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मणों का रचनाकाल 3000 ई0 पू0 से 2000 ई0 पू0 तक रहा होगा ।

ब्राह्मणों का वर्ण्य विषय "विधि" है । विधि में यज्ञ एवं उससे सम्बन्धित कार्य कलापों के नियम दिये गये हैं । विषय की दृष्टि से ब्राह्मणों को

6 भागों में बाँटा गया है -विधि, अर्थवाद, विनियोग, हेतु, निरुक्ति और आख्यान। विधि का अनुकरण और निषेध की निन्दा करने वाले वाक्यों को अर्थवाद कहा जाता है। कौन सा मन्त्र किस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त है, इसका वर्णन विनियोग के अन्तर्गत होता है। कर्मकाण्ड की विशेष विधि के लिए उपयुक्त कारणों का जिसमें वर्णन होता है, वे हेतु के अन्तर्गत आते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में निरुक्तियों का अत्यधिक प्रयोग मिलता है, शब्दों की निष्पत्ति निरुक्ति कही जाती है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ अधिक मिलती हैं। ब्राह्मण साहित्य में क्लिष्ट यज्ञीय अनुष्ठानों के मध्य छोटे-छोटे आख्यानों के साथ बड़े रोचक आख्यान भी मिलते हैं।

सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य सर्वांग सम्पन्न है, इसमें तात्कालिक उत्कृष्ट सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार, उच्चकोटि का आध्यात्मिक विकास, धार्मिक विचार एवं कथा साहित्य देखने को मिलता है। यज्ञ के स्वरूप के परिचायक यही ग्रन्थ हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या बहुत बड़ी प्रतीत होती है, लेकिन समस्त ब्राह्मण आज उपलब्ध नहीं हैं। एतरेय, कौषीतकि, शतपथ, तैत्तिरीय, पंचविंश, षड्विंश, छान्दोग्य, आर्षेय, संहितोपनिषद, सामविधान, वंश, जैमिनीय, गोपथ सभी प्राप्त ब्राह्मणों के विषय में जानकारी दी गयी है। अनुपलब्ध ब्राह्मणों के नाम भी दिये गये हैं। चरक, श्वेताश्वतर, काठक, मैत्रायणीय, खाण्डिकेय, औखेय, भाल्लवि, हारिद्रविक, आह्वरक, कंकति, गालव, शाट्यायन, कालबवि, तुम्बरु, सौलभ, शैलाली, पराशर, पैंगि, माषशरावि, कापेय, अनुपलब्ध ब्राह्मण हैं।

ताण्ड्यमहाब्राहमण सामवेद का सबसे महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है यह ताण्ड शाखा से सम्बन्धित है । 25 अध्यायों का होने के कारण पन्चविंश कहा जाता है । आकार में वृहतकाय है, इसलिए महाब्राहमण भी कहा जाता है । यह ब्राहमण प्राचीन ब्राहमणों ऐतरेय, तैत्तिरीय, शतपथ, जैमिनीय की श्रेणी में आता है । सस्वर होनेके कारण इसे प्राचीन माना जाता है ।

ताण्ड्यमहाब्राहमण में यज्ञों का मुख्य रूप से वर्णन हुआ है । समस्त ब्राहमण साहित्य का वर्ण्य विषय यज्ञ मीमांसा है । ताण्ड ब्राहमण में सोम संस्था से सम्बन्धित सभी यज्ञों का वर्णन है । इनका क्रमशः नामोल्लेख किया गया है ।

ताण्ड्य महाब्राहमण की भाषा अन्य ब्राहमणों की अपेक्षा थोड़ा दुरूह जान पड़ती है । पूरा ब्राहमण साहित्य गद्यात्मक है, ताण्ड्यमहा ब्राहमण भी इससे अलग नहीं है, लोक व्यवहार में आने वाली संस्कृत भाषा का सुन्दर रूप में प्रयोग किया गया है । ताण्ड्यमहाब्राहमण का गद्य साहित्यिक शैली में निबद्ध रोचक गद्य का भव्य दृष्टान्त है । ताण्ड्य महाब्राहमण की शैली सरस एवं ग्राह्य है। ब्राहमण साहित्य बड़े नीरस माने जाते हैं, बीच-बीच में आख्यान इनकी रोचकता को बढ़ाते हैं । जिससे यह हृदयग्राह्य हो जाता है ।

ताण्ड्य महाब्राहमण का प्रधान विषय यज्ञमीमांसा है । यज्ञ भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । यज्ञ को ब्राहमण धर्म का मेरूदण्ड कहा जाता है । ब्राहमण साहित्य में इन यज्ञों के विषय में बड़े विस्तार के साथ वर्णन मिलता है । यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म कहा गया है {यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म} । धातु

यज् देवपूजा संगति करण दानेषु से यज्ञ की महत्ता का पता चलता है । अग्नि में नाना देवताओं को उद्दिष्टकर हविष्यथा सोम रस का हवन यज्ञ के नाम से जाना जाता है ।

यज्ञ ऋग्वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुके थे । ऋग्वेद में यज् शब्द यजन, पूजा या उपासना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यज्ञ की हवियों पर ही उस काल के देवता-निर्भर रहते थे । अनुमान के आधार पर अग्निहोत्र याग के रूप में यज्ञ की कल्पना की गयी । अग्निहोत्र सबसे प्राचीन माना जा सकता है । अग्निहोत्र में ऋत्विजों की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, यह एक सरल यज्ञ था, यजमान अपने दैनिक जीवन में से थोड़ा समय निकालकर इस यज्ञ को सम्पन्न कर लेता था । देवता, हविर्द्रव्य, ऋत्विज्, मन्त्र और दक्षिणा यज्ञके पाँच अंग माने गये हैं । इसके पश्चात् यज्ञों में प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों के नाम गिनाये गये हैं ।

अग्नि दो प्रकार की मानी गयी है - स्मार्ताग्निऔर श्रौताग्नि । प्रथम अग्नि का स्थापन विवाहित पुरुष ही कर सकता था, इस अग्नि में पाक यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे । दूसरी अग्नि से हवि और सोम संस्था के यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे, इन तीन प्रकार के यज्ञों के प्रत्येक के सात सात भेद थे ।

ताण्ड्य महाब्राहमण में सोमयागों का ही वर्णन है । इसलिए सोमयागों का ही वर्णन किया गया है, ये सात हैं । अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, अप्तोर्याम्, और वाजपेय । सोमयागों में सामगायन ऐसी व्यवस्था है, जिसका अत्यन्तमहत्त्व है । साम एक गीति है, जो ऋग्वेद के किसी

भी मन्त्र पर लगायी जा सकती है, और ये मन्त्र विभिन्न गीतियों में गाये जा सकते हैं, इन यज्ञों में सोम से आहुति दी जाती थी। सोमाहुति के दिवसों की संख्या के अनुसार इन यज्ञों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है-एकाह, अहीन, और सत्र ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में वर्णित एकाहों के नाम इस प्रकार हैं । अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अत्यग्निष्टोम, अतिरात्र, आप्तोर्याम, वाजपेय, अभिजित्, विश्वजित्, महाव्रत, चार प्रकार के साहस्र एकाह {ज्योति, सर्व ज्योति, विश्व ज्योति और अग्निष्टोम संस्थ} साद्यस्का एकाह {अनुक्री, विश्वजिच्छिल्प, श्येन और एकत्रिक} चार प्रकार के व्रात्यस्तोम, अग्निष्टुत, राजसूय इत्यादि का उल्लेख किया गया है । इन्द्रसोमयागों में राट-विराट, औपशद-पुनस्तोम, उद्भिदबलभिद इत्यादि का वर्णन है । मरुत्स्तोम, इन्द्रस्तोम, इत्यादि का भी वर्णन मिलता है ।

अहीन यागो एक से अधिक रात्रियों तक चलने वाले यज्ञों को कहते हैं । प्रमुख अहीन यागों में एकरात्रिक, द्विरात्रिक, त्रिरात्रिक, अश्वमेध, चतुरात्र, पंचरात्र, षडसत्र, सप्तरात्र अष्टरात्र, नवरात्र दशरात्र, एकादशाह इत्यादि का वर्णन मिलता है ।

"सत्र" नामक यज्ञों में "गवामयन" प्रथम है, यह एक वर्ष तक चलता है, यह समस्त सत्रों की प्रकृति होता है । गवामयन के अतिरिक्त, आदित्य, दृतिवातवतो, कुण्डपायिनाम् और सहस्रसंवत्सर सत्र हैं ।

गवामयन के समान ही "सारस्वत सत्र" भी प्रसिद्ध था इसके तीन भेद अत्यन्त प्रसिद्ध थे । मित्रावरुणयोरयनम्, इन्द्राग्न्योरयनम्, अर्यमणोरयनम् ।

दीर्घकालिक सत्रों में द्वादशाह, गवामयन, सर्पसत्र, त्रिसंवत्सर सत्र, के नाम आते हैं । समस्त विश्व का स्वामित्व पाने के लिए "सहस्रसंवत्सर" तक चलने वाले "विश्व-सृजामयन" यज्ञ का उल्लेख मिलता है । सोमयज्ञ में अग्नि वेदी के चयन का विशेष महत्त्व होता है । इसके पश्चात् सोमयाग के अन्तर्गत चार प्रमुख यज्ञों, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध के प्रयोजन को बताया गया है ।

इसके पश्चात् ताण्ड्यमहाब्राह्मण कालीन वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, स्त्री समाज, आर्थिक स्थिति, वस्त्र और अलंकरण, राजनैतिक स्थिति, और दर्शन का विवेचन किया गया है ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण का महत्त्व

ताण्ड्यमहाब्राह्मण का समीक्षात्मक अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ताण्ड्यमहाब्राह्मण काल प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था । ताण्ड्य ब्राह्मणकालीन समाज समृद्ध, एवं प्रत्येक दृष्टि से सुसंगठित था, इसकाल का समाज वर्ण और आश्रम व्यवस्था के द्वारा व्यवस्थित था । समाज चार वर्णों में विभाजित था-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, यही व्यवस्था इस युग में भी प्रचलित है । इसके अतिरिक्त अनेक वर्ण संकर और मिश्रित जातियों का अस्तित्व भी इस युग में था । ताण्ड्य में व्रात्यों का उल्लेख है, जो संस्कार हीन होते थे, व्रात्य स्तोम के द्वारा ये फिर द्विजत्व को प्राप्त करते थे । नाना

जातियों से समृद्ध उस युग के समाज में किसी प्रकार का पारस्परिक वैमनस्य नहीं था, सभी अपने विहित धर्मों का पालन करते थे ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मण में लोगों का जीवन चतुराश्रम व्यवस्था की मर्यादा से मर्यादित था, उस युग में कर्मकाण्ड की प्रधानता होने से गृहस्थाश्रम का विशेष महत्व था, क्योंकि अपत्नीक व्यक्ति यज्ञ का अधिकारी नहीं होता था । मृत्युपरान्त स्वर्ग, मोक्ष आदि की प्राप्ति के लिए पुत्र का महत्त्व होने से भी गृहस्थाश्रम का महत्त्व बढ़ गया था । वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के सम्बन्ध में अत्यल्प संकेत मिलते हैं । उस युग के समाज में स्त्रियों की दशा उन्नत थी, उन्हें राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सभी शैक्षणिक क्षेत्रों में विकास करने का अवसर मिलता था, उस युग के लोगों की वस्त्रालंकरण, मनोरंजन और अन्नपान के प्रति सुरुचि प्रतीत होती है ।

आजकल की भाँति भौतिक एवं वैज्ञानिक विकास का युग ताण्ड्य युग में नहीं था, लेकिन समीक्षात्मक अध्ययन करते समय जिन विषयों पर विचार किया गया, उससे एक सर्वांग सम्पन्न युग की झाँकी सामने आती है । लोगों में अन्न, धन, प्रजा की सम्पन्नता प्राप्त करने की प्रबल कामना थी, कृषि, वृक्ष, सिंचाई पशु आदि के पालन में विशेष उन्नति दृष्टिगोचर होती है । कृषि में जो कार्य उस समय किये जाते थे, वैसे ही आज के इस युग में भी किये जा रहे हैं ।

राजा अपने रत्नियों और अन्य राजकीय कर्मचारियों की सहायता से सम्पूर्ण राज्य की व्यवस्था और आने वाली हर आपत्ति का सामना करता था,

उस काल की न्याय व्यवस्था अत्यन्त उच्चकोटि की थी राजतन्त्र तो इस समय नहीं है, फिर भी व्यवस्था उसी प्रकार की कही जा सकती है ।

वर्तमान काल की भाँति लोगों के पास बन्दूक, बम आदि साधन नहीं थे, तथापि रक्षणार्थ शस्त्रास्त्रों का अभाव नहीं था । राजा का पुरोहित वर्ग शत्रुओं के दमन, उनके विनाश और अन्य प्रकार के भयों से राजा और उसके राज्य को मुक्त करनेके लिये नाना प्रकार के अभिचार और प्रयोगों को करता था ।

कर्मकाण्ड प्रधान होनेके कारण ही उस युग के साहित्य में यज्ञ का विशेष रूप से विवेचन मिलता है । एक दिन से लेकर सहस्र संवत्सर के यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे । यज्ञों में अधिक समय और अधिक धन खर्च होता था, इसलिए राजा था, धनी वर्ग के लोग ही इन यज्ञों को करते थे । आज भी यज्ञ सम्पन्न किये जाते हैं, लेकिन अभिजात्य वर्ग के लोग आज भी यज्ञ करवा पाते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ताण्ड्यब्राह्मण काल में प्रत्येक दृष्टि से अभूतपूर्व उन्नति हुई थी । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रत्येक दृष्टि से उस समय का इस युग पर प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक क्षेत्र में ताण्ड्य का महत्त्व था ।

'ग्रन्थानुक्रमणिका'

(क) वैदिक ग्रन्थ सूची

क्र0 सं0	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशन	समय
1.	अथर्ववेद संहिता (शौनक शाखा)	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर	1916 ई0
2.	अथर्ववेद संहिता	स्वाध्याय मण्डल, सतारा	1956 ई0
3.	आर्षेय ब्राह्मण	सं0 सत्यव्रतसामश्रयी, कलकत्ता	1796 शक
4.	ऋक् संहिता सायण भाष्य	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना	1936 ई0
5.	ऋग्वेद में यज्ञ कल्पना	जयपुर प्रकाशन	1965 ई0
6.	ऐतरेय ब्राह्मण सायण भाष्य	आनन्द आश्रम, पूना	1989 ई0
7.	ऐतरेयारण्यक	आनन्द आश्रम, पूना	1966 ई0
8.	काण्व संहिता	स्वाध्याय मण्डल, सतारा	1943 ई0
9.	काठक संहिता	स्वाध्याय मण्डल, सतारा	1943 ई0
10.	कौषीतकि ब्राह्मण सायण भाष्य	वेपर्स वेडन प्रकाशन	1968 ई0
11.	गोपथ ब्राह्मण	इण्डोलाजिकल हाउस, दिल्ली	1972 ई0
12.	छान्दोग्य ब्राह्मण	संस्कृत कालेज, कलकत्ता	1958 ई0
13.	जैमिनीय ब्राह्मण	नागपुर प्रकाशन	1956 ई0
14.	तैत्तिरीय आरण्यक सायणभाष्य	कलकत्ता प्रकाशन	1976 ई0
15.	तैत्तिरीय ब्राह्मण सायणभाष्य	आनन्द आश्रम, पूना	1989 ई0

क्र0 स0	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशन	समय
16.	ताण्ड्य महाब्राह्मणम्	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी	1936 ई0
17.	दैवत ब्राह्मण	जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता	1881 ई0
18.	मैत्रायणी संहिता	बाँकेबिहारी प्रकाशन, आगरा	1986 ई0
19.	यजुर्वेद भाष्यम्	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर	2017 सं0
20.	यजुर्वेद संहिता सायणभाष्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	1915 ई0
21.	वैदिक देवशास्त्र	संस्कृत संस्थान, बरेली	1961 ई0
22.	विष्णु स्मृति	वसन्त प्रेस थियोसाफिकाम सोसाइटी मद्रास	1946 ई0
23.	वृहदारण्यक (सायणभाष्य)	कलकत्ता प्रकाशन	1978 ई0
24.	वंश ब्राह्मण	सत्यव्रत सामश्रयी, कलकत्ता	1996 शक्
25.	सामविधान ब्राह्मण	सत्यव्रत सामश्रयी, कलकत्ता	1996 शक्
26.	सामवेद (सायणभाष्य)	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना	1938 ई0
27.	संस्कृत हिन्दी कोश	बंगला रोड जवाहर नगर, दिल्ली	1966 ई0
28.	शतपथ ब्राह्मणम् (सायणभाष्य)	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	1940 ई0

क्र0 सं0	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशन	समय
	(ख) पौराणिक ग्रन्थ सूची		
29.	अग्निपुराण	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना	1957 ई0
30.	अग्निपुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर	1991 ई0
31.	वाल्मीकि रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर	2010 सं0
32.	महाभारत	गीता प्रेस, गोरखपुर	2033 सं0
33.	विष्णु पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर	1987 ई0
34.	श्रीमद् भागवत् महापुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर	1990 ई0

॥ग॥ सहायक ग्रन्थ सूची

क्र0 सं0	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशन का स्थान	समय
35.	उपनिषद् काव्यकोष	जी0ए0 जैकब	मोतीलाल, बनारसीदास, बम्बई	1963 ई0
36.	ऐतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन	डॉ0 नाथूलाल पाठक	जयपुर प्रकाशन	1966 ई0
37.	पौराणिक कोश	रामप्रसाद शर्मा	ज्ञानमण्डल, वाराणसी	2018 सं0
38.	ताण्ड्यमहाब्राह्मणं ॥प्रथम भाग॥	श्री चिन्नास्वामी शास्त्री एवं पट्टाभिराम शास्त्री	बनारस	1935 ई0
39.	ताण्ड्यमहाब्राह्मणं ॥द्वितीय भाग॥	श्री चिन्नास्वामी शास्त्री एवं पट्टाभिराम शास्त्री	बनारस	1936 ई0
40.	भारतीय संस्कृति एवं साधना	डॉ0 गोपीनाथ कविराज	राष्ट्रभाषा परिषद् बिहार	1969 ई0
41.	मानव श्रौतसूत्र	डॉ0 जीनेट एम0	नई दिल्ली	1961 ई0
42.	मीमांसा न्यायप्रकाश	पं0 चिन्नास्वामी शास्त्री	बनारस	1949 ई0
43.	लघुसिद्धान्त कौमुदी	धरानन्द शास्त्री	दिल्ली	1986 ई0
44.	लाट्यायन श्रौतसूत्र	अग्निस्वामी	कलकत्ता	1872 ई0
45.	वाल्मीकि रामायण कोष	रामकुमार राय	चौखम्बा प्रकाशन, काशी	1965 ई0
46.	वेदार्थ के विविध प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक अनुशीलन	डॉ0 युधिष्ठिर मीमांसक	वेदवाणी काशी	1964 ई0

क्र0 सं0	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशन का स्थान	समय
47.	वैदिक वाड्.मय का इतिहास (प्रथम खण्ड)	पं0 भगवत दत्त	दिल्ली	1978 ई0
48.	वैदिक वाड्.मय का इतिहास (द्वितीय खण्ड)	पं0 भगवत दत्त	दिल्ली	1978 ई0
49.	हिस्ट्री आफ वैदिक लिटरेचर (द्वितीय खण्ड)	पं0 भगवत दत्त	लाहौर	1957 ई0
50.	दि ब्राह्मणाज् एण्ड दि आरण्यकाज			
51.	वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति	पं0 गिरधर शर्मा चतुर्वेदी	पटना	1969 ई0
52.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	वाचस्पति गैरोला	संवर्तिका प्रकाशन, केरेल बाग	1969 ई0
53.	वैदिक साहित्य का इतिहास	डा0 कृष्ण कुमार	साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ	1958 ई0
54.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय	शारदा संस्थान, वाराणसी	1973 ई0
55.	वैदिक वाड्.मय एक अनुशीलन	डा0 ब्रजबिहारी चौबे	कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन होशियारपुर	1972 ई0
56.	वैदिक साहित्य की रूपरेखा	सत्यनारायण पाण्डेय	साहित्य निकेतन, कानपुर	1957 ई0

क्र0 सं0	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशक का स्थान	समय
57.	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	डॉ0 जयशंकर मिश्र	बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना	1986 ई0
58.	प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन	पद्मभूषण ईश्वरी प्रसाद एवं शैलेन्द्र वर्मा	मीनू पब्लिकेशन्स म्योर रोड, इलाहाबाद	1986 ई0
59.	प्राचीन भारतीय संस्कृति के आधार	डॉ0 वी0के0 सिंह	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	1986 ई0
60.	मैत्रायणी संहिता	डॉ0 वेदकुमारी विद्यालंकार	बाँकेबिहारी प्रकाशन, आगरा	1986 ई0
61.	ऋग्वेद प्रातिशाख्य	डॉ0 ब्रजबिहारी चौबे	भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी	1986 ई0
62.	ऋग्वेद भाष्यभूमिका	डॉ0 रामकुमार वर्मा	भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी	1975 ई0
63.	वैदिक साहित्य का परिशीलन	डॉ0 रजनीकान्त शास्त्री	किताब महल, इलाहाबाद	1965 ई0
64.	वैदिक साहित्य का इतिहास	डॉ0 राजकिशोर सिंह	विनोद पुस्तक मन्दिर	1984 ई0
65.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा	1986 ई0

----------::@::----------